अनुक्रम

1. पहला सूत्रः आत्म-स्वतंत्रता का बोध 2
2. दूसरा सूत्रः खोजें मत, ठहरें.... 17
3. विचार-क्रांति.... 30
4. स्वप्न से जागरण की और.... 50
5. दुख के प्रति जागरण.... 67
6. समस्त के प्रति प्रेम ही प्रार्थना है 81
7. विश्वासः सत्य की खोज में सबसे बड़ी बाधा 87
8. प्रार्थना का रहस्य.... 103
9. क्रांति एक विस्फोट है, ध्यान एक विकास है 117
10. नये का आमंतत्र.... 132

पहला प्रवचन

पहला सूत्रः आत्म-स्वतंत्रता का बोध

मेरे प्रिय आत्मन्!

अंधकार का अपना आनंद है, लेकिन प्रकाश की हमारी चाह क्यों? प्रकाश के लिए हम इतने पीड़ित क्यों हैं? यह शायद ही आपने सोचा हो कि प्रकाश के लिए हमारी चाह हमारे भीतर बैठे हुए भय का प्रतीक है, फियर का प्रतीक है। हम प्रकाश इसलिए चाहते हैं ताकि हम निर्भय हो सकें। अंधकार में मन भयभीत हो जाता है। प्रकाश की चाह कोई बहुत बड़ा गुण नहीं है, सिर्फ अंतरात्मा में छाए हुए भय का सबूत है। भयभीत आदमी प्रकाश चाहता है। और जो अभय है उसे अंधकार भी अंधकार नहीं रह जाता है। अंधकार की जो पीड़ा है, जो द्वंद्व है, वह भय के कारण है। और जिस दिन मनुष्य निर्भय हो जाएगा, उस दिन प्रकाश की यह चाह भी विलीन हो जाएगी।

और यह भी ध्यान रहे कि पृथ्वी पर बहुत थोड़े से ऐसे कुछ लोग हुए हैं जिन्होंने परमात्मा को अंधकार स्वरूप भी कहने की हिम्मत की। अधिक लोगों ने तो परमात्मा को प्रकाश माना है। गॉड इज लाइट, परमात्मा प्रकाश है, ऐसा ही कहने वाले लोग हुए हैं। लेकिन हो सकता है ये वे ही लोग हों जिन्होंने परमात्मा को भय के कारण माना हुआ है। जिन लोगों ने भी परमात्मा प्रकाश है, ऐसी व्याख्या की है, ये जरूर भयभीत लोग होंगे। ये परमात्मा को प्रकाश के रूप में ही स्वीकार कर सकते हैं। डरा हुआ आदमी अंधकार को स्वीकार नहीं कर सकता।

लेकिन कुछ थोड़े से लोगों ने यह भी कहा है कि परमात्मा परम अंधकार है। मैं खुद सोचता हूं, तो परमात्मा को परम अंधकार के रूप में ही पाता हूं। क्यों? क्योंकि प्रकाश की सीमा है, अंधकार असीम है।

प्रकाश की कितनी ही कल्पना करें, उसकी सीमा मिल जाएगी। कैसा ही सोचें, कितना ही दूर तक सोचें, पाएंगे कि प्रकाश सीमित है। अंधकार की सोचें, अंधकार कहां सीमित है? अंधकार की सीमा को कल्पना करना भी मुश्किल है। अंधकार की कोई सीमा नहीं, अंधकार असीम है। इसलिए भी कि प्रकाश एक उत्तेजना है, एक तनाव है। अंधकार एक शांति है, विश्राम है। लेकिन चूंकि हम सब भयभीत लोग हैं, डरे हुए लोग हैं। हम जीवन को प्रकाश कहते हैं और मृत्यु को अंधकार कहते हैं।

सच यह है कि जीवन एक तनाव है और मृत्यु एक विश्राम है। दिन एक बेचैनी है, रात एक विराम है। हमारी जो भाग-दौड़ है अनंत-अनंत जन्मों की, उसे अगर कोई प्रकाश कहे तो ठीक भी है, लेकिन जो परम मोक्ष है, वह तो अंधकार ही होगा।

यह शायद आपने सोचा भी न हो, प्रकाश की किरण आंख पर पड़ती है, तो तनाव होता है, परेशानी होती है। रात आप सोना चाहें, तो प्रकाश में सो नहीं सकते। प्रकाश में विश्राम करना मुश्किल है। अंधकार परम शांति में, गहन शांति में ले जाता है।

लेकिन जरा सा अंधकार और हम बेचैन और हम परेशान! जरा सा अंधकार और हम मुश्किल में कि क्या होगा, क्या न होगा? अंधकार से जो इतने परेशान, भयभीत, डरे हुए हैं; ध्यान रहे, वे शांत होने से भी इतने ही डरेंगे। अंधकार से जो इतना डरा है, ध्यान रहे, वह समाधि में जाने से भी इतना ही डरेगा। क्योंकि समाधि तो इस अंधकार से भी परम शांति है।

हम मरने से भी इसीलिए डरते हैं। मृत्यु का डर क्या है? मृत्यु ने कब, किसका क्या बिगाड़ा है? अब तक तो नहीं सुना कि मृत्यु ने किसी का कुछ बिगाड़ा हो। जीवन ने बहुत कुछ बिगाड़ा होगा। मृत्यु ने, नहीं सुना किसी का कुछ बिगाड़ा।

मृत्यु ने किसको तकलीफ दी है? जीवन तो बहुत तकलीफें देता है। जिंदगी है क्या, एक लंबी तकलीफों की कतार। मृत्यु ने कब किसको सताया है? और कब किसको परेशान किया? कब किसको दुख दिया? लेकिन मृत्यु से हम भयभीत हैं, और जीवन को हम छाती से लगाए हुए हैं।

और फिर मृत्यु परिचित भी नहीं है। और जो परिचित नहीं है, उससे डर कैसा? डरना चाहिए उससे जो परिचित हो। जिसे हम जानते ही नहीं, वह अच्छी है कि बुरी, यह भी पता नहीं, उससे डर कैसा?

डर मृत्यु का नहीं है, डर वही अंधकार में फिर खो जाने का है। जिंदगी रोशन मालूम पड़ती है, सब दिखाई पड़ता है--परिचित, पहचाने हुए लोग, अपना घर, मकान, गांव, सब दिखाई पड़ता है। मृत्यु एक घनघोर अंधकार मालूम होती है, जहां खो जाने पर कुछ दिखेगा नहीं--न अपने संगी-साथी, न मित्र, न परिवार, न प्रियजन, न वह सब जो हमने बनाया था, वह सब खो जाएगा। और न मालूम किस अंधकार में हम उतर जाएंगे। मन डरता है उस अंधकार में जाने से।

ध्यान रहे, अंधकार में जाने का डर एक डर और है। और वह डर है अकेले हो जाने का डर। आपको पता है, रोशनी में आप कभी अकेले नहीं होते, दूसरे लोग दिखाई पड़ते रहते हैं। अंधकार में कितने ही लोग इस जगह बैठे हों, आप अकेले हो जाएंगे, दूसरा दिखाई नहीं पड़ता, पता नहीं, है या नहीं।

अंधकार में हो जाता है आदमी अकेला, और आदमी को अकेला होना हो तो भी अंधकार में उतरना पड़ता है। ध्यान और समाधि और योग गहन अंधकार में प्रवेश की सामर्थ्य के नाम हैं।

सो अच्छा हुआ है कि नहीं है प्रकाश। और बड़ी गड़बड़ हो गई है कि दो-तीन बत्तियां वह हीरालालजी ले आए हैं। बरांत एक-दो और लगतीं, और ये दो बत्तियां और न मिलतीं तो अच्छा होता।

अपरिचित है अंधकार, उसमें हम अकेले हो जाते हैं। सब खोया-खोया लगता है। जाना, परिचित सब मिट गया लगता है। और ध्यान रहे, सत्य के रास्ते पर वे ही जा सकते हैं, जो परिचित को खोने की, जाने-माने को छोड़ने की; अनजान में, अपरिचित में, वहां जहां कोई मार्ग नहीं, पगडंडी नहीं, उतरने की जो क्षमता रखते हैं, वे ही सत्य में उतर पाते हैं।

ये थोड़ी सी बातें प्रारंभ में मैंने कहीं, और इसलिए कहीं कि अंधकार को जो प्रेम नहीं कर पाएगा, वह जीवन के बहुत बड़े सत्यों को प्रेम करने से वंचित रह जाता है। अब दुबारा जब अंधकार में हों, तो एक बार अंधकार को भी गौर से देखना, इतना घबड़ाने वाला नहीं है। और जब दुबारा अंधकार घेर ले, तो उसमें लीन हो जाना, एक हो जाना। और आप पाएंगे, जो प्रकाश ने कभी नहीं दिया वह अंधकार देता है। जीवन का सारा महत्वपूर्ण रहस्य अंधकार में छिपा है।

वृक्ष है ऊपर, जड़ें हैं अंधेरे में नीचे। दिखती नहीं। दिखता है वृक्ष के तने, पत्ते, पौधे, सब दिखता है। फल लगते हैं। जड़ दिखती नहीं, जड़ अंधकार में काम करती रहती है। निकाल लो जड़ों को प्रकाश में और वृक्ष मर जाएगा। वह जो जीवन की अनंत लीला चल रही है वह अंधकारमय है। मां के गर्भ में, अंधेरे में जन्म होता है जीवन का। जन्मते हैं हम अंधकार से। मृत्यु में फिर खो जाते हैं अंधकार में।

कोई कहता था, किसी ने गाया है कि जीवन क्या है? जैसे किसी भवन में जहां एक दीया जलता हो, थोड़ी सी रोशनी हो, और जिस भवन के चारों ओर घनघोर अंधकार का सागर हो। कोई एक पक्षी उस अंधेरे

आकाश से भागता हुआ उस दीये जलते हुए भवन में घुस जाए। थोड़ी देर तड़फड़ाए, फिर दूसरी खिड़की से बाहर निकल जाए। ऐसे एक अंधकार से हम आते हैं और दूसरे अंधकार में जीवन के दीये में थोड़ी देर पंख फड़फड़ा कर फिर खो जाते हैं।

अंततः तो अंधकार ही साथी होगा। उससे इतना डरेंगे तो कब्र में बड़ी मुश्किल होगी। उससे इतने भयभीत होंगे तो मृत्यु में जाने में बड़ा कष्ट होगा। नहीं, उसे भी प्रेम करना सीखना पड़ेगा।

और प्रकाश को प्रेम करना तो बहुत आसान है। प्रकाश को कौन प्रेम नहीं करने लगता है? सो प्रकाश को प्रेम करना बड़ी बात नहीं है। अंधकार को प्रेम! अंधकार को भी प्रेम। और ध्यान रहे, जो प्रकाश को प्रेम करता है, वह तो अंधकार को नफरत करने लगेगा। लेकिन जो अंधकार को भी प्रेम करता है, वह प्रकाश को तो प्रेम करता ही रहेगा। इसको भी ख्याल में ले लें।

क्योंकि जो अंधकार तक को प्रेम करने को तैयार हो गया, अब प्रकाश को कैसे प्रेम नहीं करेगा? अंधकार का प्रेम प्रकाश के प्रेम को तो अपने में समा लेता है, लेकिन प्रकाश का प्रेम अंधकार के प्रेम को अपने में नहीं समाता।

जैसे, मैं सुंदर को प्रेम करूं, सो तो बहुत आसान है। सुंदर को कौन प्रेम नहीं करता? लेकिन असुंदर को प्रेम करने लगूं, तो जो असुंदर को प्रेम कर लेगा, वह सुंदर को तो प्रेम कर ही लेगा। लेकिन इससे उलटा सही नहीं है। सुंदर को प्रेम करने वाला असुंदर को प्रेम नहीं कर पाता है। फूलों को कोई प्रेम करे, तो फूल को तो प्रेम कर ही लेगा, लेकिन कांटों को कोई प्रेम नहीं कर पाएगा। फूलों को प्रेम करने के कारण कांटों को प्रेम करने में बाधा पड़ सकती है। लेकिन कांटों को कोई प्रेम करने लगे, तो फूलों को प्रेम करने में तो बाधा नहीं पड़ती। ये ऐसे ही दो शब्द शुरू में कहे हैं।

एक छोटी सी कहानी मुझे याद आती है, उससे आने वाली तीन दिन की चर्चाओं की शुरुआत करूं।

ऐसी ही रात होगी, आकाश में चांद था और एक पागल आदमी एक अकेले रास्ते से गुजरता था। एक वृक्ष के पास रुका। और वृक्ष के पास ही एक बड़ा कुआं है। और उस पागल आदमी ने उस कुएं में झांक कर देखा। कुएं में चांद की परछाईं बनती थी। उस पागल आदमी ने सोचा, बेचारा चांद कुएं में कैसे गिर पड़ा? क्या करूं? कैसे बचाऊं? और कोई दिखता नहीं। नहीं बचाया, मर भी जा सकता है।

और फिर एक मुश्किल और थी, रमजान का महीना था, और चांद कुएं में पड़ा रहा तो रमजान के उपवास करने वालों का क्या होगा? वे कब खत्म करेंगे? वे तो मर जाएंगे। वह रमजान का उपवास करने वाला तो चौबीस घंटे सोचता है, कब खत्म हो, कब खत्म हो। सभी उपवास करने वाले ऐसे ही सोचते हैं। सभी धार्मिक क्रिया-कांड करने वाले यही सोचते हैं, कब घंटा बजे, छुट्टी हो। स्कूल के बच्चों से ज्यादा अच्छी धार्मिक लोगों की हालत नहीं होती।

क्या होगा? रमजान का महीना है और चांद फंस गया कुएं में। उस पागल आदमी ने सोचा, अपने को तो इन रमजान वगैरह से कोई मतलब नहीं, लेकिन यहां कोई दूसरा दिखाई भी नहीं पड़ता है।

न मालूम कहां से खोज-बीन कर रस्सी लाया बेचारा। कुएं में फेंकी, फंदा बनाया, चांद को फंसाया; चांद तो फंसा नहीं, चांद तो वहां था नहीं। लेकिन एक चट्टान फंस गई। वह जोर से रस्सी खींचने लगा। चट्टान में फंसी रस्सी ऊपर नहीं आती। उसने कहा, चांद बड़ा वजनी है। अकेला आदमी, खींचूं भी तो कैसे खींचूं। और न मालूम कब से गिरा है, मरा है कि जिंदा है, भार भी कितना हो गया। और कैसे लोग हैं कि दुनिया में किसी को खबर नहीं! कितने लोग चांद की कविताएं पढ़ते हैं, गीत गाते हैं, और जब चांद फंस गया मुसीबत में, तो किसी

कवि का--कोई यहां दिखाई नहीं पड़ रहा कि कोई उसे बचाए। कुछ होते हैं जो कविता ही गाते हैं। वक्त पर कभी नहीं आते। सच तो यह है कि जो वक्त पर नहीं आते हैं वे कविता करना सीख जाते हैं। खींच रहा है, खींच रहा है; आखिर फंदा था, टूट गया, जोर लगाया, चट्टान थी मजबूत। धड़ाम से गिरा है, आंख मिच गई, सिर खुल गया, छींटे उचटे, ऊपर आंख गई, चांद आकाश में भागा चला जा रहा। उसने कहाः चलो बचा दिया बेचारे को, अपने को थोड़ा लगा तो लगा। निकल गया।

उस पर हमें हंसी आती है, उस पागल आदमी पर। बाकी गलती क्या थी उसकी?

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं मुक्त कैसे हो जाएं?

मैं उनको यह कहानी सुना देता हूं।

वे पूछते हैं, मोक्ष कैसे पाएं?

मैं उनको यह कहानी सुना देता हूं।

वे हंसते हैं कहानी पर। और फिर पूछते हैंः कोई मुक्ति का रास्ता बताइए? तब मैं सोचता हूं, समझे नहीं कहानी। कोई फंसा हो तो मुक्त हो सकता है। कोई बंधा हो तो छोड़ा जा सकता है। लेकिन कोई कभी बंधा ही न हो। और केवल प्रतिबिंब में देख कर समझा हो कि बंध गए हैं, तो मुसीबत हो जाती है।

सारी मनुष्यता इस उलझन में पड़ी है उस पागल की तरह, जिसका चांद कुएं में फंस गया था। सारी दुनिया इस मुश्किल में पड़ी है।

दो तरह के लोग हैं दुनिया में, वह पागल तो इकट्ठा था। दुनिया में दो तरह के पागल हैं। एक वे हैं जो मानते हैं कि चांद फंसा है। दूसरे वे हैं जो फंसे चांद को निकालने की कोशिश करते हैं। पहले का नाम गृहस्थ है। दूसरे का नाम संन्यासी है।

दो तरह के पागल हैं। संन्यासी कहता हैः हम तो आत्मा को मुक्त करके रहेंगे। और गृहस्थ कहता हैः फंस गए हैं, अब क्या करें? कैसे निकलें? फंसे हैं। वे जो फंस गए हैं वे उनके पैर छूते हैं जो मुक्त करने की कोशिश कर रहे हैं। दो तरह के पागल हैं, एक कहता है, चांद फंस गया। दूसरा निकाल रहा है। जो फंस गया है वह उसके पैर छूता है जो निकाल रहा है।

सत्य बहुत और है। और वह सत्य ख्याल में आ जाए तो सारी जिंदगी बदल जाती है और हो जाती है। सत्य यह है कि मनुष्य कभी फंसा ही नहीं है। वह जो हमारे भीतर है वह निरंतर मुक्त है, वह किसी बंधन में कभी नहीं हुआ है। लेकिन परछाईं फंस गई है, रिफ्लेक्शन फंस गया। हम तो बाहर हैं और हमारी तस्वीर फंस गई है। और हमें कुछ पता ही नहीं कि हम तस्वीर से ज्यादा भी हैं। हमें यही पता है कि हम अपनी तस्वीर हैं। फिर मुश्किल हो गई है। हम सब अपनी तस्वीर को ही अपना होना समझे बैठे हैं।

एक आदमी नेता है, एक आदमी गरीब है, एक आदमी अमीर है, एक आदमी गुरु है, एक आदमी शिष्य है, एक आदमी पति है, कोई पत्नी है--ये सब तस्वीरें हैं जो दूसरों की आंखों में हमें दिखाई पड़ती हैं। मैं जैसा हूं, वह मैं वैसा हूं। मैं वैसा नहीं हूं जैसा आपकी आंख में दिखाई पड़ता है। आपकी आंख में जो दिखाई पड़ता है, वह मेरी परछाईं है। उसी परछाईं में मैं फंस गया हूं।

आज आप रास्ते पर मिले और मुझे नमस्कार किया और मैं खुश हुआ कि मैं बहुत अच्छा आदमी हूं; चार आदमी नमस्कार करते हैं। अब बड़ा मजा है कि चार आदमियों के नमस्कार करने से कोई आदमी अच्छा कैसे हो जाएगा? चार नहीं पचास करें, हजार करें, अच्छे होने से किसी के नमस्कार करने का क्या संबंध है? और इस दुनिया में जहां कि बुरे आदमियों को हजारों नमस्कार मिल जाते हों, वहां इस भ्रम में पड़ना कि चार आदमियों

ने नमस्कार कर लिया तो मैं अच्छा आदमी हो गया। बड़ी परछाईं में फंस जाना है। फिर कल ही ये चार आदमी नमस्कार नहीं करते, पीठ फेर कर चले जाते हैं, फिर मुसीबत शुरू हो जाती है। वह परछाईं फंस गई, अब वह परछाईं मांग करती है कि नमस्कार करो! और हमने परछाईं पकड़ ली, अब हम कहते हैं कि नमस्कार करो! नमस्कार नहीं की जाएगी तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा।

देखें न, एक आदमी मिनिस्टर हो जाए और फिर न मिनिस्टर हो जाए, देखें उसकी कैसी हालत हो जाती है। जैसे कपड़े से इस्तरी उतर गई हो, सब कलफ उतर गया हो; जैसे कपड़े को पहने-पहने सो गए हों, कई दिनों से सो रहे हों, उसी को पहने चले जा रहे हैं, जो शक्ल उसकी हो जाती है। एक आदमी मिनिस्टर हो जाए एक दफे, फिर उतर जाए नीचे। वह उसकी हालत हो जाती है, बिल्कुल लुंज-पुंज। क्या हो गया इस आदमी को?

परछाईं में फंस गया। परछाईं पकड़ गई। अब वह कहता है, वही परछाईं जो दिखाई पड़ी थी, वही मैं हूं। अब मैं दूसरा अपने को मानने को राजी नहीं हूं। हां, परछाईं और गहरी हो तो ठीक है। छोटा मिनिस्टर बड़ा मिनिस्टर बने तो ठीक है। छोटा क्लर्क बड़ा क्लर्क बने... कोई भी और बात हो। परछाईं बढ़े तो ठीक है, परछाईं घटे तो मुश्किल है। क्योंकि समझ लिया कि मैं परछाईं हूं।

आदमी इज्जत देता है तो, आदमी अपमान करता है तो। हमने कभी यह ख्याल किया कि हमने अपनी शक्ल देखी ही नहीं? वह जो ओरिजिनल फेस, जिसको हम कहें, मेरा चेहरा, वह मुझे पता ही नहीं है। सब परछाईं देखी हैं।

बाप जब बेटे के सामने खड़ा होता है, तो देखी उसकी अकड़? बाप जब बेटे से कहता है कि तू भी क्या जानता है, मैंने जिंदगी देखी है, मैंने उम्र देखी है। अभी उम्र आएगी, अनुभव होगा, तब पता चलेगा। वह बाप किससे बोल रहा है? वह बाप बेटे से बोल रहा है? नहीं। वह खुद बोल रहा है? नहीं। एक परछाईं बोल रही है। एक परछाईं जो बेटे की आंख में पकड़ रहा है। बेटा डरा हुआ है, बाप के हाथ में बेटे की गर्दन है। बेटा डरा हुआ है। आंख में परछाईं बन रही है। और जो डरा हुआ है, उसे और डराया जा सकता है। यही बाप अपने मालिक के सामने बिल्कुल पूंछ दबा कर खड़ा हो जाता है। और मालिक कुछ भी कहता है, वह कहता है, जी हां!

मैंने सुना है, एक फकीर था, वह कुछ दिनों के लिए एक राजा का नौकर हो गया था। ऐसे ही, फकीर क्या किसी के नौकर होते हैं? जो किसी का मालिक नहीं होना चाहता वह किसी का नौकर हो भी नहीं सकता है। फिर क्यों हो गया था? ऐसे ही कुछ कारण था। जानना चाहता था कि राजाओं के नौकर कैसे जीते होंगे?

नौकर हो गया था राजा का। तो राजा ने पहले दिन ही, सब्जी बनी थी कोई, सब्जी खाई, इस नौकर को भी खिलाई और रसोइए को कहा कि रोज यह सब्जी बनाना। और इससे पूछा क्या ख्याल है फकीर, तुम्हारा क्या ख्याल है? सब्जी कैसी है?

उसने कहाः मालिक, इससे अच्छी सब्जी दुनिया में होती ही नहीं। यह तो अमृत है। सात दिन रसोइया वही सब्जी बनाता रहा, राजा की आज्ञा थी।

अब सात दिन एक ही सब्जी खानी पड़े, तो पता है क्या हालत हो जाए। घबड़ा गई तबीयत। स्वर्ग से भी घबड़ा जाता है आदमी अगर सात दिन रहना पड़े। कहेगा, थोड़ा नरक तफरी कर आएं, फिर वापस भला आ जाएं। लेकिन अब सात दिन... स्वर्ग रहते-रहते तबीयत घबड़ा जाती है। इसीलिए तो देवता जमीन पर उतरते हैं। किसलिए उतरे, उधर तबीयत घबड़ा जाती है, जी मचलाता है कि छोड़ो, थोड़े दिन जमीन पर हो आओ।

घबड़ा गई तबीयत। सात दिन बाद उसने चिल्ला कर थाली पर लात मार दी और रसोइए से कहाः क्या बदतमीजी है, रोज-रोज वही?

रसोइए ने कहाः मालिक आपने कहा था।

फकीर ने कहा कि जहर है यह सब्जी, रोज खाओगे, मर जाओगे।

राजा ने कहाः अरे, हद्द! तू सात दिन पहले कहता था, अमृत है।

उस फकीर ने कहाः मालिक, हम आपके नौकर हैं, सब्जी के नौकर नहीं हैं! हम तो आपके नौकर हैं। जो देखते हैं कौन सी परछाईं बन रही, वही कह देते हैं। उस दिन आपने कहा, अमृत है, बहुत पसंद आई। हमने कहाः अमृत है, इससे ऊंची सब्जी नहीं। हम कोई सब्जी के नौकर हैं? हम तो आपके नौकर हैं। आज आप कहते हैं, नहीं जंच रही। हम कहते हैं, जहर है, जो खाएगा वह मर जाएगा। कल आप कहोगे, अमृत है, बहुत अच्छी लग रही है। हम कहेंगे, इससे बढ़िया अमृत मिलता ही नहीं कहीं, यही अमृत है। हम आपके नौकर हैं। हम कोई सब्जी के नौकर थोड़े ही हैं। हम तो आपकी आंख की परछाईं देख कर जीते हैं।

हम सब ऐसे जीते हैं। वह जो भीतर बैठा हुआ है उसका न तो हमें पता है, न वह कहीं फंस गया है, न वह फंस सकता है, न कोई उपाय है उसके बंधन में पड़ जाने का। और मजा यह है कि उसको छुड़ाने की कोशिश चल रही है कि उसे हम कैसे मुक्त करें?

उसका सवाल ही नहीं। वह कभी बंधन में पड़ा ही नहीं है। बंधन में कोई और चीज पड़ गई है। और जो चीज पड़ गई है, उसको हम सोच भी नहीं रहे हैं, ध्यान पर भी नहीं ले रहे हैं। क्या है अशांति आदमी को? कौन सा दुख है? कौन सी पीड़ा है? वह परछाईं है। वह परछाईं डगमगाती है, चित्त अशांत होता है। वह परछाईं टूटती है, दुखी होता है। वह परछाईं बढ़ती है, चित्त बड़ा प्रसन्न होता है।

मैंने सुना है, एक दिन सुबह ही सुबह एक छोटा सा सियार शिकार के लिए निकला है, कुछ खाने-पीने की खोज करने। रेगिस्तान है, सूरज निकला है। और सियार की बड़ी लंबी परछाईं बन रही है। और वह सियार कहता है कि आज छोटे-मोटे खाने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि वह समझ रहा है, मैं ऊंट हूं। इतनी लंबी परछाईं! सो आज इस छोटे-मोटे खाने से काम नहीं चलेगा। हम कोई छोटे जानवर नहीं हैं। आज काफी शिकार करनी पड़ेगी।

अब वह अकड़ कर चल रहा है। और वह शिकार खोज रहा है। तब तक सूरज ऊपर बढ़ता चला गया। अभी शिकार मिला नहीं, दोपहर आ गई। शिकार मिला नहीं, उसने वापस एक दफे परछाईं देखी, वह तो सिकुड़ कर छोटी सी हो गई। उसने कहाः अरे, खाना न मिलने से कैसी खराब हालत हो गई। क्या शरीर लेकर निकले थे, क्या शरीर हो गया। अब तो कोई छोटा-मोटा शिकार ही मिल जाए, तो भी काम चल जाएगा। लेकिन मन बड़ा दुखी है। मन बड़ा दुखी है।

हम सब भी जिंदगी के शुरू में ऐसे ही निकलते हैं, बड़ी लंबी छाया बनती है। सूरज निकलता है जिंदगी के शुरू-शुरू में। और हर बच्चा ऐसा भर कर निकलता है कि जीत लेंगे दुनिया को। हर आदमी सिकंदर होता है बचपन में। बुढ़ापे में सिकुड़ जाती है छाया। वह सोचता है, सब बेकार है, कुछ सार नहीं। लेकिन जीता छाया पर है। और छाया बनती है हमारे आस-पास जो दूसरे लोग हैं उनकी आंखों में। और मजा यह है कि जो मुक्त होना चाहते हैं, वे भी इसी छाया पर जीते हैं।

एक संन्यासी है, गेरुआ वस्त्र पहने हुए है, अब संन्यास का गेरुआ वस्त्रों से क्या मतलब? लेकिन गेरुआ वस्त्र दूसरे की आंख में जो परछाईं बनाते हैं, वह बड़ी रिस्पेक्टेबल है, वह बड़ी आदरपूर्ण है। गेरुआ वस्त्र देख कर ही दूसरा आदमी एकदम झुका-झुका हो जाता है। वह जो तस्वीर बनती दूसरे की आंख में, वह तस्वीर बनाने के लिए गेरुआ वस्त्र है। नहीं तो गेरुआ वस्त्र की क्या जरूरत है?

कोई संन्यासी होने के लिए दो पैसे की गेरू कुछ काम कर सकती है? नहीं तो सारी गेरू खरीद लो, अपने घर में रख लो। सब रंग दो, सारा घर, सारे कपड़े--सब रंग दो। अपना शरीर भी रंग लो। उससे सर्कस के शेर बन जाओगे। संन्यासी तो नहीं बन जाओगे। और संन्यासी के नाम पर सर्कस के शेर इकट्ठे हैं।

चित्त क्या है? एक आदमी मंदिर जा रहा है सुबह-सुबह, जोर से भजन गा रहा है। जरा ख्याल करें उसको, अगर सड़क पर कोई न दिखेगा, भजन धीरे हो जाएगा। कोई दो-चार आदमी आते दिखेंगे, जोर से आवाज निकलने लगेगी। बड़ा मजा है। तुम्हें भगवान से मतलब कि चार आदमी जो आ-जा रहे हैं इनसे मतलब है? वह पूजा कर रहा है, वह बार-बार लौट कर देख लेता है कि कोई देखने वाला आया कि नहीं? कोई नहीं आया तो जल्दी पूजा खत्म हो जाती है, कोई आया तो देर तक भी चलती है। कोई ऐसा आदमी आ गया जिससे कोई और काम भी निकालना हो, तो और देर तक चलती है।

यह क्या हो रहा है? ये परछाईं पर जी रहे हैं। एक आदमी रोज सुबह-सुबह मंदिर होकर घर लौट आता है। चाहता है कि लोग कहें धार्मिक है। लोगों के कहने से क्या मतलब? लेकिन हम, लोगों की आंखों में जो बन रहा है, उस पर जी रहे हैं।

वह जो कुएं में छाया बन रही है चांद की, वह फंस गई है। और बड़ी कठिनाई है, कैसे निकालें इसको? कैसे मुक्त करें? तो मुक्ति के न मालूम कितने पंथ बन गए हैं। कोई कहता है, राम-राम जपो, इससे निकल जाओगे बाहर। कोई कहता है, ओम के बिना रास्ता नहीं है। कोई कहता है, अल्लाह-अल्लाह करो। कुछ और भी मिल गए हैं, खिचड़ी बनाने वाले, वे कहते हैं, अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम। दोनों ही इकट्ठे जोड़ दो। एक से नहीं चलेगा, दोनों की ताकत लगाओ। शायद दोनों काम कर जाएं। पता नहीं कौन असली हो? दोनों को जोड़ दो। सब, सबको ही। सभी साधुओं को नमस्कार कर लो। नमो लोए सव्वसाहूणं! जितने भी साधु हैं, सबको ही नमस्कार कर लो। सब की टांग पकड़ लो, एक साधु से न चले काम तो सब साधुओं को पकड़ लो। और बचने का उपाय करो। बचना जरूरी है, क्योंकि बड़े दुख हैं जिंदगी में, कष्ट हैं।

सच है यह बात, जिंदगी में कष्ट हैं और दुख हैं, तकलीफें हैं। और बहुत बेचैनी है आदमी को। लेकिन बेचैनी किसलिए है? तकलीफ किसलिए है? जिस वजह से तकलीफ है उस वजह को देखो मत।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने मुझे आकर कहा कि मैं बहुत अशांत हूं। शांति का कोई रास्ता बताइए? मेरे पैर पकड़ लिए। मैंने कहाः पैर से दूर रखो हाथ, क्योंकि मेरे पैरों से तुम्हारी शांति का क्या संबंध हो सकता है? सुना नहीं कहीं। और मेरे पैर को कितने ही काटो-पीटो, कुछ पता नहीं चलेगा कि तुम्हारी शांति मेरे पैर में कहां। मेरे पैर का कसूर भी क्या है तुमसे? तुम अशांत हुए तो मेरे पैर ने कुछ बिगाड़ा तुम्हारा?

वह आदमी बहुत चौंका। उसने कहाः आप यह क्या बात कहते हैं? मैं ऋषिकेश गया, वहां शांति नहीं मिली। अरविंद आश्रम गया, वहां शांति नहीं मिली। अरुणाचल होकर आया, रमण के आश्रम में चला गया, वहां शांति नहीं मिली। कहीं शांति नहीं मिली। सब ढोंग-धतूरा चल रहा है। किसी ने मुझे आपका नाम लिया, तो मैं आपके पास आया हूं।

मैंने कहाः तुम उठो दरवाजे के एकदम बाहर हो जाओ। नहीं तो तुम जाकर कल यह भी कहोगे, वहां भी गया, वहां भी शांति नहीं मिली। और मजा यह है कि जब तुम अशांत हुए थे, तुम किस आश्रम में गए थे? किस गुरु से पूछने गए थे अशांत होने के लिए? तुमने किससे शिक्षा ली थी अशांत होने की? मेरे पास आए थे? किसके पास गए थे पूछने कि मैं अशांत होना चाहता हूं गुरुदेव, अशांत होने का रास्ता बताइए? अशांत सज्जन आप खुद हो गए थे, अकेले काफी थे। और शांत होने, दूसरे के ऊपर दोष देने आए हो। अगर नहीं हुए तो हम

जिम्मेवार होंगे। आप अगर शांत नहीं हुए तो हम जिम्मेवार हुए होंगे, जैसे कि हमने आपको अशांत किया हो। आप हमसे पूछने आए थे?

नहीं, आपसे तो पूछने नहीं आया। किससे पूछने गए थे? किसी से पूछने नहीं गया। तो मैंने कहाः फिर ठीक से समझने की कोशिश करो, कि खुद अशांत हो गए हो, कैसे हो गए हो, किस बात से हो गए हो, उसकी खोज करो। पता चल जाएगा, इस बात से हो गए। वह बात करना बंद कर देना। शांत हो जाओगे।

शांत होने की कोई विधि थोड़े ही होती है। अशांत होने की विधि होती है। और अशांत होने की विधि जो छोड़ देता है, वह शांत हो जाता है। मुक्त होने का कोई रास्ता थोड़े ही होता है। अमुक्त होने का रास्ता होता है। बंधने की तरकीब होती है। जो नहीं बंधता, वह मुक्त हो जाता है।

मैं मुट्ठी बांधे हुए हूं। जोर से बांधे हुए हूं। और आपसे पूछूं कि मुट्ठी कैसे खोलूं? तो आप कहेंगे, खोल लीजिए, इसमें पूछना क्या है। बांधिए मत कृपा करके, खुल जाएगी। मुट्ठी खोलने के लिए कुछ और थोड़े ही करना पड़ता है, सिर्फ मुट्ठी को बांधो मत। बांधते हो तो मुट्ठी बंधती है। मत बांधो, खुल जाती है। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है। बांधना चेष्टा है, श्रम है। खुला होना, सहजता है।

आदमी की आत्मा सहज ही मुक्त है, शांत है, आनंदित है। दुखी हैं, आप तरकीब लगा रहे हैं। बंधन में हैं, आपने हथकड़ियां बनाई हैं। कष्ट भोग रहे हैं, आप कष्ट पैदा करने में बड़े कुशल मालूम होते हैं। यह आपकी कुशलता है कि आप कष्ट पैदा कर रहे हैं। यह आपकी कारीगरी है कि आप दुख निर्माण कर रहे हैं। और साधारण कारीगर नहीं हैं आप, क्योंकि उस आत्मा पर आप दुख का मकान बना लेते हैं जिस आत्मा को दुख छूना मुश्किल है।

और आप कोई साधारण होशियार लोहार नहीं हैं, आप उस आत्मा पर जंजीरें बिठा देते हैं जिस आत्मा पर कभी कोई जंजीर न बैठी है, न बैठ सकती है। और हद्द मजा है। खुद जंजीरें बिठा देते हैं और फिर उन जंजीरों को लेकर घूमते हैं कि हम इनसे कैसे मुक्त हो जाएं? कोई रास्ता चाहिए--शांत कैसे हो जाएं, आनंदित कैसे हो जाएं, दुख के बाहर कैसे हो जाएं?

पहले दिन इस प्राथमिक चर्चा में मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि परछाईं दुख है, परछाईं पीड़ा है, परछाईं बंधन है। और हम सब परछाईं में जीते हैं। और जो आदमी परछाईं में जीता है वह कभी स्वयं में नहीं जी सकता। परछाईं में जो जीता है वह स्वयं में कैसे जीएगा। और जिसकी नजर परछाईं पर लगी है, वह अपने पर कैसे वापस आएगा?

मैंने सुना है, एक घर में एक छोटा सा बच्चा है। और वह भाग रहा है और रो रहा है, भाग रहा है, रो रहा है। और उसकी मां उससे पूछती है कि बात क्या है? वह कहता है कि मुझे मेरी परछाईं पकड़नी है। वह भागता है, बड़ी मुश्किल है, परछाईं बड़ी चालाक है। आप भागो वह आपके आगे निकल जाती है। वह बच्चा रो रहा है, छाती पीट रहा है। भागता है, फिर परछाईं आगे निकल जाती है। वह अपने सिर को पकड़ना चाहता है। वह कैसे सिर को पकड़े?

कैसे सिर को पकड़े? और एक फकीर द्वार पर भीख मांगने आया है, वह हंसने लगा है। मां भी परेशान है। और वह हंसने लगा है और उस फकीर ने कहाः ऐसे नहीं, ऐसे नहीं। यह कोई रास्ता नहीं है। यह लड़का मुश्किल में पड़ जाएगा। यह लड़का संसार के रास्ते पर निकल गया।

उसकी मां ने कहाः कैसा संसार का रास्ता? यह तो खेल रहा है।

उसने कहाः खेलने में यह आदमी संसार के रास्ते पर उलझा हुआ है।

क्या करें?

वह फकीर भीतर गया, उसने उस रोते हुए लड़के का हाथ पकड़ कर उसके सिर पर रखवा दिया। इधर हाथ सिर पर गया, उधर परछाईं के सिर पर भी हाथ चला गया। वह लड़का कहने लगा, पकड़ ली। आश्चर्य, आपने इतनी आसानी से पकड़ा दी।

अपने सिर पर हाथ रखने से परछाईं पकड़ में आ गई। क्योंकि परछाईं के सिर पर भी हाथ चला गया। परछाईं तो वही बन जाती है जो हम होते हैं।

लेकिन परछाईं को कुछ करने आप जाएं तो आप नहीं बदलते, आप बदल जाएं तो परछाईं बदल जाती है। और हम सारे लोग परछाईं के साथ कुछ करने की कोशिश में लगे हुए हैं, जन्म से लेकर मरने तक। और एक जन्म नहीं, अनंत जन्मों तक हम परछाईं के पीछे दौड़ने वाले लोग हैं, छाया के पीछे। और छाया के पीछे दौड़ने से न तो छाया पकड़ में आती है, चित्त दुखी हो जाता है। न छाया मिलती है, चित्त हार जाता है। छाया बार-बार हाथ से छूट जाती है और लगता है कि हम हीन हैं, हम शक्तिशाली नहीं हैं, हम हार गए। और फिर छाया न मालूम किन-किन कारागृहों में फंसती हुई मालूम पड़ती है। फिर हम उसके छुटकारे के उपाय में लग जाते हैं। मंत्र पढ़ते हैं, जाप करते हैं, गीता पढ़ते हैं, रामायण पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं। न मालूम क्या-क्या उपाय करते हैं। सब करते हैं और कुछ भी नहीं हो सकता है। क्योंकि जो करना है वह हम करते ही नहीं। करना है यह कि हम यह देखें और पहचानें ठीक से।

कौन उलझ गया है? मैं? मैं उलझा हूं कभी? मैं उलझा हूं कभी? कौन अशांत हो गया है? मैं? मैं कभी अशांत हुआ हूं? आप कहेंगे, हजार बार हुए हैं, रोज हुए हैं, अभी हुए बैठे हुए हैं।

लेकिन मैं फिर आपसे कहता हूं कि खोज करेंगे तो हैरान हो जाएंगे। कभी आप अशांत नहीं हुए। वह जो आपका अंतर्तम है, वह जो गहरे से गहरे आपका होना है, वह जो इनरमोस्ट बीइंग है, वह जो भीतर से भीतर आपका सत्व है, वह जो आप हैं, वह कभी अशांत नहीं हुआ है।

परछाईं फंस गई। वह कभी अशांत नहीं हुआ, दुखी नहीं हुआ, लेकिन परछाईं दुखी हो रही, अशांत हो रही, पीड़ित हो रही। एक नदी है छोटी सी, शांत, ज्यादा बहती नहीं, भारतीय नदी है, कि भारत में कोई चीज बहती ही नहीं, नदी तक नहीं बहती। सब चीजें ठहरी रहती हैं, सब खड़ा है, इसलिए सब सड़ गया है। खड़ी होगी चीज, सड़ जाएगी। भारतीय नदी होगी। ठहरी हुई है बिल्कुल, कोई चीज बहती नहीं। कचरा डाल दो, वह वहीं पड़ा रहता है। जन्मों के बाद आओ, वहीं मिलेगा। वहीं सड़ा हुआ मिलेगा। सब गंदा हो गया है।

एक कुत्ता उसके किनारे पानी पीने को आया हुआ है। ठहरी हुई नदी है। छाया बनती है, प्रतिबिंब बनता है। नीचे देख कर कि कोई दूसरा कुत्ता है, कुत्ता डर कर पीछे हट जाता है। तेज प्यास है, बड़ी प्यास है। पानी पीना है जरूर। प्यास धक्के मारती है, कुत्ता किनारे पर आता है। लेकिन नीचे कोई कुत्ता है, उससे डर कर वह फिर पीछे हट आता है। पानी पास है, प्यास भीतर है। पानी बाहर है, प्यास भीतर है। प्यास मौजूद है, पानी मौजूद है। कोई बाधा नहीं है। एक बाधा पड़ जाती है, कुत्ता नदी के पास जाता है फिर लौट आता है डर कर, नीचे कोई कुत्ता है। लेकिन कब तक लौटेगा? कोई गुजरता है आदमी पास से, देखता है, खूब हंसता है। कुत्ते पर नहीं, कुत्ते पर तो नासमझ हंसते हैं, अपने पर हंसता है कि ऐसा ही अपनी छाया के आस-पास डोल-डोल कई दफे मैं भी लौट आया हूं।

जाता है पास, वह कुत्ते को धक्का दे देता है। कुत्ता बड़ा इनकार करता है। किसी को भी धक्का दो, इनकार करेगा वह। चाहे आप अमृत के कुंड में धक्का दो, तो इनकार करेगा। धक्का दिए जाने से आदमी इनकार करता है। आदमी जड़ होकर खड़ा हो जाता है, वहां से हिलना नहीं चाहता।

वह आदमी जबरदस्ती कुत्ते को धक्का दे देता है। एक धक्का लगता है, कुत्ता पानी में गिर जाता है, वहां कोई छाया नहीं, छाया खत्म हो गई। वह कुत्ता पानी पीता है। वह फकीर फिर हंसता है।

अगर कुत्ता पूछ सकता होता तो पूछता कि क्यों हंसते हो? लेकिन कुत्ता नहीं पूछ सकता, हम तो पूछ सकते हैं। पूछो आदमी से क्यों हंसते हो? वह आदमी कहता है, इसलिए हंसता हूं कि यही मेरी हालत रही है। यही मेरी हालत रही है, अपनी ही परछाईं न मालूम कितनी मुश्किलों में, बाधाओं, न मालूम कितनी दीवालें बन जाती है। अपनी ही परछाईं आड़े आ जाती है। अपनी परछाईं किसकी आंख में बनती है, कोई नदी पर नहीं बनती हमारी परछाईं, कोई दर्पण पर नहीं बनती।

दर्पण और नदी में तो सब ठीक ही है, असली तो आस-पास के आदमी की आंख में हमारी जो परछाईं बनती है, वहीं हम उलझे हैं, वहीं हम खड़े हैं। जो कहा जाता है कि संसार में उलझ गया है आदमी, वह आदमी की आत्मा नहीं उलझ जाती, सिर्फ परछाईं उलझ जाती है।

स्वयं से निरंतर पूछना जरूरी है। जब आप दुख में हों, जब भारी दुख हो, तब एक क्षण को द्वार बंद करके एकांत में बैठ जाना और पूछना अपने से, मैं दुखी हूं? और मैं आपसे कहता हूं, कि अगर आपने ईमानदारी से और पूरी प्रामाणिकता से अपने से यह पूछा कि मैं दुखी हूं, तो आप तत्क्षण पाएंगे, आपके भीतर से आता हुआ उत्तर कि दुख मेरे चारों तरफ हो सकता है, लेकिन मैं दुखी नहीं हूं।

आपकी टांग टूट गई है, पैर दुख रहा है, पीड़ा हो रही है, तो पूछना आप अपने से कि मुझे हो रही है? मैं पीड़ित हूं? और निश्चित ही साफ-साफ दिखाई पड़ जाएगा कि पैर दुख रहा है। दुखने की खबर हो रही है। लेकिन मैं, मैं तो दूर खड़ा एक साक्षी हूं, मैं तो देख रहा हूं।

एक मेरे मित्र हैं, गिर पड़े सीढ़ियों से। बूढ़े आदमी हैं। पैर टूट गया। डाक्टरों ने बांध दिया बिस्तर पर। तीन महीने के लिए कहा हिलना-डुलना भी मत। सक्रिय आदमी हैं, बिना हिले-डुले काम नहीं चलता। चाहे बेकार ही हिलें-डुलें। लेकिन बिना हिले-डुले काम नहीं चलता।

और कितने लोग हैं जो मतलब से हिलते-डुलते होंगे? और कितने वक्त मतलब से हिलते-डुलते होंगे? सुबह से शाम तक अपने हिलने-डुलने का अगर कोई हिसाब रखे, तो पाएगा कि अट्ठानबे प्रतिशत तो बेकार हिल-डुल रहा है। मगर बेचैनी होती है। खाली बैठने से कई चीजें दिखाई पड़ती हैं, जो आदमी नहीं देखना चाहता।

बिस्तर पर लग गए हैं, मैं उन्हें देखने गया। रोने लगे, कहने लगे कि बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। मर जाता इससे अच्छा था। ये तो तीन महीने, कैसे जीऊंगा, कैसे पड़ा रहूंगा। बहुत तकलीफ है।

मैंने उनसे कहाः आंख बंद करें और खोजें तकलीफ और आप एक हैं या दो?

उन्होंने कहाः इससे क्या होगा?

मैंने कहाः वह करके देखें, फिर हम पीछे बात करें। आप आंख बंद कर लें। मैं बैठा हूं। और जब तक साफ न हो जाए, तब तक आंख मत खोलें। यह खोजें कि आप और तकलीफ दो हैं या एक? अगर आप और तकलीफ एक ही हैं, तो आपको कभी पता नहीं चल सकता कि तकलीफ हो रही है। तकलीफ को कैसे पता चलेगा कि तकलीफ हो रही है? तकलीफ को पता चल सकता है कि तकलीफ हो रही है?

यह तो ऐसे ही हुआ कि कांटे को पता चल जाए कि मैं चुभ रहा हूं। कांटा दूसरे को चुभता है, चुभन दूसरे को पता चलती है। दो होना जरूरी हैं। तकलीफ है, एक। दुख है, एक। और जिसको हो रहा है, मालूम हो रहा है, वह है, दो। वह अलग है। अगर वह एक ही हो जाए तो पता ही नहीं चलेगा।

आपको पता चलता है न कि क्रोध आ गया। अगर आप और क्रोध एक ही हों, तो पता चलेगा? फिर तो आप ही क्रोध हो जाएंगे। फिर तो क्रोध मिटेगा भी नहीं। मिट भी नहीं सकता। क्योंकि जब आप ही क्रोध हो गए, तो मिटेगा कैसे? और अगर क्रोध मिट जाएगा, तो आप भी खत्म हो जाएंगे।

नहीं, आप तो सदा अलग हैं। क्रोध आता है और चला जाता है, दुख आता है और चला जाता है, अशांति आती है और चली जाती है। घिरता है धुआं चारों तरफ और खो जाता है। लेकिन वह जो बीच में है खड़ा, वह सदा खड़ा है। इसकी निरंतर खोज का नाम ध्यान है। इस तत्व की खोज का नाम--जो बंधन में नहीं, जो दुख में नहीं, जो पीड़ा में नहीं, जो अशांति में नहीं, जो सदा सबके बाहर है, सदा सबके बाहर है। कितना ही कोशिश करो, भीतर नहीं है, सदा ही बाहर है। हर घटना के बाहर है, हर हैपनिंग के बाहर है, हर बिकमिंग के बाहर है। जो भी हो रहा है, उसके बाहर है।

एक रास्ते पर मैं एक गाड़ी से जा रहा था। तीन साथ और मित्र हैं, वे मुझे ले जा रहे हैं किसी गांव। और गाड़ी उलट गई एक सड़क पर आकर, एक ब्रिज पर, एक पुल पर। कोई आठ फीट नीचे गिर पड़े होंगे। पूरी गाड़ी उलटी हो गई, चक्के ऊपर हो गए। सारी गाड़ी दब गई। छोटी गाड़ी, दो ही दरवाजे हैं। एक दरवाजा चट्टान से बंद हो गया है। दूसरा दरवाजा है, लेकिन वे मेरे मित्र, उनकी पत्नी, उनका ड्राइवर, सब ऐसे घबड़ा गए हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं, लेकिन बाहर नहीं निकलते। और चिल्लाते हैं कि मर गए, मर गए।

मैंने उनसे कहाः अगर मर गए होते तो चिल्लाता कौन? तुम कृपा करके बाहर निकलो। अगर मर ही गए होते, तो झंझट ही खत्म थी, चिल्लाता कौन? तुम चिल्ला रहे हो, तो जाहिर है कि मर नहीं गए हो।

मगर वे सुनते ही नहीं। वह पत्नी कहे चली जाती कि अरे, मर गए।

मैं उसे हिलाता हूं कि तू पागल हो गई! अगर मर गई होती, तो शांति हो जाती। फिर चिल्लाता कौन?

वह कहती है कि ठीक है, लेकिन मर गए।

अब यह बड़े मजे की बात है, कौन मर गया? कौन मर गया? अगर यह पता चल रहा है, तो मर नहीं गए। क्योंकि पता चलने वाला दूसरा है। जो हो रहा है, वह और है। जिसे मालूम हो रहा है, वह और है। और मालूम जिसे हो रहा है, वह मौजूद है।

फिर हम बाहर निकल आए, मैं उनसे कहने लगा, वे सब इस हिसाब में लगे हुए हैं कि क्या टूट गया? क्या फूट गया? फिर मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी गाड़ी का इंश्योरेंस तो है?

उन्होंने कहाः है।

फिर मैंने कहाः फिकर छोड़ दो। उसकी बात खत्म हुई। तुम्हारा इंश्योरेंस है और कोई?

उन्होंने कहाः हमारा भी है।

तो मैंने कहाः वह भी अच्छा था, तुम मर जाते तो भी कोई झंझट न थी। अब सवाल यह है कि यह जो घटना घट गई, इस घटना से कुछ सीखोगे कि नहीं सीखोगे?

उन्होंने कहाः इसमें क्या सीखना?

इसमें सीखना यही है कि जहां तक बने कार में बैठना ही नहीं, पहली बात। और इस ड्राइवर को घर जाकर फौरन छुट्टी देनी। और तीस की स्पीड से ऊपर गाड़ी कभी चलने नहीं देना। यह सीखना है।

मैंने कहा कि इतना बढ़िया मौका हुआ और इतनी रद्दी बातें सीखीं। किसी युनिवर्सिटी से पढ़ कर निकले और दस तक गिनती सीख कर घर आ गए, कि दस तक गिनती सीख ली है। विश्वविद्यालय से लौट आए हैं। इतना बड़ा मौका मिला और तुम दस तक गिनती सीखे?

उन्होंने कहाः और क्या सीखने योग्य है? मैंने उनसे कहा कि इस वक्त तो अदभुत मौका था। जब गाड़ी गिरी थी, एक क्षण को देखना था, कौन मर रहा है? कौन गिर रहा है? दुर्घटना किस पर हो रही है? बहुत बढ़िया मौका था, क्योंकि इतने खतरे में चेतना पूरी जग जाती है। पूरी चेतना होश में होती है इतने खतरे में।

अगर एक आदमी छाती पर आपके छुरा लेकर चढ़ जाए, तो एक सेकंड को सब विचार-विचार बंद हो जाएंगे, कि आज फिल्म जाना है कि नहीं जाना, या क्या करना या नहीं करना, या अखबार में क्या छपा है, या कौन से भाई राष्ट्रपति हो गए कि नहीं हो गए। यह सब कुछ नहीं। एक सेकंड सब रुक जाएगा। उस वक्त एक मौका मिलता है कि पूरी तरह देख लें, क्या हो रहा है। तो उस क्षण में यह भी दिखाई पड़ेगा कि जो हो रहा है वह बाहर है। और सब होने के बाहर भी कोई एक खड़ा है और देख रहा है।

ध्यान का अर्थ है इस एक की खोज। जो हर घटना के बाहर है, और कभी भीतर नहीं हुआ। ध्यान का और कोई अर्थ नहीं होता। इन तीन दिनों में हम इस पर ही प्रयोग करने को हैं।

कैसे उसका हम पता लगा लें जो सबके बीच होते भी सबके बाहर है? हम कैसे उसका पता लगा लें जो जन्मता है, मरता है और न कभी जन्मता है और न कभी मरता है, हम कैसे उसका पता लगा लें? जो शरीर में है शरीर ही मालूम पड़ता है और शरीर नहीं है, हम कैसे उसको खोज लें? जो विचार करता है और जिसने कभी विचार नहीं किया, जो चिंतित होता दिखाई पड़ता है, क्रोधित होता दिखाई पड़ता है, और जिस पर न कभी क्रोध छुआ और न कभी कोई चिंता गई, हम कैसे उसे खोज लें?

लेकिन उसकी खोज तब तक नहीं हो सकती जब तक कुएं में चांद को देख रहे हैं। और चांद वहां कहीं बाहर खड़ा है। और कुएं में कभी भी नहीं गया। कभी जाते देखा है? लेकिन दिखता है गया हुआ। बड़ा दिखता है। और कई बार तो ऊपर उतना साफ नहीं दिखता जितना कुएं में दिखता है। कुएं की सफाई पर निर्भर करता है, इसमें चांद का कोई हाथ नहीं है। अगर कुआं बिल्कुल साफ है, तो बहुत साफ दिखाई पड़ेगा।

इसीलिए तो हम दुश्मन की आंख में देखना नहीं चाहते। क्योंकि दुश्मन की आंख गंदा कुआं है। उसमें तस्वीर अच्छी नहीं बनती। मित्र की आंखों में देखना चाहते हैं।

पति अपनी पत्नी की आंखों में देख रहे हैं। और पत्नी को पहले से ही सिखाया हुआ है कि ये परमात्मा हैं। अब उसकी आंख साफ है बिल्कुल, उसमें वे परमात्मा मालूम पड़ रहे हैं। और बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि मैं परमात्मा हूं। और पत्नी चिट्ठी लिख रही है कि आपकी दासी। और वे बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि मैं स्वामी हूं। अब बड़ा मजा है कि किसकी आंख में देख रहे हो? अपनी ही पत्नी की आंख में।

एक आदमी ने एक दिन गांव में, बाजार में आकर खबर कर दी थी कि मेरी पत्नी से ज्यादा सुंदर और दुनिया में कोई भी नहीं है। तो गांव के लोगों ने पूछा, लेकिन बताया किसने?

बताएगा कौन? मेरी पत्नी ने ही बताया हुआ है।

अरे, लोगों ने कहाः तुम बड़े पागल हो। अपनी ही पत्नी की बातों में आ गए?

तो उस आदमी ने कहाः सब अपनी पत्नी की बातों में आए हुए हैं। सब अपने पतियों की बातों में आए हुए हैं। सब अपने आस-पास के लोगों की बातों में आए हुए हैं। तो मैं आ गया तो कौन सा कसूर, कौन सी गलती है?

कुएं कई तरह के हैं। गंदा कुआं होगा, नहीं दिखाई पड़ेगा चांद ठीक। साफ कुआं होगा, चांद दिखाई पड़ जाएगा ठीक। लेकिन चांद कभी किसी कुएं के भीतर नहीं गया है, यह ध्यान रखना। और अगर मान लिया कि चांद कुएं के भीतर गया है, तो सारी जिंदगी मुश्किल में पड़ जाएगी। पहली तो यह मुश्किल हो जाएगी कि वह चांद पकड़ में नहीं आएगा जो कुएं के भीतर गया है। और जब बार-बार फिसल जाएगा, फिसल-फिसल जाएगा हाथ से, तो जिंदगी दुख हो जाएगी। फिर तबीयत होगी इस चांद को मुक्त कैसे करें।

अब हम कुएं के बाहर होना चाहते हैं। हम मुक्ति चाहते हैं। हम संन्यासी होना चाहते हैं। तब एक दूसरी झंझट शुरू होगी, क्योंकि जो भीतर नहीं गया था, उसे बाहर कैसे निकालोगे। चांद सदा बाहर खड़ा है। आत्मा सदा बाहर खड़ी है। वह किसी कुएं में कभी नहीं गई। लेकिन बहुत कुओं में जाने का भ्रम पैदा होता है।

और जितने ज्यादा कुओं में जाता हुआ दिखाई पड़ता है उतना ही ऐसा लगता है कि हमारा फैलाव हो रहा है। इसीलिए तो अगर एक आदमी नमस्कार करे, तो उतना मजा नहीं आता। दस करें तो ज्यादा आता है। दस लाख करें तो और ज्यादा मजा आता है। दस करोड़ करें तो फिर कहना ही क्या। सारी दुनिया करे, तब तो फिर कहना ही क्या। क्योंकि उतने कुओं में प्रतिबिंब दिखने लगता है। और लगता है इतना फैल गया मैं इतना हो गया मैं! इतनी जगह हो गया मैं! मैं इतनी जगह हो गया! और एक जगह भर चूक जाती है जहां मैं हूं और वहां दिखाई पड़ने लगता हूं जहां मैं नहीं हूं।

ध्यान का अर्थ है, मेडिटेशन का अर्थ हैः बाहर हो जाएं उन कुओं के जिनमें आप कभी नहीं गए। अब यह बड़ी उलटी बात है। कि उन कुओं के बाहर कैसे होंगे जिनमें गए नहीं?

उनसे बाहर होने का एक ही मतलब है कि खोजें कि कहीं आप बाहर ही तो नहीं हैं? इस खोज को हम आज से शुरू करते हैं। अभी यहां भी हम पंद्रह मिनट बैठ कर यह खोज करेंगे।

यह प्रकाश भी हटा दिया जाएगा, अंधकार पूरा हो जाएगा। आप अकेले हो जाएंगे। उस अकेलेपन में सब तरह से शांत, शरीर को शिथिल छोड़ कर बैठ जाना है। आंख बंद कर लेनी है। श्वास धीमी छोड़ देनी है। और भीतर यह खोज करनी है कि क्या मैं बाहर हूं? क्या मैं हर अनुभव के बाहर हूं?

ऐसा मान नहीं लेना है कि अपने मन में दोहराने लगे कि मैं बाहर हूं, मैं बाहर हूं, मैं बाहर हूं। इससे कुछ नहीं होगा। क्योंकि जब आप कहते हैं कि मैं बाहर हूं, तो उसका मतलब है कि आपको पता तो चल रहा है कि भीतर हूं। अब समझा रहे हैं अपने को कि मैं बाहर हूं। ऐसा अक्सर होता है। आपको कहना नहीं है, आपको खोज करनी है, सच मैं भीतर हूं? मैं किसी अनुभव के भीतर हूं? पैर में एक चींटी काट रही होगी, उस वक्त खोज करनी है कि चींटी मुझे काट रही है या पैर को काट रही है और मैं देख रहा हूं। पैर भारी हो जाएगा, शून्य हो जाएगा, सुइयां चलने लगेंगी, तब देखना है कि यह पैर, यह सुइयां, यह भारीपन, यह मैं हूं या मैं जान रहा हूं? आवाज सुनाई पड़ेगी, शोरगुल होगा, रास्ते से कोई निकलेगा, कोई चिल्लाएगा, कोई हार्न बजेगा, तब देखना है कि यह जो सुनाई पड़ रही है आवाज यही आवाज मैं हूं या सुनने वाला बिल्कुल अलग खड़ा है?

चारों तरफ अंधेरा है। यह अंधेरा मालूम पड़ रहा है। यह अंधेरे की शांति मालूम पड़ रही है। ध्यान रहे, ऐसा नहीं समझना कि अशांति के आप बाहर हैं। बहुत गहरे में जाने पर शांति के भी आप बाहर हैं। जहां अशांति नहीं गई कभी, वहां शांति भी कहां जा सकती है? दोनों के बाहर है। वहां न अंधकार है, न प्रकाश है। इसकी गहरे से गहरी, भीतर से भीतर खोज कि क्या मैं बाहर हूं? क्या मैं बाहर हूं? यह पूछना है, जानना है, खोजना है। और जैसे ही आप यह खोज जारी करेंगे, चित्त शांत होता चला जाएगा। एक ऐसा सन्नाटा छाएगा जिसका आपको शायद कभी कोई अनुभव न हुआ हो। एक इतना बड़ा भीतर से विस्फोट हो जाएगा जिसका

आपको शायद कभी पता न हुआ हो। आपको पहली दफा पता चलेगा कुएं के बाहर हूं, और कभी भी भीतर नहीं था।

इन तीन दिनों में इसकी इंटेंसिव, इसकी गहरी से गहरी खोज करनी है। रोज इसके कुछ भिन्न सूत्रों पर मैं बात करूंगा। लेकिन सब सूत्र इसी तरफ ले जाने वाले होंगे। अलग-अलग जगह से धक्के दूंगा। लेकिन धक्के एक ही जगह पटक देने वाले होंगे।

पहला प्रयोग हम आज की रात्रि का करें।

थोड़े फासले पर बैठ जाएंगे। कोई किसी को छूता हुआ न बैठे। जरा-जरा फासले पर, कोई किसी को छूता हुआ न हो। और आवाज जरा भी न करें। चुपचाप हट जाएं। कहीं भी हट कर बैठ जाएं। आवाज मेरी सुनाई पड़ती रहे, बस इतना। और बातचीत जरा भी न करें किसी से। क्योंकि इस मामले में दूसरा कोई साथी-सहयोगी नहीं हो सकता।

और चुपचाप, बात नहीं। अपनी-अपनी जगह पर। शरीर को बिल्कुल शिथिल छोड़ कर। अब बातचीत नहीं चलेगी जरा भी। बातचीत नहीं चलेगी अब। अब बातचीत बंद कर दें। बिल्कुल शांत बैठें, आंख बंद कर लें।

मैं कुछ सुझाव दूंगा। पहले मेरे सुझाव अनुभव करें और फिर धीरे से उसकी खोज में चले जाएं जो आपके ही भीतर है।

सबसे पहले सारे शरीर को शिथिल छोड़ दें। और ऐसा समझें कि जैसे शरीर है ही नहीं। ढीला छोड़ दें, जैसे मुर्दा हो शरीर। बिल्कुल शिथिल छोड़ दें, रिलैक्स छोड़ दें। शरीर ढीला छोड़ दें, शरीर बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर ली है, शरीर ढीला छोड़ दिया है। शरीर ढीला छोड़ दिया है, शरीर शिथिल छोड़ दिया है, शरीर बिल्कुल शिथिल छोड़ दें।

अब श्वास भी बिल्कुल धीमी छोड़ दें। धीमी करनी नहीं है, छोड़ दें, धीमी छोड़ दें। अपने आप आए जाए; न आए न आए, न जाए न जाए। और जितनी आए, उतनी आए, उतनी जाए। छोड़ दें बिल्कुल शिथिल। श्वास एकदम धीमी हो जाएगी। बहुत धीमी आएगी-जाएगी, जैसे ऊपर ही अटक जाएगी। श्वास भी धीमी छोड़ दें।

शरीर शिथिल छोड़ दिया, श्वास धीमी छोड़ दी, अब अपने ही भीतर वह जो सबसे दूर खड़ा है--ये आवाजें आ रही हैं, ये सुनाई पड़ेंगी; आप सुन रहे हैं, आप अलग हैं, आप भिन्न हैं, आप दूसरे हैं। मैं और हूं। जो भी हो रहा है मेरे चारों तरफ, चाहे मेरे शरीर के बाहर, चाहे मेरे शरीर के भीतर, जो भी हो रहा है सब मुझसे बाहर है।

बिजली चमकेगी, पानी गिर सकता है, आवाजें आएंगी। शरीर शिथिल हो जाएगा, शरीर गिर भी सकता है। सब मेरे बाहर है, सब मेरे बाहर है। मैं अलग हूं, मैं अलग हूं, मैं अलग खड़ा हूं, मैं देख रहा हूं, यह सब हो रहा है। मैं एक द्रष्टा से ज्यादा नहीं हूं, मैं एक साक्षी हूं, सिर्फ साक्षी हूं, मैं एक साक्षी हूं, मैं एक साक्षी हूं... मैं देख रहा हूं--सब है, सब मुझसे बाहर है, सब हो रहा है, सब मुझसे दूर हो रहा है, मैं दूर खड़ा हूं, अलग खड़ा हूं, ऊपर खड़ा हूं, भिन्न खड़ा हूं, मैं सिर्फ देख रहा हूं, मैं सिर्फ जान रहा हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं...

मैं साक्षी हूं, इसी भाव में गहरे से गहरे उतरें। दस मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं। आप इसी भाव में गहरे से गहरे उतरें। एक-एक सीढ़ी, एक-एक सीढ़ी गहरे... मैं साक्षी हूं, मैं सिर्फ जान रहा हूं, मैं सिर्फ जान रहा हूं, जो हो रहा है जान रहा हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं। और यह भाव गहरा होते-होते इतनी गहरी शांति में ले जाएगा

जिसे कभी नहीं जाना। इतने बड़े मौन में ले जाएगा जो बिल्कुल अपरिचित है। इतने बड़े आनंद में डुबा देगा जिसकी हमें कोई भी खबर नहीं। मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं, मैं बस साक्षी हूं...

दूसरा प्रवचन

दूसरा सूत्रः खोजें मत, ठहरें

उसे अनबंधा किया जा सकता है जो कारागृह में हो; उसे मुक्त किया जा सकता है। जो सोया हो उसे जगाया जा सकता है; लेकिन जो जागा हो और इस भ्रम में हो कि सो गया हूं, उसे जगाना बहुत मुश्किल है। और जो मुक्त हो और सोचता हो कि बंध गया हूं, उसे खोलना बहुत मुश्किल है। और जिसके आस-पास कोई जंजीरें न हों और आंख बंद करके सपना देखता हो कि मैं जंजीरों में बंधा हूं, और पूछता हो कैसे तोड़ूं इन जंजीरों को? कैसे मुक्त हो जाऊं? कैसे छूटूं? तो बहुत कठिनाई है।

रात्रि इस संबंध में पहले सूत्र पर मैंने आपसे कुछ कहा। मनुष्य की आत्मा परतंत्र नहीं है और हम उसे परतंत्र माने हुए बैठे हैं। मनुष्य की आत्मा को स्वतंत्र नहीं बनाना है। बस यही जानना है कि आत्मा स्वतंत्र है।

आज इस दूसरे सूत्र में, दूसरी दिशा से, उसी तरफ फिर इशारा करना जरूरी है। एक ही चांद हो, बहुत अंगुलियों से इशारे किए जा सकते हैं। एक ही सत्य है, बहुत द्वारों से प्रवेश किया जा सकता है। दूसरे सूत्र में यह समझना जरूरी है कि हम क्या खोज रहे हैं?

हर आदमी कुछ खोज रहा है--कोई धन, कोई यश। और जो धन और यश से बचते हैं, वे धर्म खोजते हैं, मोक्ष खोजते हैं, परमात्मा खोजते हैं। लेकिन खोजते जरूर हैं। खोजने से नहीं छूटते हैं। आमतौर से यही समझा जाता है कि जो धन खोजता है वह अधार्मिक है। और जो धर्म खोजता है वह धार्मिक है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जो खोजता है वह अधार्मिक है और जो खोजता नहीं वह धार्मिक है।

आप क्या खोजते हैं इससे कोई संबंध नहीं है। जब तक आप खोजते हैं तब तक आप अपने से दूर निकल जाएंगे। जो खोजेगा वह स्वयं से दूर चला जाएगा। जो नहीं खोजेगा वही स्वयं में आ सकता है। खोज का अर्थ ही है, खोज का अर्थ हैः दूर जाना। खोज का क्या अर्थ है? खोज का अर्थ है, जहां हम नहीं हैं, वहां जाना। जो हमारे पास नहीं है, उसे पाना। जो नहीं मिला है, उसे ढूंढना। और जो मैं हूं, वह तो मुझे मिला है, वह तो सदा उपलब्ध है, वह तो मैं हूं ही। उसे कैसे खोजा जा सकता है? और जितना मैं खोज में लग जाऊंगा, उतना ही उसे खो दूंगा जो मैं हूं।

और हम सबने खोज में उलझ कर स्वयं को खो दिया है। फिर कोई धन खोजता है, कोई यश खोजता है, कोई मोक्ष खोजता है। इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता। ये एक ही बीमारी के अलग-अलग नाम हैं। खोजने की बीमारी है। बुनियादी बीमारी क्या खोजते हैं इसकी नहीं है, बुनियादी बीमारी खोजने की है; बिना खोजे नहीं रह सकते हैं--खोजेंगे।

खोजने का अर्थ हैः दृष्टि दूर चली जाएगी। खोजेंगे और खो देंगे खुद को। स्वभावतः जो दूर है उसे खोजा जा सकता है, जो पराया है उसे खोजा जा सकता है, जिसके और मेरे बीच में फासला है, डिस्टेंस है, उसे खोजा जा सकता है। लेकिन जिसके और मेरे बीच में सुई भर भी फासला नहीं, जो और मैं एक ही हूं। जिससे मैं दूर चाहूं तो भी नहीं जा सकता। जहां भी चला जाऊं जो मेरे साथ ही होगा, उसे कैसे खोजा जा सकता है?

खोजना सबसे बड़ा भ्रम है। और खोजने वाला भटक जाता है। खोजने के भ्रम की जो सबसे बड़ी आधारशिला है, वह यह है कि जब हम एक खोज से ऊब जाते हैं, तो दूसरी खोज सब्स्टीट्यूट की तरह पकड़ लेते हैं। लेकिन खोजना जारी रहता है।

एक आदमी धन खोजते-खोजते ऊब गया है। अब उसने धन का अंबार लगा लिया है। अब वह कहता है, अब धन में कुछ रस नहीं। अब हम धर्म खोजेंगे। इसीलिए तो यह होता है कि जिनके पास धन ज्यादा हो जाता है वे धर्म को खोजने निकल जाते हैं।

धनी ही धर्म को खोजने क्यों निकलते हैं, पता है? जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के लड़के हैं। बुद्ध राजा के लड़के हैं। राम और कृष्ण राजाओं के लड़के हैं। हिंदुस्तान के सब तीर्थंकर, सब बुद्ध, सब अवतार राजाओं के लड़के हैं। धनियों के बेटे धर्म को खोजने क्यों निकल जाते हैं? धन इकट्ठा हो गया। अब खोज में कोई रस न रहा। जो मिल जाता है उसकी खोज में कोई रस नहीं रह जाता। अब उसे खोजना है जो नहीं मिला है। तो धन से ऊबा हुआ आदमी धर्म खोजने लगता है। संसार से ऊबा हुआ आदमी मोक्ष खोजने लगता है।

खोज बदल जाती है, लेकिन खोज जारी है। और खोज करने वाले का जो चित्त है वह वही का वही है। चाहे आप कुछ भी खोजें।

एक दुकानदार है, सुबह से उठ कर बैठा है दुकान पर और धन की चिंता कर रहा है। एक भगवान का खोजी है, वह भी सुबह से उठ कर मंदिर में बैठ गया है और भगवान को पाने की उतनी ही चिंता कर रहा है जितना दुकानदार धन को पाने की। एक संसारी है, दौड़ रहा है, दौड़ रहा है, इकट्ठा कर रहा है। संन्यासी को देखें, वह भी दौड़ रहा है।

दोनों एक-दूसरे की तरफ पीठ किए हुए हैं, लेकिन दौड़ में कोई फर्क नहीं है। दोनों दौड़ रहे हैं। दौड़ जारी है। संसारी भी मरते वक्त उतना ही परेशान मर रहा है कि जो चाहा था, वह नहीं मिल पाया है। और संन्यासी भी उसी परेशानी में मर रहा है कि जिसके दर्शन चाहे थे, नहीं हो पाए। दौड़ जारी है।

मैं आपको यह समझाना चाहता हूं कि असली सवाल दौड़ से मुक्त होने का है, दौड़ से छूट जाने का है। दौड़ का अर्थ ही यही है कि मेरी नजर किसी और पर लगी है। और जब तक मेरी नजर किसी और पर लगी है तो स्वयं पर कैसे हो सकती है? चाहे फिर परमात्मा पर लगी हो और चाहे दिल्ली के सिंहासन पर लगी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरी नजर कहीं और है। वहां नहीं है, जहां मैं हूं। यह दौड़ने वाले चित्त का रूप है।

फिर एक आब्जेक्ट बदल लिया, एक दौड़ का लक्ष्य बदल लिया। दूसरा लक्ष्य तय कर लिया, लेकिन काम जारी है। दौड़ने वाला दौड़ रहा है।

एक कोल्हू का बैल चल रहा है। वह कौन सी चीज का तेल निकालता है इससे थोड़े ही फर्क पड़ता है। कोल्हू के बैल को चलना पड़ता है, तेल किसी चीज का निकलता हो। तेल कोई भी निकलता हो, कोल्हू का बैल चलता है। दौड़ने वाला चित्त दौड़ता है, वह किस चीज के लिए दौड़ रहा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हम फर्क करते हैं, हम कहते हैं, यह संसारी आदमी है, यह धन के पीछे मरा जा रहा है। यह बहुत आध्यात्मिक आदमी है, यह भगवान को खोज रहा है।

लेकिन ये दोनों एक जैसे आदमी हैं। इनमें कोई भी फर्क नहीं। दोनों दौड़ रहे हैं। दोनों किसी चीज को पाने के लिए पागल हैं। दोनों का दिमाग कोई आकांक्षा कर रहा है। दोनों अपने से बाहर के लिए पीड़ित हैं। दोनों अपने से बाहर कहीं पहुंच जाने के लिए आतुर हैं। दोनों प्यासे हैं। दोनों कहते हैं, वह मिल जाएगा तो सुख होगा, नहीं तो सुख नहीं हो सकता।

कोई और चीज है, जिसे मिल जाए तो आनंद होगा, अन्यथा मैं दुखी रहूंगा। उस चीज का नाम अ ब स कुछ भी हो सकता है। नाम बदल लेने से कोई अंतर नहीं पड़ता। दौड़ने वाला चित्त, दौड़ने वाला चित्त ही सत्य की खोज में, खोजने वाला चित्त ही सत्य की खोज में सबसे बड़ी बाधा है।

और क्या रास्ता है? आप कहेंगे, अगर खोजें न, फिर क्या होगा? फिर तो जैसे हम हैं, वैसे ही रह जाएंगे।

नहीं; अगर आपने खोज जारी रखी, तो जैसे आप हैं वैसे ही आप रह जाएंगे। अगर आप एक क्षण को भी खोज छोड़ दें, तो आप वह हो जाएंगे जैसे आप अब तक कभी भी नहीं रहे। लेकिन एक क्षण को भी खोज छोड़ना बहुत मुश्किल है।

खोज छोड़ने का मतलब हैः एक क्षण को चित्त कुछ भी नहीं खोज रहा। हमने कह दियाः नहीं हमें कुछ पाना है, नहीं हमें कहीं जाना है, न हमें कुछ होना है, कोई बिकमिंग नहीं हमारी, कोई मंजिल नहीं हमारी, हम ही काफी हैं। हम जैसे हैं वही काफी हैं। एक क्षण को हम खड़े हो गए हैं--सब दौड़ बंद हैं, सब हवाएं बंद हैं--न पत्ता हिलता है, न तरंग उठती है, न हम कहीं जाते हैं, न किसी को पुकारते हैं, न कहीं प्रार्थना करते हैं, न हाथ जोड़ते हैं, न कोई तिजोड़ी बंद करते हैं, न कोई शास्त्र। हम रह गए हैं खड़े हुए। हम चुप हो गए हैं, हम मौन हैं, हम खोज नहीं रहे हैं। इस शांत क्षण में वह प्रकट हो जाता है जो सदा से ही उपलब्ध है, जिसे खोजने की कोई जरूरत नहीं है। जिसे दौड़-दौड़ कर हम भूले हुए हैं।

चीन में एक अदभुत विचारक हुआ, लाओत्सु। लाओत्सु ने एक वचन कहा है, कहा हैः जब तक खोजा तब तक नहीं पाया और जब छोड़ दी खोज तो पाया कि जिसे खोज रहे थे वह खुद ही खोजने वाला था। जैसे कोई खुद को ही खोजने चला जाए, तो कितना ही दूर जाए, कितना ही दूर जाए, कहां खोज पाएगा।

सुना है मैंने, एक आदमी रात शराब पीकर घर आ गया है। अपने घर पहुंच गया है। पैर की आदत है रोज। कोई पैर को रोज-रोज जानना तो नहीं पड़ता। आप अपने घर जाते हैं, तो सोचना तो नहीं पड़ता कि अब बाएं घूमें, अब दाएं घूमें, अब यह अपना घर आ गया। ऐसा सोचना नहीं पड़ता। यांत्रिक आदत है, आप कुछ भी सोचते रहें, पैर बाएं घूम जाते हैं, घर पहुंचा देते हैं, सीढ़ियां चढ़ जाते हैं, आप अंदर हो जाते हैं, कपड़े उतार देते हैं, खाना खाने लगते हैं, शायद ही सोचते हैं कि अपना घर आ गया।

उस आदमी ने शराब पी ली है, तो भी अपने घर पहुंच गया। लेकिन शराब के नशे में और अपने घर के पास जाकर उसे शक हुआ कि कहीं मैं किसी और के घर के पास तो नहीं आ गया हूं? उसने पास-पड़ोस के लोगों से कहा कि भाइयो, मैं जरा बेहोश हूं। मुझे मेरे घर पहुंचा दो।

वह अपनी सीढ़ियों पर बैठा हुआ है। आस-पड़ोस के लोग हंसी-मजाक करने लगे। और वह कह रहा है कि आप हंसी-मजाक मत करिए, मुझे मेरे घर पहुंचा दीजिए, मेरी मां मेरा रास्ता देखती होगी।

और लोग उसे हिलाते हैं और वे कहते हैं, खूब मजा कर रहे हो, अपने घर में बैठे हो। वह आदमी कहता है, देखो, व्यर्थ की बातें मत करो। मेरा घर कहां है, मुझे मेरे घर पहुंचा दो।

उसकी मां की नींद खुल गई है। आधी रात है। वह बाहर उठ कर आई है। वह अपने बेटे के सिर पर हाथ रख कर कहती है कि बेटा यह तेरा घर है, तुझे हो क्या गया?

वह उसका बेटा उसके पैर पकड़ लेता है और कहता है, माई, मुझे मेरे घर पहुंचा दे, मेरी मां मेरा रास्ता देखती होगी।

पास-पड़ोस में कोई बुद्धिमान आदमी है। बुद्धिमानों की कोई कमी तो नहीं है। सब जगह बुद्धिमान भरे हुए हैं। बुद्धिमानों से बड़ी परेशानी है। क्योंकि बुद्धू को यह भी पता होता है कि बुद्धू हूं। बुद्धिमान को यह भी पता नहीं होता।

एक बुद्धिमान आ गया, उसने कहा, ठहर, मैं बैलगाड़ी जोत कर ले आता हूं, तुझे तेरे घर पहुंचा देता हूं।

पड़ोस के लोगों ने कहाः क्या पागलपन हो रहा है यह? वह आदमी अपने घर के द्वार पर बैठा हुआ है। अगर तुम बैलगाड़ी जोत कर ले आए और तुम उसे कहीं भी ले जाओ दुनिया में, वह घर से और दूर चला जाएगा।

लेकिन बुद्धिमान नहीं माना। वह बैलगाड़ी जोत कर ले आया। उसने कहाः कहीं भी जाना हो तो बैलगाड़ी की जरूरत पड़ती है।

अब अपने घर जाने में, अपने ही घर मौजूद, बैलगाड़ी की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन तर्क तो ठीक है कि कहीं भी जाना हो तो बैलगाड़ी की जरूरत पड़ती है।

उस शराब पीए आदमी को बैलगाड़ी में लोग बिठाने लगे, उसकी मां चिल्लाने लगीः यह क्या पागलपन कर रहे हो? क्योंकि जो अपने घर ही मौजूद है, उसे अगर तुम बैलगाड़ी में बैठा कर जितना भी दूर ले जाओगे, उतना ही दूर हो जाएगा।

लेकिन कौन सुने? हम सब भी ऐसी हालत में हैं। हम जिसे खोज रहे हैं वहीं हम खड़े हैं। हम जिसे पुकार रहे हैं वह वही है जो पुकार रहा है।

यह बड़ी अजीब स्थिति है। और इस अजीब स्थिति की वजह से बड़ी मुश्किल है। जितना पुकारते हैं, जितना खोजते हैं, उतना मुश्किल होती चली जाती है। और ख्याल भी नहीं आता कि एक बार हम भीतर तो देख लें कि कौन है जो खोज रहा है?

इसलिए मैं आपसे कहता हूंः धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो पूछता है, क्या मैं खोजूं? धार्मिक आदमी वह है, जो पूछता है कि यह कौन है जो खोजता है? यह सवाल ही नहीं है कि क्या हम खोजें? अधार्मिक आदमी यह पूछता है, क्या मैं खोजूं? धार्मिक आदमी पूछता है, यह कौन है जो खोज रहा है? हम पहले इसे तो खोज लें, फिर हम कुछ और खोजेंगे। पहले अपने को तो खोज लें, फिर हम परमात्मा को खोजने निकलेंगे। पहले स्वयं को तो जान लें, फिर हम धन को भी जान लेंगे, फिर हम जगत को भी जान लेंगे। और जो स्वयं को ही नहीं जानता वह और क्या जान सकेगा?

धार्मिक आदमी यह नहीं पूछता आता हुआ कि परमात्मा कहां है? और जो आदमी पूछता है, परमात्मा कहां है, उसका धर्म से कोई भी संबंध नहीं। धार्मिक आदमी यह नहीं पूछता, मोक्ष कहां है। और जो पूछता है उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। धार्मिक आदमी यह पूछता है, यह मुक्त होने की आकांक्षा किसकी है? यह कौन है जो मुक्त होना चाहता है? यह परमात्मा की प्यास किसकी है? यह कौन है जो परमात्मा की मांग करता है? यह आनंद की आकांक्षा किसकी है? यह कौन है जो आनंद के लिए रो रहा है, तड़प रहा है, पुकार रहा है? यह कौन हूं मैं? यह खोजने वाला कौन है? इसे तो जान लूं। इसे तो पहचान लूं।

लेकिन धर्म के नाम पर अब तक व्यर्थ की बातें ही सिखाई और समझाई गई हैं। धर्म की सारी दिशा ही गलत कर दी गई है। धर्म का कोई भी संबंध खोज से नहीं, खोज के विषय से नहीं, खोजने वाले से है। दि सीकर। वह कौन है जो खोज रहा है? और इसे खोजना हो, तो कहां जाना पड़ेगा खोजने? कहां जाना पड़ेगा--हिमालय, बद्री, केदार, काशी, कहां जाना पड़ेगा?

एक गांव में बड़ी भीड़ थी। एक फकीर अपने झोपड़े से निकला और लोगों से पूछने लगा, बड़ी भीड़ है, सारे लोग कहां जा रहे हैं?

तो उन लोगों ने कहाः तुम्हें पता नहीं, एक आदमी हमारे गांव का मक्का-मदीना होकर लौटा है। ये लाखों लोग उसके दर्शन करने जा रहे हैं।

उस फकीर ने कहाः धत तेरी की! मैं तो समझा कि किसी आदमी को दर्शन करने मक्का-मदीना आए हुए हैं, इसलिए लोग जा रहे हैं। क्योंकि इतनी भीड़, एक आदमी मक्का-मदीना हो आए, इसमें क्या मतलब है?

जब मक्का-मदीना किसी आदमी के पास आते हैं, तब कुछ मतलब होता है। वह वापस अपने झोपड़े के भीतर चला गया।

धार्मिक आदमी वह नहीं है जो ईश्वर के पास पहुंच जाता है। धार्मिक आदमी वह है जो अपने पास पहुंच जाता है। क्योंकि अपने पास पहुंचते ही ईश्वर आ जाता है। ईश्वर को आप नहीं खोज सकते हैं, ईश्वर ही आपको खोज सकता है। हम कैसे ईश्वर को खोज सकते हैं? हम तो अपने को ही नहीं खोज पाते हैं, अपने को ही नहीं जान पाते हैं। और ईश्वर को जानने की कामना जगाते हैं।

अहंकार है मनुष्य का कि मैं ईश्वर को पा लूं। यह सबसे बड़ा अहंकार है। धन पाने वाले का अहंकार इतना बड़ा नहीं है। इसलिए संन्यासियों से ज्यादा दंभी आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। बड़ा ईगो है, बड़ा अहंकार है। काहे का अहंकार है? ईश्वर को पा लेने का भ्रम। और ईश्वर को कोई कभी नहीं पा सकता है। बस कोई अपने को पा ले और ईश्वर को पा लेता है। और ईश्वर के पास कोई कभी नहीं जा सकता है। कोई अपने पास आ जाए और ईश्वर उसके पास आ जाता है।

इसलिए दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूंः खोजें मत, ठहरें! दौड़ें मत, रुकें! किसी और पर नजर हटाएं। लेकिन किसी और के लिए नहीं, सब तरफ से नजर हटा लें, ताकि नजर अपने पर ही आ जाए। और अपने पर नजर नहीं लगाई जा सकती, यह भी ध्यान रखना आप। अपने पर नजर नहीं लगाई जा सकती, अपने पर ध्यान नहीं लगाया जा सकता। ध्यान सदा दूसरे पर ही लगाया जा सकता है। क्योंकि ध्यान के लिए कम से कम दो तो चाहिए। एक मैं, जो ध्यान लगाऊं और एक जिस पर लगाऊं।

तो जब मैं कहता हूं, सब तरफ से ध्यान हटा लें, तो यह नहीं कहता हूं कि अपने पर ध्यान लगाएं। जब सब तरफ से ध्यान हट जाता है, तो वहीं रह जाता है जहां हम हैं। वहां लगाना नहीं पड़ता। वहां कोई लगा नहीं सकता ध्यान। इसलिए ध्यान की सारी प्रक्रिया निगेटिव है, नकारात्मक है, नेति-नेति की है। यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। इस पर भी हटाएंगे ध्यान, इस पर भी हटाएंगे, इस पर भी हटाएंगे। कहीं न लगाएंगे ध्यान। ध्यान को छोड़ देंगे खाली, एंप्टी। और लगने देंगे जहां... जैसे ही सब तरफ से ध्यान हट आता है तो अपने पर बैठ जाता है।

दूसरा सूत्र समझ में आ सके, उसके लिए जरूरी है कि हम संसारी के भ्रम को भी समझें और संन्यासी के भ्रम को भी।

एक सिकंदर है, एक चंगीज है, वे सारी दुनिया को जीतने निकले हुए हैं। वे कहते हैं, हम सारी दुनिया जीत लेंगे। मैं कहता है, सारी दुनिया जीत लूंगा। अहंकार कहता है, सारी दुनिया को मुट्ठी में ले लूंगा। और एक आदमी है, जो कहता है, मैं ईश्वर को खोजने निकला हूं। अहंकार कहता है कि ईश्वर को अपनी मुट्ठी में ले लूंगा। मैं ईश्वर को खोज कर रहूंगा। इन दोनों में कोई फर्क है?

हां, थोड़ा फर्क है। संसारी की खोज छोटी है। संसार बहुत छोटा है। ईश्वर का तो अर्थ हैः समग्र, दि टोटल, वह जो पूरा है। संन्यासी कहता है, पूरे को अपनी मुट्ठी में ले लूंगा। दोनों में कोई भी धार्मिक नहीं है। धार्मिक कहता है, मैं खोजूंगा, मेरी मुट्ठी किसकी है? मैं किसी को मुट्ठी में लेने नहीं चला हूं, मैं यह खोजने चला हूं कि यह मुट्ठी किसकी है? कौन इस मुट्ठी को बांधता? कौन इस मुट्ठी को खोलता? मुझे इसकी फिकर नहीं कि मुट्ठी में क्या है। मुझे इसकी फिकर है कि मुट्ठी में कौन है? मुट्ठी के भीतर कौन है, जो मुट्ठी बांधता और खोलता?

इसकी मुझे फिकर नहीं कि आंख से मैं क्या देखूं--एक सुंदर स्त्री देखूं, एक सुंदर फूल देखूं, एक सुंदर भवन देखूं या भगवान देखूं? यह सवाल नहीं है कि आंख से मैं किसको देखूं। ऑब्जेक्ट का सवाल नहीं, सवाल यह है कि कौन है जो आंख से देखता है? इन दोनों बातों में स्पष्ट भेद हो जाना चाहिए। एक वह जो दिखाई पड़ता है और एक वह जो देखता है।

दिखाई पड़ने वाली चीजें बदल सकती हैं। कोई धन को देखते-देखते भगवान को देखने लग सकता है। कोई बाजार देखते-देखते स्वर्ग देखने लग सकता है। कोई दुकान पर रुपये गिनते-गिनते अचानक भगवान की बांसुरी सुनने लग सकता है। लेकिन ये सब हमसे अलग अनुभव हैं। ये दृश्य हैं, कि कुछ पता नहीं चल रहा कि मैं कौन हूं? चाहे आप कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए देखें और चाहें किसी नाटक को देखें, आप दोनों हालत में अपने बाहर कुछ देख रहे हैं। उसका कोई पता नहीं चल रहा कि यह कौन देख रहा है?

धार्मिक आदमी की खोज इस बात के लिए है कि यह कौन है जो देख रहा है? दृश्य नहीं, द्रष्टा कौन है? जो दिखाई पड़ता है वह नहीं, जो देखता है वह कौन है? निश्चित ही इसकी खोज के लिए दौड़ने से काम नहीं चलेगा, भागने से काम नहीं चलेगा, खोजने से काम नहीं चलेगा। ठहरने से काम चलेगा, रुकने से काम चलेगा, बैठ जाने से काम चलेगा।

लेकिन हम दौड़ना जानते हैं, भागना जानते हैं, खोजना जानते हैं। इसलिए अगर कोई हमें सब्स्टीट्यूट बता दे, कोई बता दे कि यह खोज छोड़ो, यह खोज में लग जाओ। तो आसान मालूम पड़ता है कि ठीक है, इस खोज को नहीं करेंगे, इस खोज को करेंगे।

धन की खोज करने वाला धर्म की खोज में आसानी से लग जाता है। इसलिए आप बहुत हैरान मत होना कि फलांना धनपति, देखो, संन्यासी हो गया। कोई फर्क नहीं है। वह जो धन की खोज करने का चित्त था, वह कहता है, हमें खोज चाहिए। हम किसी को खोजेंगे। अगर धन नहीं खोजना है, चलो धर्म को खोजेंगे। वह धन को खोजने वाला कहता है, धन क्यों खोजना है? धन इसलिए खोजना है कि धन से आदर मिलेगा। फिर वह चित्त कहता है कि ठीक है, धन न खोजेंगे, धर्म खोजेंगे। धर्म खोजने से और भी ज्यादा आदर मिलेगा। धनी आदमी को कितने लोग आदर देते हैं? और वही धनी आदमी मुनि हो जाए, तो वे ही नासमझ जो कभी उसे आदर न देते थे, या आदर देते भी थे तो झूठा देते थे, रास्ते पर नमस्कार करते थे, पीछे गाली देते थे, वे ही नासमझ उसके पैर छूने लगते हैं।

धन की खोज भी आदर के लिए है, धर्म की खोज भी आदर के लिए हो जा सकती है। लेकिन खोज चाहिए। चित्त कहता है, खोज चाहिए, बिना खोज के हम न रहेंगे। क्यों? क्योंकि बिना खोज में चित्त मर जाता है। जैसे ही खोज गई, चित्त गया। खोज गई, मन गया। खोज नहीं, मन नहीं। जब तक खोज है तब तक मन है। अगर ठीक से समझें तो मन खोज का उपकरण है। जब तक खोज है तब तक मन जिंदा रहेगा। खोज गई, मन गया।

हम आमतौर से कहते हैं, मन खोज रहा है। यह गलत बात है। लेकिन हमारी भाषा में बहुत सी गलतियां हैं।

रात बिजली चमकती थी, तो किसी ने कहा कि बिजली चमक रही है। अब थोड़ा सोचें, इसमें ऐसा मालूम पड़ता है कि बिजली कुछ और है और चमकना कुछ और है। सच बात यह है कि जो चमक रहा है उसका नाम बिजली है। बिजली चमक रही है ऐसा कहना गलत है। चमकना और बिजली एक ही मतलब रखते हैं। बिजली चमक रही है, इसमें ऐसा मालूम पड़ता है, दो चीजें हैं। बिजली कुछ और है, चमक कुछ और है। आप

चमक को अलग कर सकते हैं बिजली से? अगर चमक को छीन लेंगे, बिजली खो जाएगी। अगर बिजली को छीन लेंगे, चमक खो जाएगी। चमक और बिजली एक ही चीज के दो नाम हैं। लेकिन हम कहते हैं, बिजली चमक रही है। गलत बात है।

ऐसे ही हम कहते हैंः मन खोज रहा है। यह भी गलत बात है। खोजने की प्रक्रिया का नाम मन है। मन खोज रहा है ऐसा कहना फिजूल है, ऐसा कहना बेकार है। मन यानी खोजना। जब तक खोज रहे हैं तब तक मन है। फिर चाहे कुछ भी खोजिए, मन रहेगा। और मत खोजिए, मन खो जाएगा। और जहां मन खो जाता है, वहां उसके दर्शन हो जाते हैं, जो है।

जो है उसे खोजना नहीं है, वह है ही। खोज बंद कर देनी है।

एक बगिया है और फूल खिले हैं और आप उस बगिया के पास से एक जेट हवाई जहाज में बैठ कर निकलते हैं। तेजी से चले जाते हैं, हजार बार बगिया के पास चक्कर लगाते हैं। फूल दिखाई नहीं पड़ते। फूल तो हैं, लेकिन आप इतनी तेजी में हैं, इतनी दौड़ में हैं कि फूल दिखाई कैसे पड़ें। आपको ठहरना पड़ेगा, तो वह दिखाई पड़ जाएगा जो है। और आप भागते रहे, तो वह नहीं दिखाई पड़ेगा जो है।

जितनी तेजी से आप गुजरेंगे, उतनी ही तेजी से उसे चूक जाएंगे जो है। इसलिए जितना तेज दौड़ने वाला मन है, उतना ही सत्य से दूर हो जाता है। जितना ठहरा और खड़ा हुआ मन है, उतने सत्य के निकट हो जाता है। सच तो यह है कि ठहरा हुआ मन, उसका अर्थ है, अ-मन, नो-माइंड, मन गया, ठहरा कि गया।

यह बात ठीक से समझ लेनी जरूरी है। क्योंकि हम ऐसा ही रोज बोलते हैं। हम कहते हैं, फलां आदमी इसके पास बड़ा शांत मन है। बड़ी गलत बात बोलते है। शांत मन जैसी कोई चीज होती ही नहीं। अशांति का नाम मन है। मन सदा ही अशांत है। अगर अशांति गई, तो मन गया।

इसको इस तरह समझें। एक नदी में जोर का तूफान है, लहरें विक्षुब्ध हैं, आंधी चलती है, सब अशांत हैं। हम कहते हैं कि नदी की लहरें बड़ी अशांत हैं। फिर सब लहरें शांत हो जाती हैं, तो हम क्या कहेंगे अब, लहरें शांत हो गईं? इसका मतलब है कि लहरें न हो गईं, अब लहरें नहीं हैं। शांत लहर जैसी कोई लहर नहीं होती। लहर का मतलब ही अशांत होना होता है। लहर है तो अशांति होगी। शांत लहर जैसी कोई चीज नहीं होती। शांत लहर का मतलब है, लहर मर गई। अब लहर नहीं है। इसी का मतलब शांत लहर है।

मन हमेशा अशांत है। और अशांत क्यों है? जो खोजेगा वह अशांत रहेगा। खोज का अर्थ हैः तनाव। खोज का अर्थ हैः टेंशन। मैं यहां हूं और जो मुझे पाना है वह वहां है। वह उतने दूर है। वह वहां है जो मुझे पाना है और जिसे पाना है वह यहां है। दोनों के बीच तनाव है। जब तक मैं उसे न पा लूं, तब तक शांत नहीं हो सकता हूं। और जब तक मैं उसके पास पहुंचूंगा, तब तक मेरी खोज आगे बढ़ जाएगी। क्योंकि वह मन कहेगा, और आगे, और आगे, और आगे। क्योंकि मन जब तक कहे, और आगे, तभी तक जी सकता है। मन जब तक कहे, और खोजो, और आगे खोजो, तभी तक बच सकता है। इसलिए मन रोज आपको और आगे ले जाता है। मन भविष्य में ले जाता है। और आप वर्तमान में हैं।

खोज भविष्य में ले जाती है। और सत्ता वर्तमान में है। खोज कहती हैः कल। खोज कहती हैः कल मिलेगा--कल धन मिलेगा, कल पद मिलेगा, कल भगवान मिलेगा--कल। खोज कहती हैः कल, और जो है वह आज है--अभी और यहां!

कुछ फकीर एक साथ यात्रा कर रहे थे। एक सूफी फकीर भी था उसमें। एक योगी भी था। एक भक्त भी था। वे एक गांव में ठहरे हैं और गांव में उन्होंने भीख मांगी और फिर उस सूफी को कहा कि तुम जाओ और बाजार से भोजन ले आओ।

वह बाजार से हलवा ले आया। लेकिन पैसे कम थे, हलवा थोड़ा था, आदमी ज्यादा थे। तो उन सबने दावा करना शुरू किया कि सबसे पहला हक मेरा है। क्योंकि मैं भगवान का सबसे बड़ा भक्त हूं। और भगवान मुझे अक्सर बांसुरी बजाते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसलिए हलवा पहले मुझे मिलना चाहिए।

योगी ने कहाः क्या बातचीत लगा रखी है। मेरी जिंदगी गुजर गई शीर्षासन करते हुए। मुझसे ज्यादा उलटा अब तक कोई आदमी नहीं खड़ा रहा। योग की मुझे सिद्धि है। हलवा मैं लूंगा।

और उन सबमें विवाद हो गया। और कुछ तय न हो सका। सूरज ढल गया। हलवा था थोड़ा। कोई राजी न था, पहले हक किसका है।

आखिर उस सूफी फकीर ने कहाः एक काम करो, हम सो जाएं। रात जो सबसे अच्छा सपना देखे, सुबह हम अपने सपने बताएं। जिसका सपना सबसे अच्छा हो, वह हलुवे का मालिक हो जाए।

रात वे सो गए। निश्चित ही उन्होंने अच्छे सपने देखे। अब सपने पर किसी का बस तो नहीं है। लेकिन सपने उन्होंने गढ़े।

सुबह उठ कर वे सब अपने सपने बताने लगे। उस भक्त ने कहा कि भगवान प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि तू मेरा सबसे बड़ा भक्त है। तुझसे बड़ा मेरा कोई भक्त नहीं है। हलुवे का हकदार मैं हूं।

योगी ने कहा कि मैं समाधि में चला गया, मोक्ष तक पहुंच गया, परम आनंद का अनुभव किया। हलुवे का हकदार मैं हूं। और सबने अपने दावे किए।

आखिर में उस सूफी फकीर से पूछा, तुम्हारा क्या ख्याल है? उसने कहाः मैं बड़ी मुश्किल में हूं। क्योंकि मैंने एक सपना देखा कि भगवान कह रहे हैं कि उठ और हलुवा खा। मैं उठा और हलुवा खा गया। क्योंकि आज्ञा नहीं टाली जा सकती। आज्ञा कैसे टाल सकता था?

वह जिस सूफी ने, यह कहानी अपने जीवन में लिखी है, उसने कहा है, जो उठते हैं अभी और हलवा खा लेते हैं, बस वे ही। जो कहते हैं, कल। जो कहते हैं, इसलिए। जो एक क्षण के लिए भी आगे को टालते हैं, वे चूक जाते हैं। और खोज सदा आगे को टालती है। खोज पोस्टपोनमेंट है। खोज स्थगन है। खोज आज और अभी नहीं हो सकती। खोज करनी पड़ेगी, करनी पड़ेगी। कल हम कहीं पहुंचेंगे, वहां उपलब्धि होगी। वहां तक पहुंचते-पहुंचते वह खोज करने वाला मन आगे फोकस बना लेगा। वह कहेगा, और आगे, और आगे।

जैसे क्षितिज दिखाई पड़ता है, जाएं भवन के बाहर, चारों तरफ आकाश छूता हुआ मालूम पड़ता है पृथ्वी को। लगता है यह रहा छूता हुआ। जरा उदयपुर के आगे गए, पहाड़ियों के पार और आकाश छूता होगा। फिर जाएं वहां, जितना आगे बढ़ेंगे आकाश उतना आगे बढ़ जाएगा। वह कहीं छूता ही नहीं है। आकाश पृथ्वी को कहीं नहीं छूता है। आप बढ़ते जाएंगे, वह आगे बढ़ता चला जाएगा।

आप सारी पृथ्वी का चक्कर लगा आएं, वह हमेशा मालूम पड़ेगा, वह रहा छूता हुआ। बुला रहा है। और आप आगे बढ़ जाएंगे और पाएंगे वह और आगे बढ़ गया है।

इच्छा का आकाश भी ऐसे ही कहीं नहीं छूता। इच्छा का आकाश भी मनुष्य की आत्मा की पृथ्वी को कहीं नहीं छूता। आप बढ़ते हैं और वह आकाश आगे बढ़ जाता है। दौड़ते हैं, दौड़ते हैं, खोजते हैं, खोजते हैं, समाप्त हो जाते हैं। एक जन्म, दो जन्म, अनंत जन्म। और वह खोज का पागलपन नहीं छूटता है।

हां, एक बात भर होती है, एक खोज से ऊब जाते हैं तो दूसरी खोज शुरू कर देते हैं। लेकिन खोज जारी रहती है। और मैं आपसे यह कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी वह है जो खोज से ऊब गया। किसी खोज से नहीं, खोज से। जो खोज से ही ऊब गया। और अब जो कहता है, खोजेंगे ही नहीं, अब तो हम बैठेंगे, बिना खोजे देखेंगे कि क्या है?

बिना खोजे बैठ कर देखने का नाम ध्यान है। ए नॉन-सीकिंग माइंड। जो नहीं खोज रहा है, ऐसा चित्त, वह ध्यान में उतर जाता है, वह ध्यान में पहुंच जाता है। वह अवस्था ही ध्यान है। ए नॉन-सीकिंग माइंड।

एक क्षण को भी हमने नहीं जाना है ऐसा कि जब हम न खोजते हों, हम कुछ न कुछ खोजते ही हैं। यह खोज हमारी भीतरी बेचैनी का लक्षण है।

अगर एक आदमी को एक कमरे में आप खाली छोड़ दें। और कुछ भी न हो और एक छेद से देखते रहें। तो वह आदमी खोज करेगा उस कमरे में। वह बैठेगा नहीं। वहां कुछ भी नहीं है। अगर एक रद्दी अखबार का टुकड़ा पड़ा मिल जाएगा, तो उसको पढ़ेगा। एक दफा, दो दफा, दस दफा। उसी को बार-बार पढ़ेगा। खिड़की खोलेगा, बंद करेगा। वह कुछ न कुछ करेगा। वह कुछ न कुछ करना जारी रखेगा। लेटेगा तो करवट बदलेगा, उठेगा तो हाथ-पैर हिलाएगा।

बुद्ध के सामने एक दिन एक आदमी बैठा है, पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध ने बोलना बंद कर दिया और कहा कि मेरे मित्र, यह अंगूठा क्यों हिलता है? वह जैसे ही बुद्ध ने कहा उस आदमी का अंगूठा रुक गया।

उसने कहाः आप तो अपनी बात जारी रखिए, आप कहां अंगूठा वगैरह देखते हैं। आपको क्या मतलब मेरे अंगूठे से?

बुद्ध ने कहाः तुझे मतलब नहीं है तेरे अंगूठे से, मुझे है। यह अंगूठा हिलता क्यों है?

उस आदमी ने कहाः यूं ही हिलता था, मुझे कुछ पता भी नहीं था।

बुद्ध ने कहाः तेरा अंगूठा है और तुझे ही पता न हो! तब बड़ी मुश्किल हो गई, तू आदमी होश में है कि बेहोश? अंगूठा क्यों हिलता था?

उस आदमी ने कहाः आप भी कहां की फिजूल की बातों में उलझते हैं। अंगूठे से क्या लेना-देना?

बुद्ध ने कहाः यह सवाल अंगूठे का नहीं है। यह बताता है कि चित्त भीतर बेचैन है, हिलता है।

आप देखें एक आदमी कुर्सी पर बैठा है, कुछ नहीं टांगें ही हिला रहा है। पूछें इससे, यह टांगें किसलिए हिला रहे हैं? कहीं जाएं और टांगें हिलाएं समझ में आता है। कहीं जा नहीं रहे, बैठे-बैठे टांगें हिला रहे हैं। क्या हो गया आपको? भीतर मन हिल रहा है, वह कहता है, कुछ करो। कुछ न करोगे तो कुछ फिजूल ही करो।

एक आदमी सिगरेट पी रहा है। अब सिगरेट पीने में कोई भी सार्थकता नहीं है। धुआं भीतर ले जा रहा है, बाहर निकाल रहा है। कोई पूछे कि यह तुम क्या कर रहे हो? धुएं को बाहर-भीतर क्यों कर रहे हो? वह तो चलता है और हम सब देखने के आदी हो गए। अगर एक आदमी एक गिलास ले ले, पानी अंदर ले जाए और गुलके, तो हम उसको पागल कहेंगे। मगर अगर वह भी चल पड़े और सभ्यता उसको ग्रहण कर ले कि यह भी एक तरकीब है मन बहलाव की। तो आप देखेंगे कि घर-घर में लोग बैठे हुए हैं और पानी अंदर ले जा रहे हैं और गुलक रहे हैं।

और अगर हजार दो हजार साल तक यह चलता रहे तो धर्मगुरु समझाएंगे कि पानी गुलकना बड़ी बुरी चीज है। लेकिन लोग कहेंगे, क्या करें महाराज, छूटता नहीं, आदत पड़ गई है। नहीं गुलकते हैं तो याद आती है, तलफ मालूम होती है, अर्ज मालूम होती है। दिन में चार-छह दफे गुलकना ही पड़ता है।

अब आपको पता नहीं, यहां हिंदुस्तान में कोई गाद को नहीं चबा रहा है। पूरी अमरीका में लोग चबा रहे हैं। गाद को रखे हुए हैं दांत के नीचे, चबाए चले जा रहे हैं। गाद नहीं छूटती। अब हमको कभी ख्याल भी नहीं आया है कि बैठो और दिन में चार-छह दफे गाद चबाओ। क्यों? बस वहां चल गया है फैशन, तो चल रहा है।

सिगरेट लोग फूंक रहे हैं, धुआं भीतर ले जा रहे हैं, बाहर ला रहे हैं। यह क्या कर रहे हैं? यह सिगरेट पीने न पीने का सवाल नहीं है, यह बुनियादी रूप से बेचैन आदमी कुछ न कुछ करना चाहता है। खाली बैठा है, अब क्या करे? वह धुआं ही अंदर-बाहर कर रहा है। उसे एक काम मिल गया, एक आकुपेशन मिल गया। सिगरेट एक आकुपेशन है। खाली आदमी के लिए कुछ उलझाव का रास्ता है।

धीरे-धीरे सारी दुनिया की स्त्रियां भी सिगरेट पीने लगीं। आपको पता है, जिन मुल्कों की स्त्रियां सिगरेट पीने लगीं, उन मुल्कों की स्त्रियों ने बातचीत और बकवास कम कर दी। क्योंकि नया आकुपेशन मिल गया है।

हिंदुस्तान है जैसे, हमारा मुल्क, यहां औरतें सिगरेट नहीं पी सकतीं, तो बकवास करती हैं। जितना काम आप सिगरेट पीकर होंठ चला कर कर लेते हैं, उतना उनको बातचीत करके करना पड़ता है। मामला एक ही है, उसमें कोई फर्क नहीं है। और मैं समझता हूं कि बजाय दूसरे की खोपड़ी खाने के सिगरेट पीना ज्यादा सरल है। आप अपने में ही उलझे रहें, जो भी आपको करना है खुद तो कर रहे हैं, किसी दूसरे का सिर तो नहीं खा रहे हैं।

दुनिया में स्त्रियां इसीलिए ज्यादा बात कर रही हैं कि उनको अपने होंठों को उलझाने का और कोई सरल मार्ग नहीं। लेकिन जिन मुल्कों में स्त्रियों ने सिगरेट शुरू कर दी, वहां वे गंभीर हो गईं। अब वे एक कोने में बैठ कर अपनी सिगरेट पीती रहती हैं, वे बातचीत नहीं करतीं।

हमारा चित्त व्यर्थ के उपक्रम खोज रहा है। सुबह से आदमी उठा, अखबार खोल लेगा। उठते से ही पूछेगा, अखबार कहां है? आप समझ रहे हों कि वे कोई दुनिया का ज्ञान पाने के लिए बड़े आतुर हैं? ऐसा मत समझना। उन्हें अपने ही ज्ञान की फिकर नहीं हैं, वे किसी के ज्ञान के लिए क्या आतुर होंगे?

लेकिन कोई उलझाव चाहिए। थोड़ी देर के लिए उसी में उलझे रहेंगे। फिर जल्दी से रेडियो खोल देंगे, फिर उसमें उलझे रहेंगे। उलझाव चाहिए। आदमी भीतर बेचैन है। उसे कुछ न कुछ खोज चाहिए। खोज नहीं होगी तो मुश्किल हो जाएगी।

हम अपने से ही भागे हुए हैं। खुद से ही एस्केप चल रही है। और इस एस्केप को, इस भागे हुए होने को हम नये-नये नाम दे रहे हैं।

इससे काम नहीं चलेगा, रुकना पड़ेगा। खुद से भागना नहीं पड़ेगा, ठहरना पड़ेगा। कभी तो ठहर जाएं अपने भीतर थोड़ी देर। कहीं न जाएं, कुछ न करें, कुछ न खोजें, कोई उलझाव न लें, न पैर हिलाएं, न हाथ हिलाएं, न सिगरेट पीएं, न अखबार पढ़ें, न राम-राम जपें। एक ही बात है। चाहे धुआं बाहर-भीतर ले जाएं और चाहे राम-राम करें। उलझाव एक ही है। चाहे माला फेरें। गुरियों को सरका रहे हैं। अगर दुनिया अच्छी आएगी और बच्चे समझदार होंगे, तो बहुत हैरान होंगे कि क्या आदमी पागल था कि बैठ कर आधा-आधा, पौन-पौन घंटे तक लोग गुरिया सरकाते रहते थे? हमको नहीं दिखता, क्योंकि हमको लगता है कि यह तो बिल्कुल ठीक बात है, जो आदमी धार्मिक हो जाता है वह गुरिए सरकाता है। अब गुरिए सरकाने से धार्मिक होने का क्या संबंध है?

एक ही बात है, मेथड अलग है। सिगरेट पीने वाले का और गुरिए सरकाने वाले का कोई फर्क नहीं है। वह धुआं बाहर-भीतर कर रहा है, ये गुरिए नीचे-ऊपर कर रहे हैं। लेकिन कुछ करने में चित्त अटका हुआ है। कुछ बिना किए नहीं रह सकते हैं। बिना किए रह जाना ध्यान है, कुछ भी बिना किए रह जाना ध्यान है।

यह दूसरा सूत्र मैंने आपसे कहाः थोड़ी देर के लिए बिना किए रह जाना। बिल्कुल बिना कुछ किए। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ठीक है, तो फिर हम करें क्या उस वक्त? ओम जपें, राम-राम जपें, किसका ध्यान करें, कौन सा मंत्र पढ़ें? नमोकार पढ़ें, क्या करें?

मैं उनसे कहता हूं, कि यही मैंने समझाया कि कुछ मत करो। वे कहते हैं, कुछ तो करना ही पड़ेगा। कुछ तो बता दें आप। अगर कुछ बता दें, तो वे निश्चिंत हो जाते हैं। क्योंकि फिर दूसरी चीज उनको करने को मिल गई। उनको करने को कुछ चाहिए था। वे कुछ भी करने को राजी हैं। मगर आप कुछ करने को बता दें। वे वही करते रहेंगे और करने में लगे रहेंगे। और फिर वही काम शुरू हो जाएगा जो जारी था।

मैं कहता हूं, कुछ देर के लिए न करना, नो एक्शन। कुछ देर के लिए नो डूइंग, कुछ भी नहीं करना है। एक सेकंड के लिए भी अगर न करने की स्थिति उपलब्ध हो जाए, तो उसी सेकंड से वह द्वार खुल जाएगा जो परमात्मा का द्वार है। रात्रि हम इस प्रयोग के लिए बैठेंगे।

रात्रि ध्यान के प्रयोग के लिए बैठेंगे, तब इतना ही स्मरण रखना है कि हम ध्यान कर रहे हैं, इसका मतलब कुछ कर नहीं रहे हैं, यह सिर्फ भाषा की भूल है कि कहना पड़ता है ध्यान कर रहे हैं। अब ध्यान का मतलब ही न करना होता है। अब भाषा बड़ी मुश्किल है। भाषा बनाई है नासमझों ने। और समझदार अब तक भाषा नहीं बना पाए। समझदार भाषा बनाने की कोशिश करते हैं, तो नासमझ बनाने नहीं देते। समझदार अगर भाषा बनाए तो बहुत और तरह की भाषा होगी। नासमझों ने भाषा बनाई है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा। फिर रात हम इस न करने में उतरेंगे।

आप दिन भर इसके लिए थोड़ा सोचना कि यह न करना क्या है? इसे थोड़ा निखारना। मैंने जो कहा आप भी सोचना। कुछ मैं ही कहूं, उससे आपकी समझ में आ जाएगा ऐसा नहीं है। मैं कहूं, उस कहने में आपको भी कुछ कंट्रिब्यूट करना पड़ेगा। आपको भी कुछ सतत चिंतन करना पड़ेगा, तो कुछ होगा।

मैंने सुना है, जापान में एक आश्रम था। और उस आश्रम को देखने जापान का सम्राट गया। बड़ा आश्रम है। सैकड़ों भिक्षुओं की कोठरियां हैं। एक-एक जगह जाकर आश्रम के गुरु ने सम्राट को दिखाई। बाथरूम भी बताए, संडासें भी बताईं। व्यायाम की जगह बताई, अध्ययन की जगह बताई। और वह सम्राट बार-बार पूछने लगा, क्या छोटी-छोटी चीजें दिखाते हो, वह बीच में जो बड़ा भवन खड़ा है, वहां क्या करते हो?

लेकिन जब भी वह सम्राट कहे, बीच में जो भवन खड़ा है, वहां क्या करते हो, वह भिक्षु ऐसा बहरा हो जाए, जैसे सुना ही नहीं। और सब बातें सुने।

सम्राट को क्रोध आ गया। क्योंकि जो देखने आया था, वह भवन वह दिखाता नहीं है। और फिजूल की चीजें दिखा रहा है कि यहां गाय-भैंसे बांधते हैं। और सम्राट ने कहाः क्या पागल हो गए हो? मुझे तुम्हारी गाय-भैंसे कहां बांधते हो, कोई प्रयोजन नहीं। मैं यह भवन देखने आया हूं कि वहां क्या करते हो?

जैसे ही वह कहे, वहां क्या करते हो, वह भिक्षु एकदम चुप हो जाए। सम्राट क्रोध में वापस लौट आया दरवाजे पर और कहा कि मैं दुखी लौट रहा हूं, या तो तुम पागल हो और या मैं पागल हूं। यह बड़े भवन में क्या करते हो, बोलते क्यों नहीं?

उस भिक्षु ने कहाः आप गलत सवाल पूछते हैं। और अगर मैं जवाब दूंगा तो वह गलत हो जाएगा। गलत सवाल का कभी सही जवाब नहीं हो सकता।

उसने कहाः मैं क्या गलत पूछता हूं? मैं यह पूछता हूं, इस भवन में क्या करते हो?

उसने कहा कि इसीलिए, आप करने की भाषा समझते हो, इसलिए मैंने बताया कि यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां अध्ययन करते हैं, यहां व्यायाम करते हैं। और वह जो भवन है, वह हमारा ध्यान-कक्ष है, वहां हम कुछ भी नहीं करते। अब आप पूछते हो, वहां क्या करते हैं? तो मैं चुप रह जाता हूं कि यह आदमी अपनी भाषा नहीं समझेगा, यह करने की भाषा समझने वाला है। इसलिए मैं बताता हूं, यहां हम गाय-भैंस बांधते हैं। और वहां, वहां जब किसी को कुछ भी नहीं करना होता तो कोई चला जाता है, वह हमारा ध्यान-भवन है, वह हमारा मेडिटेशन हॉल है। वहां हम कुछ करते नहीं महाराज, वहां जब न करने का मन होता है तब हम चले जाते हैं। वहां हम कुछ भी नहीं करते, वहां हम होते हैं, करते नहीं। बस वहां सिर्फ होते हैं, वहां हम कुछ भी नहीं करते हैं।

थोड़ा सोचना, दिन भर इस पर विचार करना, तो रात उपयोगी होगा। क्योंकि मैं कह दूं, इतना काफी नहीं है, आप सोचोगे तो जो मैंने कहा है वह और निखर जाएगा। कुछ आप भी उसमें अनुदान करना।

मैंने सुना है, एक सम्राट ने अपने एक मित्र को मेहमान की तरह बुलाया हुआ था और वे शिकार के लिए गए। तो मित्र को सताने के लिए, मित्र एक ज्ञानी था, उसको सताने के लिए। शिकार पर जब गए तो उसे सबसे रद्दी घोड़ा जो इतना धीमा चलता था कि कभी शिकार तक पहुंचना ही मुश्किल था, उसको पकड़ा दिया।

गए शिकार को, तो सब तो शिकार के जंगल में पहुंच गए। वह मित्र अभी गांव के बाहर ही नहीं निकल पाए थे। घोड़ा ऐसा चलता था कि अगर बिना घोड़े के होते तो ज्यादा चल जाते।

कई दफे ऐसा होता है कि साधन बाधा बन जाते हैं। लेकिन भाग्य की बात, पानी गिरा जोर से। तो मित्र गांव के बाहर से ही वापस लौट आया। उसने अपने सारे कपड़े निकाल कर अपने नीचे रख लिए और घोड़े के ऊपर बैठ गया।

जब वह घर पहुंचा उसने कपड़े पहन लिए। राजा और बाकी साथी जंगल तक पहुंच गए थे। वे भागे हुए आए। बिल्कुल तर-बतर हो गए। देखा कि मित्र तो साफ कपड़े पहने हुए है। जरा भी भीगा नहीं। उन्होंने पूछा, क्या मामला है? उस मित्र ने कहाः यह घोड़ा बड़ा अदभुत है, यह इस तरकीब से ले आया कि कपड़े भीग न पाए।

दूसरे दिन फिर शिकार को निकले। राजा ने कहाः आज मैं इस घोड़े पर बैठूंगा।

मित्र ने कहाः आपकी मर्जी। मित्र को तेज घोड़ा दे दिया राजा ने और राजा उस घोड़े पर बैठा। फिर पानी गिरा। मित्र ने फिर कपड़े निकाल कर घोड़े की पीठ पर रख कर, उसके ऊपर बैठ गया और तेजी से घर आया। कल से भी कम भीगा, क्योंकि आज तेज घोड़ा था।

राजा कल से भी ज्यादा भीग गया। क्योंकि वह घोड़ा तो बिल्कुल चलता ही नहीं था। सारी वर्षा उसके ऊपर गुजरी। घर आकर उसने कहा कि तुमने झूठ बोला, यह घोड़ा तो हमें और भीगा दिया।

मित्र ने कहाः महाराज अकेला घोड़ा काफी नहीं होता, यू हैव टू कंट्रिब्यूट समथिंग। आपको भी कुछ, आपको भी कुछ करना पड़ता है। घोड़ा अकेला क्या करेगा? कुछ आपने भी किया था कि सिर्फ घोड़े पर निर्भर रहे थे? उन्होंने कहाः मैं तो सिर्फ घोड़े पर बैठा रहा। सब गड़बड़ हो गई।

कुछ हम भी किए थे, तो घोड़े ने भी साथ दे दिया था। आज भी हम किए हैं, घोड़े ने साथ दे दिया।

राजा पूछने लगा, तूने क्या किया था? उसने कहा कि वह मत पूछो। वह पूछो ही मत। वही तो राज है। लेकिन एक बात तय है, उस आदमी ने कहा कि हमेशा कुछ आपको भी करना पड़ता है। और अगर आप कुछ

नहीं करते हैं, तो तेज घोड़ा भी व्यर्थ है। अगर आप कुछ करते हैं तो शिथिल से शिथिल चलने वाला घोड़ा भी सहयोगी और मित्र हो सकता है। मैंने एक बात कह दी वह एक घोड़े से ज्यादा नहीं हो सकती।

आप कुछ करते हैं, तो कुछ बात होगी। अन्यथा बात आप सुनेंगे, खो जाएगी। तो आप सोच कर रात आएं, न करने की बात को समझ कर आएं कि क्या है न करना। और फिर रात हम बैठेंगे। अगर सोच कर आप आए तो न करने में उतरना हो सकता है। अभी इसी वक्त हो सकता है। कभी भी हो सकता है। लेकिन एक तैयारी विचार की पीछे हो तो आदमी एक क्षण में छलांग लगा जाता है। और वह छलांग इतनी अदभुत है, वहां पहुंचा देती है जहां हम सदा से हैं। वह छलांग वहां पहुंचा देती है जहां हम सदा से हैं। रात उस छलांग के लिए फिर मिलेंगे।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

विचार-क्रांति

दो-तीन बातें हैं। एक तो राग-द्वेष से हलके होने में हमने यह मान लिया कि राग-द्वेष से हम भारी हैं। कल भी रात मैं वह कहा, सुबह भी वह मैं कहा। यह बिल्कुल भ्रांति है। और इसको मान कर अगर आप मिटाने चलिएगा, आप कभी नहीं मिटा पाएंगे।

तो मेरा कहना यह नहीं है कि राग-द्वेष से कैसे हलके हों, मेरा कहना है, पहले यह जानें कि राग-द्वेष और आप एक हैं या दो हैं। बस इसकी खोज करें। इसका पूरा विश्लेषण करें अपने मन में कि राग और मैं एक हूं कि अलग-अलग हूं। और जितना आपको साफ होता चला जाएगा कि मैं अलग हूं, राग वह रहा, द्वेष वह रहा, मैं यह रहा, जितना यह भाव गहरा होगा राग-द्वेष क्षीण होते चले जाएंगे। जिस दिन यह बात पूरी स्पष्ट हो जाएगी कि मैं सबसे पृथक हूं, न कोई राग है, न कोई द्वेष है, उस दिन आप बाहर हो गए। यानी सच में तो कोई राग-द्वेष के भीतर नहीं है, जो बात मैं कहना चाहता। और उसको मान लिया कि हम राग-द्वेष में हैं, फिर बड़ी कठिनाई हो गई। फिर उससे निकलने का उपाय करना पड़े।

इसका साक्षीभाव भर एकमात्र उपाय है। राग के भी साक्षी बनिए, द्वेष के भी साक्षी बनिए। सिर्फ साक्षी बनिए। बचने की कोशिश मत करिए, न भागने की कोशिश करिए। जब राग आए तब साक्षी बनिए कि राग आया, मैं देख रहा हूं कि राग आया--मैं यह अलग हूं, राग यह रहा। जब द्वेष आए, तो देखिए कि द्वेष आया, यह द्वेष आ रहा है मैं अलग हूं। ऐसे ही जैसे अंधेरा आता है तो देखते हम, उजाला आता है तो देखते हम।

अभी यहां उजाला है। बैठे रहें, सांझ होगी, अंधेरा आ जाएगा। तब हम यह नहीं कहेंगे कि मैं अंधेरा हो गया। तब हम कहेंगे, अब अंधेरा आ गया। फिर सुबह होगी, हम कहेंगे, उजाला आ गया। और मैं? मैं तो अलग हूं। अंधेरा आता है, उजाला आता है; जाता है, चला जाता है।

राग और द्वेष भी ऐसे ही आ और जा रहे हैं। उनके पीछे मैं अकेला खड़ा हूं, अलग खड़ा हूं। भ्रांति यह हो रही है कि राग आता है तो उसको पकड़ लेता हूं कि यह मैं हूं। द्वेष आता है तो पकड़ लेता हूं कि यह मैं हूं। यह जो आइडेंटिटी हो जाती है, बस इसको ही तोड़ देना है। और तोड़ने के लिए आप कुछ करेंगे नहीं, तोड़ने के लिए सिर्फ इसको देखना काफी है। जैसे जब क्रोध आए तो यह देखें कि क्रोध आ गया है। और आप हैरान हो जाएंगे, जैसे ही यह पता चला कि क्रोध आ गया है और मैं अलग खड़ा हूं, आप देखेंगे कि क्रोध धुएं की तरह क्षीण होकर उड़ गया। आप खड़े रह गए, क्रोध अब नहीं है। तो जो भी वृत्ति आती हो, सिर्फ साक्षी हो जाएं, एक विटनेस हो जाएं।

प्रश्नः व्यक्तियों के संपर्क में आते ही उभर तो जाता है।

उभरने का, अभी मैं कुछ कह नहीं रहा कि नहीं उभरेगा, यह मैं कहां कह रहा हूं। मैं यह कह नहीं रहा कि नहीं उभरना चाहिए, यह भी नहीं कह रहा हूं। मैं तो यह कह रहा हूं, जो हो जाता है उसके साक्षी बनें। साक्षी बनने से वह धीरे-धीरे नहीं हो जाएगा। तब व्यक्ति के संपर्क में आएंगे आप, लेकिन बीच में कुछ नहीं उभरेगा। तब उधर एक व्यक्ति होगा, इधर एक व्यक्ति होगा, बीच में कुछ भी नहीं होगा--न राग होगा, न द्वेष होगा।

यानी अगर इसे ठीक से समझें तो हमारी अमूर्च्छा, हमारी अमूर्च्छा ही राग-द्वेष से मुक्ति का उपाय है। और हमारी मूर्च्छा ही राग-द्वेष में गिर जाना है। बेहोश हैं हम। और इसलिए पकड़ लेते हैं एकदम, जो भी आ जाता है। जब क्रोध आता है तो ऐसा नहीं लगता कि मुझे क्रोध आ रहा है, ऐसा लगता कि मैं क्रोध हो गया हूं। अगर बहुत गौर से देखें, तो मैं क्रोध हो गया। आग जल गई, मैं ही आग हो गया हूं। उस वक्त ऐसा थोड़े ही है कि हम क्रोध में आकर किसी को मार रहे हैं, हम क्रोध हो गए और मार रहे हैं।

इसलिए तो क्रोध के बाद ऐसा लगता है कि अरे, यह मैंने कैसा कर दिया! मैं तो कभी नहीं कर सकता था, फिर यह कैसे हुआ? आप थे ही नहीं मौजूद, आप बिल्कुल सो गए थे, क्रोध ही सब कुछ हो गया। अब वह, वह सब करवा रहा है। फिर पछताते हैं। लेकिन जो भूल क्रोध करने में की थी वही भूल पछताने में कर रहे हैं। उस वक्त मान लिया था कि मैं क्रोध हूं, अब मान रहे हैं कि मैं पछतावा हूं। एक बुनियादी भूल वही है। अब आप यह समझ रहे हैं कि मैं पश्चात्ताप कर रहा हूं, मैं पश्चात्ताप हो गया हूं। रो रहे हैं, छाती पीट रहे हैं, भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं कि क्या हो गया। यह नहीं होना चाहिए था। अब आप कहते हैं, मैं छोडूंगा। पहले आपने पकड़ने की भूल की, अब आप कहते हैं, छोड़ना है।

इसलिए मैं कहता हूं, पकड़ना भी नासमझी है, छोड़ना भी नासमझी है। यह जानना समझदारी है कि मैं अलग हूं और यह अलग है। न पकड़ना है, न छोड़ना है।

तो इसकी तो क्रमिक जागरूकता चाहिए। चौबीस घंटे, जब भी कोई घटना घटती हो, तब इतना होश रखें कि क्या हो रहा है, मैं अलग हूं यह नहीं। और यह अलग होने का भाव बढ़ता चला जाए--जैसे अभी आप सुन रहे हैं, आप चाहें तो रागाविष्ट होकर सुन सकते हैं और चाहें तो द्वेषआविष्ट होकर सुन सकते हैं, और चाहें तो सिर्फ सुन सकते हैं। इसी में बात बन जाए सुनते वक्त अगर आप यह सोच रहे हैं कि यह बात ठीक है, इसको पकड़ लें और करें, राग शुरू हो गया। अगर सुनते वक्त आप यह सोच रहे हैं कि हमारी किताब के यह बात खिलाफ है, हमारे शास्त्र में जो लिखा है--यह गड़बड़ बात है, यह हम नहीं सुन सकते, यह नहीं सुनना चाहिए, यह बिल्कुल गलत है, तो आप द्वेष आविष्ट हो गए, फिर भी आप नहीं सुन रहे हैं। तीसरा उपाय यह है कि आप सिर्फ सुन रहे हैं, और पीछे जो खड़ा है उसे न कोई राग है, न द्वेष है। न वह यह कहता है यह गलत है, न वह यह कहता यह सही है, वह सिर्फ सुनता है, सुन लेता है। और इस सुनने से जो समझ पैदा होती है वह राग-द्वेष से मुक्त होती है। मगर ऐसा हम कभी नहीं सुनते। और ऐसा प्रत्येक क्रिया में प्रयोग करें, तो धीरे-धीरे राग-द्वेष से छूटते नहीं हैं, पाते हैं कि कभी बंधेंगे नहीं फिर। जो मेरा जोर है बहुत, ऐसा नहीं होता कि किसी दिन आपको पता चलेगा राग-द्वेष से छूट गए आप। अगर ऐसा पता चला तो गलती जारी है। पता चलेगा मैं कभी बंधा ही नहीं था।

जैसे एक आदमी रात सोया है एक घाट पर, नींद लग गई और सपना देखता है कि कलकत्ते में है या टोकियो में है, अब वह सपने में बड़ा बेचैन होता है कि मैं कितने दूर निकल आया उदयपुर से, और किसी से पूछता है कि मैं उदयपुर कैसे वापस जाऊं? अब क्या होगा? टोकियो निकल आया, घर हजार काम पड़े हैं, मैं तो घर सोया था उदयपुर में और टोकियो आ गया, सुबह मुझे उदयपुर होना है, अब मैं कैसे पहुंचूं? कौन सा हवाई जहाज पकडूं? कौन सा जहाज पकडूं? पहुंच पाऊंगा सुबह तक कि नहीं? ठीक पूछ रहा है। क्योंकि जहां तक उसके माइंड का संबंध है वह टोकियो में पहुंच गया है। बाकी वह कहीं गया नहीं, वह यहीं पड़ा हुआ है। सुबह आंख खुलती है, अब वह हैरान होता है कि मैं कैसे वापस आ गया? टोकियो चला गया था, टोकियो से वापस

कैसे आया? लेकिन जागते ही वह पाएगा कि न मैं गया था और न मैं आया, मैं यहीं था। जाने का भ्रम हुआ था, फिर आने का भ्रम भी हुआ। क्योंकि जाने के भ्रम से आने का भ्रम पैदा होता है।

तो राग से पकड़े होने का एक भ्रम है, राग छूट जाने का दूसरा भ्रम है। और जो दोनों भ्रम से छूटता है उसको हम वीतराग कहते हैं। वीतराग का मतलब है कि जिसने यह जाना कि मैं दोनों के पार हूं। वीत का मतलबः बियांड। वीत का मतलब यह नहीं कि छोड़ दिया। वीत का मतलब यह नहीं कि छोड़ दिया। वीत का यह मतलब है कि मैंने कभी न पकड़ा था, न कभी छोड़ा, आई वा.ज बियांड। और इस भ्रम में पड़ गया था कि उलझा हूं।

प्रश्नः एम बियांड या वा.ज बियांड?

वा.ज बियांड। एम बियांड तो है ही। वह तो जब जानेंगे आप, तो जब आपको लग रहा था कि भीतर हूं, जब आप जानेंगे तब आप पाएंगे कि तब भी भीतर नहीं था। और भीतर नहीं हूं यह तो साफ ही है अब। तो इसलिए छोड़ने की भाषा में मुझसे मत पूछिए। छोड़ने की भाषा को ही मैं अज्ञान की भाषा मानता हूं। क्योंकि वह पकड़ने के अज्ञान की बाई-प्रॉडक्ट है छोड़ना। किसी ने पकड़ा है, कोई छोड़ता है। कोई अपनी पत्नी को पकड़े हुए है, हालांकि जब वह पकड़े हुए तब भी पत्नी अलग है और वह अलग है। वह कोई लाख उपाय करे तो भी पकड़े हुए नहीं है। कोई पकड़े हुए नहीं है। कितना ही पत्नी को पकड़ो, क्या पकड़ोगे। जिसको पकड़े हो वह पत्नी नहीं है। और जो पत्नी है वह हाथ के बाहर है, बिल्कुल मुट्ठी के बाहर है। इसलिए तो रोज कलह है। कि पकड़े भी हुए हैं लेकिन पाते हैं कि पकड़ नहीं है। जो कह रहा है पकड़े हुए हैं, वह एक भ्रम में है। फिर एक दूसरा कहता है कि मैं पत्नी को छोड़ कर जा रहा हूं। लेकिन वह छोड़ने का भ्रम पकड़ने की बाइ-प्रोडक्ट है। अब वह कहता है कि हम पत्नी के पास नहीं आएंगे। हम पत्नी को देखेंगे नहीं। हम जंगल जाते हैं। हमने पत्नी को छोड़ दिया।

एक जैन मुनि बीस साल पहले छोड़े। उनका मैं जीवन पढ़ता था, तो बहुत दंग रह गया। बीस साल पहले कभी उन्होंने पत्नी को छोड़ा। बीस साल बाद पत्नी मरी। वे काशी में थे, उनको खबर पहुंची। तो उनकी जीवन-कथा में, जिसने लिखी है जीवन-कथा, उसने लिखा है कि अदभुत घटना घटी। जैसे ही खबर पहुंची, उन्होंने कहा कि चलो झंझट छूटी। तो उसने तारीफ में लिखा है यह कि कैसा त्याग, कि पत्नी मर गई, तब उन्होंने कहा कि झंझट छूटी।

मैंने उस लेखक को लिखा कि तुम निहायत पागल हो, और अगर उन्होंने यह कहा हो, तो तुमसे भी ज्यादा पागल वे मुनि थे। क्योंकि जिसको बीस साल पहले छोड़ आए थे, अब भी झंझट बाकी थी? जब तुम कहते हो झंझट छूटी। अब यह बड़े मजे की बात है। बीस साल पहले उस पत्नी को छोड़ कर चले आए थे, लेकिन जिसको छोड़ कर चले आए थे, वह अपनी थी, यह भ्रम कायम है। क्योंकि छोड़ा तभी था क्योंकि अपनी थी। वह अब भी अपनी है। छोड़ी हुई अपनी है। और उसकी झंझट जारी रही होगी कहीं इनर, किसी तल पर मन के झंझट जारी रही होगी कि पत्नी वहां है जिसको छोड़ दिया है। उसको कभी पकड़ा था, अब यह छोड़ दिया, यह दूसरा भ्रम। बीस साल बाद वह मर गई है, तो वे कहते हैं, चलो झंझट छूटी। मतलब झंझट बीस साल चलती रही। जब पत्नी छोड़ने से नहीं छूटी, पत्नी मरने से छूटी! तो इसको थोड़ा सोचना पड़े। और जो पत्नी छोड़ने से नहीं छूटी थी, वह पत्नी के मरने से कैसे छूट जाएगी? यानी पत्नी तो एक अर्थ में मर चुकी थी। अब बीस साल से इसके लिए कोई मतलब न था आदमी के लिए। वह अब भी नहीं छूटी थी।

तो मेरा कहना यह है कि छोड़ने-पकड़ने की भाषा नहीं, जो हो रहा है उसे देखने कि भाषा कि क्या हो रहा है, बस। और हम उसमें कितने डूबे हैं कि बाहर हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

और जिसके पैर में कांटा लग गया उससे हम कहें कि एक दूसरा कांटा ले आओ, इसका कांटा निकालें। वह आदमी कहे, मैं एक से ही परेशान हूं, और आप दूसरा किसलिए बुलाते हैं। मैं तो कांटे से ही मरा जा रहा हूं, आप दूसरा बुलाते हैं। और हम उससे कहें कि तू ठहर जरा, पहले कांटे को हम दूसरे से निकाल लेंगे। हम कांटा ले आएं, बामुश्किल वह दूसरे को पैर में डालने दे, वह कहे कि एक से हम परेशान हैं, तुम दूसरा डालते हो। फिर हम दूसरे से निकाल लें पहले वाले को। और तब वह कहने लगे, अब हम दूसरे कांटे को सम्हाल कर अपने पैर में रखेंगे, क्योंकि इसने पहले वाले कांटे को निकलवा दिया। यह बड़ी कृपा है इसकी, हम इसको रखेंगे। हम उससे कहेंगे कि नहीं, दूसरे कांटे को भी फेंक दो। दूसरे का उपयोग इतना था कि वह पहले को निकाल दे। फिर इसका कोई उपयोग नहीं है। समझे न?

तो मैं विश्वास को निकालने को कहता हूं विचार की क्रांति से। और जब विश्वास जड़मूल से फिंक जाए, अंधापन जड़मूल से फिंक जाए, तो फिर विचार को भी फेंक देना, इसलिए फिर निर्विचार, वह तीसरी सीढ़ी है। विश्वास एक सीढ़ी है, वह सबसे नीची सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी विचार है। और तीसरी सीढ़ी निर्विचार है। समझे मेरा मतलब? तल हैं। जो अभी विचार में क्रांति ही नहीं कर सकता, वह निर्विचार क्या होगा। क्योंकि निर्विचार तो विचारमात्र को छोड़ना है। और "विचार में क्रांति" गलत विचार को छोड़ कर ठीक विचार को पकड़ना। और "विचार की क्रांति" तो विचार को ही छोड़ देना है। वह तो आत्यंतिक क्रांति है। वह आखिरी क्रांति है। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? तो हम सब विश्वास से घिरे हुए हैं। तो इनसे मैं कहता हूं कि विश्वास को छोड़ो, विचार को लाओ। और जब विचार आता है तो मैं कहता हूं, अब विचार की भी कोई जरूरत नहीं, इसे भी जाने दो, अब निर्विचार हो जाओ। और ऊपर है उसकी गति। दोनों बातें कहता हूं। दो तल पर बातें हैं। विरोध उसमें नहीं है। विरोध उसमें नहीं है।

जैसे एक आदमी ऊपर चढ़ रहा है मकान पर। वह एक सीढ़ी पर पैर रखता है। हम कहते हैं, अब पहली सीढ़ी को छोड़ो, ताकि तुम दूसरी पर पैर रख सको। अगर तुम पहली को पकड़े हो तो दूसरी पर पैर नहीं रख सकोगे। वह दूसरी पर रखता है, फिर हम उससे कहते हैं, अब तुम दूसरी भी छोड़ो, ताकि तीसरी पर रख सको। वह कहेगा कि यह क्या गड़बड़ है? पहले आपने कहा था कि पहली को छोड़ो, ताकि दूसरी को पकड़ सको। हमने दूसरी को पकड़ लिया। आप कहते हैं, दूसरी को छोड़ो। हम उससे कहते हैं कि हमें पकड़ने-छोड़ने का सवाल नहीं है, हम तो तुम्हें आखिर में वहां ले जाना चाहते हैं, जहां कोई सीढ़ी न रह जाएगी--न पकड़ने को होगा, न छोड़ने को होगा। लेकिन सीढ़ी पार तो करनी पड़ेगी। ये सब सीढ़ियां हैं। निर्विचार तो आखिरी है, वहां सीढ़ियां खीत्म हो जाती हैं, वहां कोई सीढ़ियां नहीं हैं।

प्रश्नः फिर उसके बाद क्या परिस्थिति है?

उसके बाद की परिस्थिति बिना जाए नहीं पता चलने वाली।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप आत्मा हो ही नहीं। और जो आप हो, जब तक न मिटोगे, तब तक आत्मा का कोई पता न चलेगा। आप तो बिल्कुल मन हो, और वह परछाईं है।

प्रश्नः अपन किसकी परछाईं ढूंढ रहे हैं? अपन किस चीज की परछाइयां ढूंढ रहे हैं?

इसकी ही खोज करनी चाहिए। इसकी ही खोज करनी चाहिए। और खोज करते से ही पता चलेगा कि अजीब बात है कि हम घूम रहे हैं यह निपट पागलपन है। जब आप आईने में देखते हो तो किसकी परछाईं देखते हो?

प्रश्नः कोई चीज होती है उसका ही देखते हैं।

किसकी? आपकी ही न। और देखने वाले भी आप ही होते हैं। और परछाईं भी अपनी ही देखते हो। जैसे हम आईने में अपनी परछाईं देख रहे हैं, तो आईना तो मुर्दा है, लेकिन आईना शक खुद करता है। अगर अच्छा आईना हो तो आप प्रसन्न लौटते हो परछाईं देख कर। उसमें सुंदर अगर आप दिखाई पड़ते हों। और अगर कुरूप दिखाई पड़ते हों तो नाराज लौटते होंगे। और आईने को बेचारे को कुछ पता ही नहीं। न आपको खूबसूरत बनाने की फिकर है, न आपको कुरूप बनाने की फिकर है। लेकिन आईना अगर सुंदर दिखा देता है आपको, और इतना सुंदर कोई भी नहीं है जितने आईने बता रहे हैं। वह तो आईना दुकानदार बना रहा है। और जिसमें आप सुंदर दिखाई पड़ते हैं, वह बेच रहा है। और आप बड़े देख कर प्रसन्न होते हो। कौन प्रसन्न होता है? किसको देख कर प्रसन्न होते हैं? और आईना तो मुर्दा है। दूसरों की आंखें एक जीवित आईना है, जिसमें हम अपनी परछाईं देखते हैं।

चार आदमी आपको कह देते हैं, आप बड़े अच्छे आदमी हैं, आप फुले हुए लौटते हो। किसी के अच्छे कह देने से क्या हो गया। एक परछाईं है। और चार आदमियों ने कह दिया कि तुम बिल्कुल गंवार हो, बुद्धू हो, बुरे हो, आप दुखी लौटते और रात भर सो नहीं पाते, करवट बदलते हो, परेशानी मालूम होती है। क्या हो गया चार आदमियों के कहने से? परछाईं है। सुखद न बनी, जो हमने उनकी आंख में देखना चाहा था वह न दिखा। मुश्किल में पड़ गए। इसको मैं कह रहा हूं, यह जो कह रहा हूं कि हम अपनी परछाईं में जी रहे हैं पूरे वक्त। देख रहे हैं कौन क्या कहता है, कौन क्या सोचता है, किसको हम कैसे दिखाई पड़ते हैं। और जो आदमी इस तरह परछाईं में जीएगा, वह आदमी सत्य की खोज में नहीं जा सकता। क्योंकि सत्य वहां हैं जहां हम परछाईं से हटेंगे और पीछे जाएंगे। परछाईं छोड़ेंगे, फिकर छोड़ेंगे परछाईं की।

अब संन्यासी को हम कहते हैं आमतौर से कि संन्यासी वह है जो समाज छोड़ कर चला गया, लेकिन संन्यासी भी पूरे वक्त समाज में परछाईं देख रहा अपनी, तो छोड़ कर गया कहां।

एक साधु अभी मुझे, मुंह पर पट्टी बांधे हुए, मैंने कहा, इसे क्यों नहीं छोड़ देते, इसमें क्या अर्थ है? उन्होंने कहाः छोड़ तो आज दूं, लेकिन कल कोई साधु नहीं मानेगा। तो मैंने कहा, साधु मनवाने का आग्रह क्या

है? साधु होने का आग्रह होना चाहिए। मनवाने का क्या आग्रह? मनवाना दूसरे से, होना खुद है। लेकिन मनवाए बिना मजा नहीं है, क्योंकि वह परछाईं नहीं बनेगी फिर, वे लोग कहेंगे कि अरे, यह कुछ भी नहीं आदमी। तो इसको कह रहा हूं परछाईं। और आत्मा-वात्मा की तो बात ही मत करिए। क्योंकि ये शब्द हमने सीख लिए हैं। और बड़े खतरनाक हैं। शब्द भर हमारे हाथ में अच्छे-अच्छे हैं। और बातचीत और व्याख्या और विश्लेषण भी बहुत अच्छे हैं। और जहां हम रहते हैं वहां इन शब्दों का कोई संबंध नहीं है। जहां हम रहते हैं वह मन से ऊपर तल कभी जाता नहीं। और बातें हमारी आत्मा से नीचे कभी नहीं उतरती।

इसलिए हमारी बातों में और हमारे जीने में कहीं कोई तालमेल नहीं है। रहते हैं मन के तल पर, बातें करते हैं आत्मा के तल पर। दोनों में कोई तालमेल नहीं है। एक आदमी रहता है अंधेरे में, बातें प्रकाश की करता है। एक आदमी है बीमार, बातें स्वास्थ्य की करता है। और सच तो यह है कि बीमार ही अक्सर स्वास्थ्य की बातें करते हैं। स्वस्थ आदमी करता भी नहीं। क्योंकि क्या मतलब है। बीमार आदमी चौबीस घंटे बीमारी की वजह से पीड़ित होने के कारण स्वास्थ्य, स्वास्थ्य, स्वास्थ्य की बातें करता है। गरीब आदमी धन की बात करता है। और कोई आदमी धन की बात करे तो समझ लेना कि गरीब है। चाहे कितना ही धन हो उसके पास। धनी आदमी क्यों धन की बात करेगा। जो हमारे पास नहीं होता उसकी हम बात करते हैं। और जो हमारे पास होता है उसको हम छिपाते हैं।

तो जो हम हैं उसको तो हम छिपाए हुए हैं और जो हम नहीं हैं उसकी किताबों में से बातें पढ़ ली हैं कि आत्मा है और आत्मा की परछाईं नहीं और आत्मा का यह नहीं। वह आत्मा है कहां, उससे मतलब क्या है आपका? या किसी का भी? मतलब तो इससे है जो है। और जो है वह बड़ा परछाईं वाला ही खेल है। बिल्कुल रिफ्लेक्शन का खेल चल रहा है। हमारे सुख-दुख बिल्कुल ही ऐसे हैं।

अब हिंदुस्तान में एक चपटी नाक की लड़की पैदा हो जाए, वह दुखी रहेगी जिंदगी भर। क्योंकि जो परछाईं बनेगी वह असुंदर की बनेगी हर आंख में। वही लड़की चीन में पैदा हो जाए, वह दुखी नहीं रहेगी। क्योंकि चपटी नाक सुंदर है। अब वह दुख काहे का है चपटी नाक का? तो वह चीन में भी होना चाहिए। तो चपटी नाक से कोई दुख नहीं है। और कल अगर हम भी तय कर लें कि चपटी नाक सुंदर है, और तय करने में कोई हर्जा नहीं, कोई कठिनाई नहीं। क्योंकि नाक का काम चपटी नाक भी कर देती है और लंबी नाक भी कर देती है। असली काम काम का है, वह जो काम हो रहा है भीतर। वह तो सिर्फ, जैसे कि मोटरगाड़ी के पीछे अगर समझो कि साइलेंसर लगा हुआ धुआं फेंकने का, वह चपटा है कि गोल है कि लंबा है। कोई मतलब नहीं, वह धुआं फेंकने का काम करता है। नाक केवल श्वास को ले जाने, लाने के लिए मार्ग से ज्यादा नहीं, पैसेज से ज्यादा नहीं है। पैसेज चपटी है कि लंबी है इससे कोई मतलब नहीं है। काम पूरा हो जाता है। तो चाहें तो चपटी नाक को सुंदर मान सकते हैं, चाहें तो लंबी नाक को। यह मान्यता है सिर्फ। और लंबे दिन तक मानते रहें तो आदमी भूल जाता है कि जो हम मान रहे हैं वह उसमें कोई मतलब है। मगर जहां ऐसी मान्यता है वहां रिफ्लेक्शन दूसरा बनता है। चपटी नाक, तो आदमी कुरूप हो गया। अब वह चौबीस घंटे नाक के लिए कांशस रहेगा। सब उपाय करेगा कि उसकी नाक पर आपका ध्यान न चला जाए, उसकी नाक पर। और क्या मतलब क्या है? समझ लो एक चपटी नाक का आदमी एक जंगल में है जहां कोई दूसरा आदमी नहीं है, क्या कभी वह अपनी चपटी नाक के लिए दुखी होगा? दुखी नहीं होगा। क्योंकि कोई प्रतिबिंब नहीं बनता, कोई परछाईं नहीं बनती। तो परछाईं दिक्कत देती है।

राहुल पहली दफा रूस गए। तो राहुल के हाथ बहुत खूबसूरत थे। बहुत मुलायम थे। जिन लोगों ने कभी कुछ काम नहीं किया उनके हाथ मुलायम और खूबसूरत हो जाएंगे, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। तो जो भी उनका हाथ देखता था, वही कहता था, बहुत बढ़िया, बिल्कुल स्त्रैण, स्त्रियों जैसा सुंदर, कोमल हाथ है। रूस गए, पहले आदमी ने जिसने स्टेशन पर स्वागत किया, उसने हाथ मिला कर खींच लिया। और उसने कहा कि आप अपना हाथ सम्हाल कर रखना, जिससे भी मिलाएंगे वही आपको नफरत करेगा। क्योंकि हमारे मुल्क में ऐसे हाथ को हम मुफ्तखोर का हाथ मानते हैं। जिसमें गट्टे नहीं हैं मजदूर के। आपने कभी कुछ किया नहीं, आप मुफ्तखोर हैं।

राहुल ने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई। और राहुल ने कहा कि फिर पूरे रूस में मैं हमेशा सचेत रहा कि किसी से हाथ मिलाऊं तो, बस... और जैसे ही हाथ मिलाया दूसरे आदमी की आंख से... बदला, वह फौरन समझा कि यह आदमी मुफ्तखोर है।

अब यह जो यह मामला है न, अभी हमको ख्याल में नहीं आया, सुंदर हाथ से हाथ मिलाने में अच्छा लगना चाहिए। लेकिन वह जो आंख में तस्वीर बनती है, अगर वह तय कर ले कि यह गलत है।

हम सब परछाईं में जी रहे हैं, बहुत-बहुत तरह की परछाईं। इस परछाईं से, इस परछाईं के लिए बात कर रहा हूं। परछाईं के लिए बात कर रहा हूं। मेरी तो पूरी चेष्टा यह है कि मेरी बात सोचनी चाहिए, गलत लगे फेंक देना चाहिए, ठीक लगे उपयोग कर लेना चाहिए। मेरा मतलब समझे आप?

प्रश्नः ऐसा है अगर मस्तिष्क कोई उथल-पुथल हो...

न-न, उथल-पुथल नहीं हुई है। आपका मस्तिष्क बड़ा ठोस है, मजबूत है। उथल-पुथल होती तो आप संदेह से भरे हुए आते। आप तो उत्तर से भरे हुए आए। उथल-पुथल नहीं हुई। उथल-पुथल बड़ी और चीज है। आप मेरी बात समझ रहे हैं न? आप तो उत्तर लेकर आए, उथल-पुथल कहां हुई है।

प्रश्नः नहीं, उधेड़बुन के बाद जो है अपना भी कुछ...

उधेड़बुन थोड़ी-बहुत भी हुई है?

प्रश्नः हां, हुई।

क्या उधेड़बुन हुई?

प्रश्नः तब उसके बाद मैंने सोचा कि अंधकार जो है क्या अनंत रह सकता है।

अभी आप जरा भी नहीं सोचे, सोचते तो उनमें से एक शब्द लेकर नहीं आते। सुनिए फिर उसको, थोड़ा समझने की कोशिश करिए। असल में किसी भी चीज का जिसका अस्तित्व है, वह सदा सीमित होगी। अस्तित्व सीमित ही होगा। अस्तित्व की सदा सीमा होगी। सिर्फ शून्य असीम हो सकता है, अनत्य, नॉन-एक्झिस्टेंस

असीम हो सकता है। हम जब कहते हैं, कोई चीज है, तो है उसकी सीमा बन जाती है। वह कहीं होगी, कभी होगी; वह किसी स्थान में होगी, किसी सीमा में होगी। उसका होना कहीं पूरा होता होगा और किसी चीज का न होना शुरू होता होगा। अस्तित्व सदा सीमित होगा।

इसलिए जो लोग कहते हैं, ईश्वर है, वे लोग ईश्वर को सीमित बना देते हैं। इसलिए जो जानते हैं वे कहते हैं, ईश्वर न तो है और न न है। उसको सीमा के बाहर डालने के लिए जरूरी हो जाता है कि "न है" भी उसमें जोड़ दिया जाए।

समझ लें इस कमरे में, अगर यह कमरा है, तो इसकी दीवालें होंगी, नहीं तो यह कमरा नहीं हो सकता। अगर यह कमरा नहीं है, तब तो दीवालों का कोई सवाल नहीं है। तो कमरे का होना तो हमेशा सीमित होगा, न होना ही असीम हो सकता है। अब वह जो मैं कहता हूं, अंधकार असीम है, उसका कारण है कि मूलतः अंधकार नहीं है, वह नॉन-एक्झिस्टेंस है। और प्रकाश एक्झिस्टेंस है, प्रकाश है। प्रकाश की सत्ता है और अंधकार की असत्ता है। तो आप प्रकाश को जला सकते हैं और प्रकाश को बुझा सकते हैं। न तो आप अंधकार को जला सकते हैं और न बुझा सकते हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

समझने की कोशिश करिए पहले। आप प्रकाश को ला सकते हैं, ले जा सकते हैं, अंधकार को न आप ला सकते हैं, न ले जा सकते हैं। अगर इस कमरे में हम कहें कि मित्रो, जाओ थोड़ा अंधकार ले आओ। तो आप कहेंगे, हम असमर्थ हैं। लेकिन आपसे कहें कि जाओ थोड़ा प्रकाश ले आओ। आप कहेंगे, हम अभी ले आते हैं। यानी प्रकाश चूंकि सीमित है और आप उठा कर ले आते हैं। अंधकार को उठा कर कैसे लाइएगा? और दूसरी मजे की बात है कि प्रकाश है, इसलिए लाया भी जा सकता है, हटाया भी जा सकता है। अंधकार नहीं है, अंधकार का मतलब हैः न होना।

प्रश्नः काले पर्दे लगा देंगे, अंधकार हो जाएगा।

तो काले पर्दे आपको लगाने पड़ेंगे और प्रकाश को रोकना पड़ेगा। आप अंधकार के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं, सिर्फ प्रकाश को आने से रोक रहे हैं। अगर गौर करेंगे, तो जब भी आप कुछ करेंगे वह प्रकाश के साथ होगा। अंधकार के साथ आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं। आप एकदम ही इंपोटेंट हैं अंधकार के सामने। थोड़ा समझना इसको आप। आप जो भी कर सकते हैं, जब आप कहते हैं, हम पर्दे लटका देंगे, तो पर्दे लटका कर आप अंधकार नहीं ला रहे, पर्दे लटका कर सिर्फ प्रकाश आने से आप रोक रहे हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप दीया बुझा देंगे, तो आप अंधकार नहीं ला रहे। दीया बुझाने से सिर्फ प्रकाश बुझा रहे हैं आप। आप अंधकार के साथ कुछ भी नहीं कर सकते हैं, जो भी करेंगे प्रकाश के साथ करेंगे। क्योंकि प्रकाश है, और सीमित है। और प्रकाश के साथ कुछ किया जा सकता है। अंधकार के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

तो जो मैंने कहा, जिस अर्थ में, अगर बहुत गौर से देखें, तो परमात्मा के सामने आप बिल्कुल इंपोटेंट होने चाहिए कि आप कुछ भी न कर सकें। परमात्मा के समक्ष आप कुछ भी न कर सकें। अगर आप कुछ भी कर सकते हैं उसके समक्ष तो आप उससे ज्यादा बड़े हो गए हैं। यह तो प्रतीक की बात है। इसको पागलों की तरह नहीं पकड़ लेना चाहिए, नहीं तो शब्द बड़े मुश्किल में डाल देते हैं। जब मैंने रात को कहा, अगर आपने सुना होता, तो सिर्फ प्रतीक की बात है। जो आदमी कहता है परमात्मा प्रकाश है, वह भी एक प्रतीक का उपयोग कर रहा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

समझ तो लें पहले पूरी बात। समझ तो लें पूरी बात। इसलिए मैंने कहा कि समझना बहुत मुश्किल होगा। जब मैं बोल रहा हूं तब आपकी खोपड़ी में कुछ जोर से चलता रहेगा। तो फिर मेरी बात आप तक पहुंचेगी नहीं। और मैं यह कह नहीं रहा हूं कि मेरी बात से राजी हो जाएं, इसलिए डर कुछ है नहीं। मेरी बात गलत लगे उसे बिल्कुल कचरे में फेंक कर अपने घर चले गए। मैं न किसी को अनुयायी बनाता, न किसी संप्रदाय में दीक्षा देता, न कोई मेरा शिष्य है, न कोई मेरा किसी से संबंध है। मेरी बात मैंने कह दी, आपने सुन ली, बड़ी कृपा है, बात खत्म हो गई, इससे ज्यादा कोई आग्रह नहीं है। अगर गलत हो तो मेरी कोई जिद्द नहीं है कि उसे सही मानना ही चाहिए। यह जो मैंने, यह जो मैंने कल कहा, अगर उसको समझने की कोशिश करें, आप देखें, प्रकाश कभी होता है, कभी नहीं हो जाता है। अंधकार सदा है। उसके होने न होने का कोई सवाल नहीं। जब प्रकाश हो जाता है, तब आपको अंधकार दिखाई नहीं पड़ता। जब प्रकाश नहीं हो जाता, तब आपको अंधकार दिखाई पड़ने लगता है। आपने, दिन में सुबह सूरज निकलता है, और आप सोचते होंगे आकाश के तारे कहीं खो गए। वे कहीं खो नहीं जाते हैं, वे अपनी जगह हैं, सिर्फ सूरज के प्रकाश में आपको वे दिखाई नहीं पड़ते हैं। अब यह बड़े मजे की बात है। कुछ चीजें प्रकाश में दिखाई पड़ती हैं और कुछ चीजें प्रकाश में नहीं दिखाई पड़तीं। आकाश के तारे नहीं दिखाई पड़ते दिन में। फिर रात सूरज ढल जाता है, फिर वे दिखाई पड़ने लगते हैं। सूरज यहां ढला और वहां वे दिखाई पड़ने शुरू हुए। वे वहीं थे। सारा आकाश भरा था उन्हीं से। सूरज की रोशनी ने आपकी आंख को ढंक लिया, वे नहीं दिखाई पड़ते हैं।

रोशनी एक झलक है, अंधकार एक स्थायित्व है। और जब मैं यह कह रहा हूं, तो मैं कुछ प्रकाश के खिलाफ कुछ भी नहीं कह रहा। यह आप भूल कर मत समझ लेना कि मैं कोई प्रकाश के खिलाफ कुछ कह रहा हूं। और जब मैं यह कह रहा हूं तो मैं उन लोगों के खिलाफ भी कुछ नहीं कह रहा जो प्रकाश को परमात्मा कहते हैं। जब मैं यह कह रहा हूं तो मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि हम परमात्मा को समझने जब जाते हैं, तो सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं है कि हम कुछ प्रतीकों का उपयोग करें। प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। और प्रतीकों का उपयोग का मतलब होता है कि हम विशिष्ट निर्देश कर रहे हैं कि इस अर्थ में हम इस प्रतीक का उपयोग कर रहे हैं। चूंकि मैं परमात्मा को ऐसा कहना चाहता हूं जो न कभी जाता है, न कभी आता है, जो सदा है। कभी छिप जाता है, कभी प्रकट हो जाता है, दूसरी बात, लेकिन आता-जाता नहीं। तो इसे मैं अंधकार से ज्यादा अच्छी तरह से कह सकता हूं, बजाय प्रकाश के। जब मैं यह कह रहा हूं कि परमात्मा असीम है, तो मेरा मतलब यह है कि परमात्मा शून्य है। क्योंकि जो भी चीज शून्य होगी, वही असीम हो सकती है। सिर्फ शून्य की कोई सीमा नहीं है। बाकी सब चीजों की सीमाएं हैं। तो परमात्मा असीम है अगर इसे कहना है तो यह कहना पड़ेगा, परमात्मा शून्य है। और शून्य को बताने के लिए प्रकाश सार्थक उतना नहीं है जितना अंधकार सार्थक है।

जब मैं यह कह रहा हूं कि परमात्मा परिपूर्ण शांति है। तो मैं यह कह रहा हूं कि प्रकाश एक तनाव है। प्रकाश की प्रत्येक किरण आपके ऊपर एक तनाव पैदा करती है। इसलिए सुबह आप जगते हैं। प्रकाश के साथ सारा जगत जगता है। अंधकार हो गया, सारा जगत सो जाता है। अंधकार एक गहरी निद्रा में विश्राम है। प्रकाश एक गहरे जीवन में सतत हलचल है। प्रकाश एक हलचल है, एक मूवमेंट है। अंधकार नो-मूवमेंट है, अगति है, निद्रा है, खो जाना है, विलीन हो जाना है। परमात्मा को समझना हो तो परमात्मा एक हलचल कम है, एक अगति, एक विश्राम ज्यादा है। यह सिर्फ प्रतीक की बात है। किसी को दिक्कत होती, वह न कहे अंधकार, उससे कोई झगड़ा नहीं है। यह सिर्फ समझने की बात कि परमात्मा की तरफ जो हम इशारे डाल रहे हैं वे हम क्या इशारे डाल रहे हैं। फिर मैं कहता हूं कि जीवन आज है, कल नहीं था। आप आज हैं, कल नहीं थे, कल नहीं होंगे। पृथ्वी पर जीवन है। अनंत-अनंत तारा, उपग्रह हैं, उन पर कोई जीवन नहीं है। इस पृथ्वी पर भी कोई दस लाख, बीस लाख वर्ष पहले जीवन नहीं था। कल यह हो सकता है पृथ्वी फिर सूख जाए, फिर जीवन न हो। आज अनंत-अनंत ताराओं पर, उपग्रहों पर कोई जीवन नहीं है। जीवन एक झलक है। लेकिन जीवन का न होना एक शाश्वत क्रम है। उसमें कभी जीवन झलकता है, फिर खो जाता है। वह जिसमें खो जाता है वह ज्यादा मूल्यवान है। जिससे आता है वह ज्यादा मूल्यवान है।

एक सागर है उसमें एक लहर उठी। लहर नहीं थी तब भी सागर था। लहर नहीं रह जाएगी तब भी सागर होगा। लहर के होने या न होने से सागर के होने या न होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर कोई आदमी यह कहे कि लहर सागर है तो गलत नहीं कहता है। कोई आदमी यह कहे, लहर सागर है, तो गलत नहीं कहता है। लेकिन बहुत गहरे में सत्य भी नहीं कहता है। इससे उलटा सत्य है, सागर लहर है। क्योंकि लहर मिट जाए, तो भी सागर है। सागर लहर बनता है, नहीं भी बनता है। परमात्मा जीवन की तरह प्रकट होता है, नहीं भी होता है। परमात्मा प्रकाश की तरह आविर्भूत होता है, नहीं भी होता है। लेकिन वह जो न होना है वह बहुत लंबा क्रम है। उसमें होना कभी झलकता है और खो जाता है। यह जो मैंने कहा, यह जो मैंने कहा, यह न होना और होना एक ही चीज के दो पहलू हैं। लेकिन इन दोनों पहलुओं में गहरा और ज्यादा फाउंडेशनल न होना है। क्योंकि होना तो तो थोड़ी देर को दिखाई पड़ता है, न होना अनंत मालूम पड़ता है।

फिर मैंने जो यह कहा कि जीवन अंधेरे में है। उसका मेरा मतलब आप नहीं समझ पाए, क्योंकि असल में प्रतीकों को समझना और पकड़ना थोड़ा मुश्किल होता है। और तब और मुश्किल हो जाता है जब हमारी कोई बंधी हुई धारणाएं हैं। तब बहुत मुश्किल हो जाता है। असल में जीवन अंधेरे में है, इसका मतलब क्या है? इसका मतलब केवल इतना कि जीवन की सारी जड़ें मिस्ट्री में है, रहस्य में है, जहां एकदम अंधकार है, जहां कुछ भी प्रकाश नहीं है। इसका मतलब यह नहीं मैंने कह दिया कि सूरज की रोशनी में जीवन नहीं है। सूरज की रोशनी में जीवन है। उससे जीवन प्रकट हो रहा है। फूलों में, पत्तों में, हम में, सब सूरज की रोशनी से हो रहा है। लेकिन सूरज की रोशनी से क्यों हो रहा है यह जीवन प्रकट, यह जड़ बिल्कुल अंधेरे में है। समझे कि नहीं?

अंधेरे का मतलब हैः दि मिस्टीरियस। वह जो रहस्यपूर्ण है, जहां सब खोया है, जहां कुछ साफ नहीं है, जहां सब धुंधला होता चला गया। प्रकाश में सब साफ है, अंधेरे में सब खोया है।

परमात्मा सबसे बड़ी मिस्ट्री है, सबसे बड़ा रहस्य है। निश्चित ही वह रहस्य बिल्कुल अंधेरे में है। उदाहरण के लिए जो मैंने कहा कि वृक्ष की जड़ें वे नीचे अंधेरे में काम कर रही हैं।

आप खाना खाते हैं, खाना तो आप रोशनी में खाते हैं। खाना आप खाते हैं, लेकिन खाना किसने पचाया है यह आपको पता भी नहीं है। और खाना कौन पचा रहा है भीतर यह भी पता नहीं। वह सब अंधकार में चुपचाप हो रहा है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक आदमी के पेट में जितना काम हो रहा है, अगर उतना काम हमें फैक्ट्री में लेना पड़े--यानी रोटी को खून बनाने का--इतनी बड़ी फैक्ट्री बनानी पड़ेगी कि कई वर्गमील की जगह घेरे, और कई हजार लोग काम करें। और अभी भी हम पूरी तरह नहीं जानते कि रोटी खून कैसे बने। नहीं तो मामला खत्म हो जाए भोजन का। अभी भी हम जानते नहीं कि मामला क्या है, यह होता कैसे है। रोटी को खून में कनवर्ट करना--एक पौधा है, वह मिट्टी खाता है और फूल बना देता है। मिट्टी कैसे फूल में कनवर्ट होती, कहां कनवर्ट होती है, अभी रहस्य है। और किसी अंधकार में हो रहा है जिसका कुछ पता नहीं है। पौधे को काट-पीट डालो, कुछ पता नहीं चलता कि मिट्टी कब फूल बन जाती, किस क्षण पर, वह कनवर्सन होता है। आप कब खाना खाते हैं वह कब खून-मांस-मज्जा बन जाता। और कितना अदभुत है मामला। एक ही रोटी आप खाते हैं, उसी रोटी में से कुछ हिस्सा खून बनता है, कुछ हिस्सा हड्डी बनता है, कुछ हिस्सा बाल बनता है, कुछ हिस्सा आंख बनता है, कुछ हिस्सा चमड़ा बनता है, कुछ हिस्सा मज्जा बनता है। एक ही रोटी से वह सब बनता है। वह कहां हो रहा है? वह किस लोक में हो रहा है? वह किसी बहुत गहन अंधकार में चुपचाप हो रहा है। और बिल्कुल साइलेंटली हो रहा है।

और अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि जब से हमने उसे जानने की बहुत कोशिश की तो डिस्टर्बेंस पैदा हुए। अभी वैज्ञानिक कहते हैं। जितना हम उसे जानने की कोशिश करते हैं उतना आदमी डिस्टर्ब हो रहा है, उतनी परेशानी हो रही है, उतनी जड़ें उखड़ रहीं और मुश्किल होती चली जा रही।

तो जो मैंने कहा उसको समझने की कोशिश करना, मैं कोई प्रकाश का विरोधी नहीं हूं। जो अंधकार का तक विरोधी नहीं है, वह प्रकाश का विरोधी कैसे होगा? और जो परमात्मा को अंधकार तक कहने को राजी है, उसके उसमें प्रकाश का होना समाविष्ट है। और जो यह कहने को राजी है कि अंधकार से जीवन निकलता है, वह यह थोड़ी ही कहेगा कि प्रकाश से जीवन नहीं निकलता। प्रकाश से तो निकलता ही है। वह मेरी बात समझने की कोशिश करना। और समझने की कोशिश आसान होगी, अगर मानने और न मानने की जल्दी न की। दोनों की जल्दी की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि मेरा आग्रह ही नहीं है। न तो इसकी फिकर करना कि यह बात माननी है कि नहीं माननी है। सिर्फ सोच लेना, एक निवेदन है, सोच लेना, लगा ठीक, ठीक, नहीं लगा, मुक्त हुए, उससे झंझट छूटी। वह आदमी गलत था, बात खतम हो गई। सोचने भर का आग्रह है, इससे ज्यादा नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह आदमी से नहीं उत्तर हो पाएगा। यह तो परमात्मा कभी मिल जाए, तो पूछना कि जीवन को प्रकट होने की क्यों जरूरत पड़ी? हालांकि उससे भी आप राजी न हो सकोगे। वहां बहुत मुश्किल पड़ेगा राजी होना।

प्रश्नः मेरा यह ख्याल है...

नहीं, आपका ख्याल क्या है...

प्रश्नः यह तो आदान-प्रदान है।

न-न, आदान-प्रदान बिल्कुल नहीं है। या तो मैं लेने को राजी हूं या देने को। आदान-प्रदान होता ही नहीं। मेरी आप बात समझ रहे हैं न? मेरी बात समझ लीजिए, मैं तो आदान के लिए राजी हूं। अगर आप देना चाहते हैं, बिल्कुल राजी हूं। फिर मैं मौन बैठ कर समझने की कोशिश करूं, समझाने की फिकर छोड़ दूं। मेरी बात समझे न आप? एक काम ही मुझे करने दें। और या फिर एक काम आप करें। दोनों काम एक साथ चले आदान-प्रदान, तो इधर से... मेरी आप...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, इसलिए तो दुनिया की यह हालत है। इसलिए यह हालत है। यानी आदान-प्रदान अगर एक साथ चलते हैं, तो उसका परिणाम यह होता है, एक गाड़ी वहां से इधर को चलती है, एक गाड़ी यहां से वहां को चलती है। कहीं क्रासिंग होता है, लेकिन मिलना नहीं होता। हो ही नहीं सकता। मैं तो राजी हमेशा। मुझे इसमें कोई सुख ही नहीं है कि मैं आपको समझाऊं। मुझे समझने में भी इससे भी ज्यादा सुख है। वह तो कभी आ जाएं, बैठ जाएं, घंटे भर मैं सुनूंगा आपकी बात, समझूंगा। लेकिन फिर उस वक्त मैं नहीं समझाऊंगा। फिर उसकी कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्नः नहीं, पर उसके पश्चात अपना विवेचन।

कोई जरूरत नहीं, वह तो आपके जीवन के लिए। विवेचन की कोई जरूरत नहीं है। मैंने आपकी बात सुन ली, मेरे काम की होगी पकड़ लूंगा, नहीं होगी नहीं पकड़ लूंगा। बात खत्म हो जाती। विवेचन का कहां सवाल है। विवेचन तो कई जन्मों के बाद आखिर में भगवान के सामने करना चाहिए। उसके पहले कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः इसका मतलब वह वस्तु कहीं और है उसे जिसको कि हम भगवान कहें?

वह तो सुबह आप थे?

प्रश्नः नहीं, मैं सुबह नहीं आ सका।

सुबह नहीं थे आप। सुबह की टॉक जरा रिकार्ड है, पूरी सुन लें। अभी कोई भी मित्र सुना देगा। इस बाबत ही पूरी बात की थी। पूरी तीन दिन की बात सुन लें। फिर कुछ भी ख्याल मुझे बताने का हो, जबलपुर आ जाएं, दो-चार दिन आपकी सुनूंगा बैठ कर। और मैं आपसे कहता हूं कि मैं जितना बोल कर आपको नहीं समझा सकता, उतना आपकी सुन कर मैं आपको समझा सकूंगा। आपका पूरा निकल जाए तो बड़ी आसानी होती है। बहुत आसानी होती है।

प्रश्नः इसलिए अनंत जोत है, यह कभी खतम नहीं हुआ आज तक।

तब फिर बड़ा मुश्किल है।

प्रश्नः निकलता रहा है, निकलता रहेगा।

फिर निकलने दीजिए, कोई हर्जा नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अगर आप शरीर के स्वास्थ्य के लिए सीखना चाहते हैं तो अदभुत हैं। उनका उपयोग बड़ा कीमत का है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए अदभुत है। लेकिन शरीर के स्वास्थ्य का कोई सीधे अध्यात्म से वास्ता नहीं, सिवाय इतना कि स्वस्थ शरीर अध्यात्म की यात्रा में आसानी से जाता है। अस्वस्थ शरीर को थोड़ी बाधा पड़ती है। और कुछ जो और दूसरी प्रक्रियाएं हैं वे मानसिक सिद्धियों की हैं। पर उनका भी अध्यात्म से कोई संबंध नहीं है। अगर आपको टेलीपैथी साधनी है, हिप्नोटिज्म साधना है, और कुछ साधना है, तो भी वह उपयोगी है, लेकिन उनका भी अध्यात्म से कोई संबंध नहीं है।

मौलिक अध्यात्म का तो जो मैं कह रहा हूं वही बात है। और वह सब कर लें तो भी आखिर में न करने पर उतरना पड़ेगा। इस अर्थ में फिजूल की बात है। इस अर्थ में। जैसे एक आदमी कालेज में पढ़ने जाता है, और मैं कहता हूं कि अध्यात्म के लिए कालेज में पढ़ना बिल्कुल फिजूल है। वह आदमी आकर कहे, तो कालेज में पढ़ना फिजूल है क्या? तो मैं उसको कहूंगा कि नहीं, कालेज में पढ़ने के दूसरे अर्थ हैं, और दूसरे उपयोग हैं। अगर तुम्हें डाक्टर बनना है तो कालेज में पढ़ो। लेकिन डाक्टर या इंजीनियर बनने से कोई अध्यात्म का वास्ता नहीं है। वह तुम बिना डाक्टर, इंजीनियर बने भी बन सकते हो। और डाक्टर और इंजीनियर बन कर भी नहीं बन सकते हो। उससे कोई वास्ता नहीं है।

कि जब मैं कहता हूं कि कोई भी विधि, कोई भी योग अध्यात्म के लिए व्यर्थ है। तो मैं यह नहीं कहता हूं कि योग व्यर्थ है। मैं यह कह रहा हूं कि अध्यात्म के लिए! वह कंडीशन ख्याल में रखनी चाहिए। नहीं तो मुश्किल हो जाती। हां, उसके दूसरे उपयोग हैं। उसके बहुत उपयोग हैं।

प्रश्नः हर जगह यही बताया गया कि अध्यात्म के मार्ग के लिए योग है।

हां-हां, बिल्कुल ही बताया गया है। बिल्कुल ही बताया गया। और उसकी गड़बड़ी हुई है। उसकी गड़बड़ी हुई है। जिस देश में सबसे ज्यादा योग की चर्चा है उस देश में अध्यात्म कहां है। और कितने आसन और कितने योगासन चलते हैं, और सब चलता है, लेकिन अध्यात्म कहां है।

प्रश्नः इस पर छाया-प्रवेश से वह हुआ और वह हुआ और वह हुआ।

इन सबका भी अध्यात्म से कोई संबंध नहीं है। जरा भी नहीं, जरा भी नहीं, बल्कि कई अर्थों में बाधक हैं। क्योंकि ये आपको दूसरी डायरेक्शन में ले जाती हैं। बाधक इसलिए हैं जैसे कि मैं जा रहा हूं मुझे सीधे उदयपुर के स्टेशन पहुंचना है, बीच में कई रास्ते निकलते हैं, जो बाजार में जाते हैं, कोई प्रदर्शनी में जाता है, कोई सिनेमा-गृह में जाता है। वे अलग-अलग चले जाते हैं। और जब मैं सिनेमा-गृह की तरफ जाता हूं, तब स्टेशन के मार्ग पर बाधा पड़ती है। क्योंकि सिनेमा अटकाएगा। अगर मुझे सीधे जाना है तो सिनेमा के सामने से नमस्कार करते हुए निकलना चाहिए कि मैं अभी स्टेशन जा रहा हूं, मैं नहीं आता कहीं। हालांकि ये सब रास्ते में पड़ते हैं और बगल में कट जाते हैं।

अब जैसे एक राममूर्ति जैसा आदमी है, पहलवान है। जितने राममूर्ति के शरीर में जो तत्व हैं वे हम सबके शरीर में हैं। और हममें से कोई भी राममूर्ति बनना चाहे तो प्रयास करने से बन सकता है। कोई बाधा नहीं है। लेकिन राममूर्ति इतनी श्रम करके जब शरीर को बनाता है तो हम चकित हो जाते हैं, चमत्कृत हो जाते हैं। कार निकल जाती है छाती पर से, उसे पता न चले। पत्थर तोड़ो उसकी छाती पर, उसको चोट न आए। पीछे से कार को पकड़ ले हाथ से तो कार भनभनाती रहे लेकिन आगे न बढ़ सके। यह हम सबके शरीर में छिपी हुई ताकतें हैं। लेकिन इन पर काम करने से कोई अध्यात्म का संबंध नहीं।

कोई कहे कि राममूर्ति बनना पड़ेगा, तब अध्यात्म में जा सकोगे, तो बड़ा मुश्किल मामला है। राममूर्ति से कोई लेना-देना नहीं। यानी इसका मतलब हुआ कि शरीर है। शरीर में दो रास्ते हैं। एक शरीर को पार करके मन की तरफ जाता है और एक शरीर में ही भीतर जाता है, मन में नहीं जाता। इसको समझ लेना। ऐसा हम समझ लें कि यह शरीर है, यह मन है, यह आत्मा है, तो एक रास्ता तो शरीर से मन की तरफ जाता है, मन से आत्मा की तरफ जाता है। एक रास्ता शरीर से और शरीर की गहरी मिस्ट्री में जाता है। एक रास्ता मन से और मन की गहरी मिस्ट्री में जाता है। एक रास्ता आत्मा से और आत्मा की गहरी मिस्ट्री में जाता है। यानी वर्टिकल रास्ते हैं और हॉरिजंटल रास्ते हैं। तो राममूर्ति हॉरिजंटल जा रहा शरीर में। तो वह शरीर के सारे रहस्यों को खोज ला सकता है। और हो सकता है आगे आने वाले खोजी राममूर्ति को पीछे कर दें, और भी खोज लाएं। शरीर खुद एक अनंतता है। उसमें भी बड़े रहस्य भरे हैं, जो उतना हमें पता भी न हो अभी। बिल्कुल पता न हो। तो हठयोग शरीर में घुस जाता है सीधा। तो जन्मों-जन्मों तक आप जा सकते हैं। और अदभुत रहस्य अनुभव करेंगे, अदभुत शक्तियां पा लेंगे, लेकिन अध्यात्म से कोई लेना-देना नहीं है। ये शरीर के ही रहस्य हैं। लंबी उम्र हो जाएगी, लोहकाया हो जाएगी, क्या हो जाए, वह सब हो सकता है, उससे कोई लेना-देना नहीं। वर्षों तक मृत्यु भी टाली जा सकती है, वह सब हो सकता है। इसका कोई प्रयोजन नहीं है। जहां तक ऊपर प्रवेश के लिए तो सामान्य स्वस्थ शरीर पर्याप्त है, उसमें इतने गहरे जाने की कोई जरूरत नहीं है।

यानी वह मामला ऐसे ही जैसे एक कार आदमी चलाता, आप कार चलाते हैं, आप सिर्फ दिन भर चला लेते हैं और एक्सीलेटर दबा लेते हैं और गाड़ी मोड़ लेते हैं, बस काम हो गया। कार के भीतर घुसने की आपको कभी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी, कैसे काम करती, क्या नहीं करती। वह एक मेकेनिक है, वह उस दुनिया में जाता है। आप बिना जाने कार चला लेते हैं। बस आपके लिए इतना काफी है, पर्याप्त है, कार को चला लेने के लिए। मेकेनिक के लिए इतना काफी नहीं है। हो सकता है अधिक कार चलाने वालों ने भीतर झांक कर भी न देखा हो कि कार में होता क्या है। या आप उनसे पूछें कि कार कैसे चल जाती है, तो वे न बता सकें। वे कहे, हम इतना जानते हैं कि हम पैर दबाते हैं व्हील चलाते हैं, हमें कुछ पता नहीं।

फिर जो आदमी शरीर से मन पर जाता है तो मन में भी हॉरिजंटल रास्ता है। अगर मन में हॉरिजंटल चले जाएं, तो सिद्धियां हैं, रिद्धियां हैं, उन सबकी दुनिया है। चमत्कार है, वह सारी दुनिया है। क्या नहीं किया जा सकता वह सब होता हुआ वहां मालूम पड़ेगा। लेकिन वह फिर आप अंदर घुस गए मन में। ऊपर जाने के लिए तो मन शांत हो, इतना काफी है। इससे ज्यादा भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं।

और वह तीसरा आत्मा का है। अब अगर आत्मा में भीतर प्रविष्ट हो जाएं, तो फिर दूसरी बातें मिलना शुरू हो जाएंगी। जो लोग आत्मा में ऐसे हॉरिजंटल प्रविष्ट हो गए, उनको दूसरी बातें मिलीं। लेकिन जो आत्मा में और सीधे गए उनको परमात्मा मिल गया। इसलिए जो लोग, जैसे मैं कहूं, जैसे जैन हैं, वे आत्मा में सीधे चले गए। इसलिए परमात्मा उनकी धारणा में नहीं आ सका। उसका कुल कारण इतना है कि वे ऐसा वर्टिकल नहीं गए, आत्मा के और ऊपर नहीं गए, आत्मा के भीतर चले गए। तो वहां कहीं परमात्मा नहीं मिला। उन्होंने कहा, परमात्मा नहीं है।

अभी पश्चिम का मनोविज्ञान है वह मन में सीधा चला गया। वह कहता है, आत्मा नहीं है। पश्चिम की फिजियोलॉजी है, मेडिकल साइंस है, वह शरीर में सीधी चली गई, वह कहती है, कहां का आत्मा, कहां का मन, कुछ नहीं है; सिर्फ शरीर है, सब शरीर का मेकेनिज्म है। मेरा मतलब समझे न आप? तो यह सारी मिस्ट्री है, इसलिए सारी दिक्कत है। और मैं जो बात कर रहा हूं वह सिर्फ उतनी बात कर रहा हूं जिसमें वर्टिकल आप सीधे चले जाएं। जहां से आप हैं वहां से वहां चले जाएं जहां प्रभु है। इसके बीच में जो और रास्ते कटते हैं उनकी मैं बात ही नहीं कर रहा। लेकिन वे सब रास्ते हैं। उन पर जाया जा सकता है। जाने की साइंस है। इसलिए पतंजलि व्यर्थ नहीं हैं। पश्चिम का विज्ञान व्यर्थ नहीं, मनोविज्ञान व्यर्थ नहीं, सब सार्थक हैं। लेकिन सीधे जाने वाले के लिए सब उपद्रव है। क्योंकि वह आड़े गया, कि आड़े भी जाने में इतना लंबा है कि शायद कभी न लौटे। या जन्म-जन्म लग जाएं और न लौटे। तो नाक सीधी रख कर जाने की बात। इसलिए बिल्कुल मुद्दे की बात कर रहा हूं जिसमें नाक जरा भी इधर-उधर न हो जाए। वह कोई व्यर्थ है ऐसा नहीं कह रहा हूं। इस दृष्टि से व्यर्थ है। सिनेमा की अपनी सार्थकता है, अस्पताल की अपनी सार्थकता है। लेकिन जिसको स्टेशन जाना, वह सिनेमा को भी छोड़ता, अस्पताल को भी छोड़ता, स्टेशन की तरफ सीधा भागता है। इतना ही साधना है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक तो यह है, जब तक संन्यास लेने के लिए किसी से सलाह लेने का ख्याल उठे तब तक संन्यास मत लेना। जब वह ऐसी भावदशा बन जाए कि सारी दुनिया कहे कि मत लो और फिर भी लेना पड़े, तभी लेना, उसके पहले नहीं। नहीं तो बहुत तकलीफ में पड़ोगी। तकलीफ का मतलब यह क्योंकि जब हमारा मन किसी से पूछता है तो उसका मतलब है कि हम खुद बहुत साफ नहीं हैं। तब तक हम पूछते हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। समझा मैं। मैं यह कह रहा हूं कि जब तक हमारे मन में कोई खुद स्थिति साफ नहीं होती है तभी तक गाइडेंस का ख्याल होता है। गाइडेंस टू आस्क फॉर गाइडेंस, मीन्स टू बी कन्फ्यूज्ड। मेरा मतलब समझी तू? गाइडेंस के लिए जब भी हम कहीं पूछने जाते हैं, तो उसका मतलब हम कन्फ्यूज्ड हैं। और इसलिए

दो तरह के संन्यासी हैं इस दुनिया में। एक वे जिन्होंने किसी से मार्गदर्शन लेकर संन्यास ले लिया। और एक वे जो संन्यासी हैं। जो संन्यासी हैं उन्होंने कभी किसी से पूछा ही नहीं। उनका तो मजा और है।

तो जिस दिन तुझे ऐसा लगे कि एक बात खत्म हो गई, संन्यासी होना ही मेरा आनंद है। ठीक बात, फिर तुम किसी से पूछना ही मत। किसी से भी मत पूछना। किसी से पूछा उसका मतलब यह है कि तू अभी भी कन्फ्यूज्ड है कि लेना कि नहीं लेना। और डिसीजन लेने में किसी का सहारा लेना है। फिर तो ये दोनों उत्तर मिलेंगे।

प्रश्नः दिस इ.ज ए आई वांट टू गो, दैट्स वाय आई कन्फ्यूज्ड, दैट आई कैन प्रोटेक्ट, आई डोंट नो दि वर्ल्ड। आई डोंट...

हां-हां, इसीलिए तो। इसलिए तुझे दोनों एडवाइज देने वाले मिलेंगे। कोई कहेगा कि मत लो, कोई कहेगा कि लो। फिर भी तुझे आखिर में खुद डिसाइड करने पड़ेगा।

प्रश्नः आई डोंट नो। इट इ.ज पॉसिबल दैन आफ्टर टेकिंग संन्यास आई कैन कंटीन्यु वर्क, बट आई कैन नॉट...

और दूसरी बात यह ख्याल रखना कि जैसे तुझे यह दिखाई पड़ता है कि संसारी लोग हैं, तो वे तुझे दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही संन्यासियों को भी देख लेना कि उनकी क्या हालत है। आमतौर से आदमी सोचता है कि भई शादी करने से कोई खास सुखी तो कोई दिखाई पड़ता नहीं है, तो क्यों शादी करें।

प्रश्नः बट आई डोंट नो, अनहैप्पी बेसिक माई लाइफ।

समझ गया, मैं तेरी बात समझ गया। इसी तरह यह भी सोच लेना चाहिए कि संन्यास लेने से कौन-कौन आनंदित दिखाई पड़ता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। ये सब बातें तो ठीक हैं, इन सब बातों से क्या मतलब है तेरे प्रॉब्लम का।

प्रश्नः सपोजिंग, दे आर नॉट, दे डोंट फील दि हैप्पीनेस इन माई लाइफ।

हां, तो फिर तू कहीं भी देख सकती, फिर क्या सवाल है लेने-देने का। फिर तो जहां भी हो देखो। जब यह मामला है कि हमारे देखने का सवाल है तो फिर यह पूछना ही क्यों कि इस कमरे में बैठे हैं कि उस कमरे में। फिर तो जहां बैठ गए वहीं बैठे रहें और देखते रहें। फिर तो नर्स रहे तो भी देख हैप्पीनेस, संन्यासी हो जाओ तो देखो हैप्पीनेस। फिर तो कोई झगड़ा ही नहीं है। अगर देखने का ही मामला है, तो झगड़ा ही नहीं है। लेकिन

इतना मामला नहीं है। देखने का ही मामला नहीं है, दिखनी चाहिए, देखोगी कैसे। देखोगी कैसे, देखोगी तो गड़बड़ रहेगा मामला। फिर झंझट रहेगी। फिर लगेगा उस कमरे में चले जाएं, शायद वहां ज्यादा दिखाई पड़ती हो, उस कमरे में चले जाएं। यह सवाल नहीं है। और दूसरा मामला यह है कि तू कहती है कि हम फ्रस्ट्रेटेड नहीं हैं, यह तो अच्छा है। यह बहुत अच्छा है। और तू यह कहती है कि हमें इसकी भी फिकर नहीं है कि कौन क्या कहता है, यह भी बहुत अच्छा है।

तब किसी तरह के गाइडेंस की फिकर छोड़ दो। और जैसा जीने में मौज आए जीओ। एक ही बात ध्यान रखना कि संसारी से संन्यासी होना बहुत आसान है। फिर संन्यासी से संसारी होना बहुत मुश्किल पड़ जाता है। क्योंकि अभी अगर तू संन्यासी होना चाहेगी तो सब कहेंगे बहुत बढ़िया है, शोरगुल मचाएंगे, ताली बजाएंगे, आशीर्वाद देंगे। स्वामी मिल जाएंगे, सब मिल जाएंगे। फिर अगर तूने कहा हम वापस लौटते हैं, तो सब द्वार बंद हो जाएंगे। सब तरह का निंदा, अपमान और गाली-गलौज होगी। तो यह जो समाज है, बहुत चालाक है। यह जाने का तो छोड़ता है रास्ता, लौटने का नहीं छोड़ता।

तो मेरा कहनाः हमेशा वह चुनाव करना चाहिए जो आगे भी स्वतंत्र रखे, बांध न दे। नहीं तो फिर तकलीफ शुरू होती है, अभी तेरे को नर्स होने में कोई नहीं बांध रहा है, तू मुक्त है ज्यादा। संन्यासी होकर तब मुक्त होगी। क्योंकि नर्स होना तू इसी वक्त छोड़ दे, दुनिया कुछ भी नहीं कहेगी। लेकिन कल अगर संन्यासी होना छोड़ा, तो बहुत मुसीबत में पड़ जाएगी। इसलिए मैं कहता हूं कि नर्स होना ज्यादा फ्रीडम की स्थिति है बजाय संन्यासी होने के। एक चमार होना भी ज्यादा स्वतंत्र स्थिति है बजाय एक मुनि होने के। क्योंकि चमारी कभी भी छोड़ सकते हैं, यह मुनि का धंधा कभी भी नहीं छोड़ सकते, यह मुश्किल मामला है।

प्रश्नः व्हीच पाथ इ.ज ए पाथ ऑफ एवोल्यूशन?

सब पाथ एवोल्यूशन के हैं। कोई पाथ ऐसा नहीं है जो एवोल्यूशन का न हो। एवोल्यूशन करना चाहिए, तो किसी भी पाथ से होती है। और इसलिए जिस पाथ पर ज्यादा से ज्यादा फ्रीडम हो, उस पर ही ज्यादा से ज्यादा एवोल्यूशन होती है। बांधना नहीं चाहिए। यानी संन्यास का मतलब भी क्या होता है। जब कोई मुझसे पूछता है कि संन्यास ले लें, तभी मुझे हैरानी होती है। संन्यास का मतलब होता है, ऐसा आदमी जो कोई नियम-वियम नहीं मानता, कुछ बंधन नहीं मानता। जो किसी की कोई फिकर नहीं करता, जिसको जो मौज में आता है करता है, संन्यास का यह मतलब होता है।

लेकिन जब वह कहता है कि संन्यास ले लें, तो वह यह कहता है कि हम उस फलाने तरह के बंधन में बंध जाएं, उस तरह की पर्टीकुलर बांडेज को स्वीकार कर लें। तो बड़े मजे की बात है, संन्यासी का तो मतलब है, फ्रीडम। संन्यासी का मतलब है, मौज से रहो, जो ठीक लगे करो। बंधो मत। समझी न? बंधो मत। बिना बंधे काम नहीं चलता। या तो कोई कहता है शादी करो, इसमें बंधो। या कोई कहता, शादी न करो तो संन्यास में बंध जाइए। लेकिन गैर-बंधे मत रहो। कहीं न कहीं बंधो। बीच में नहीं टिकने देंगे। और स्त्री को तो बिल्कुल नहीं टिकने देंगे। क्योंकि पूरी की पूरी समाज की व्यवस्था पुरुष की बनाई हुई है, स्त्री की दुश्मन है वह। पूरी व्यवस्था। वह कहती है, गुलाम बनो। या तो पत्नी बनो या साध्वी बनो। स्वतंत्र नहीं रहने देंगे।

और मेरा मतलब है, संन्यासी का मतलब होता है, स्वतंत्र रहना। स्वतंत्र रहो, जब तक नर्स रहना है नर्स रहो। तुम्हें कुछ और बनना है और बनो। लेकिन किसी से दीक्षा-वीक्षा मत लेना। वह सब नालायकी, वह गंवारी

है। किसी से क्या दीक्षा लेनी है। स्वतंत्रता की किसी से दीक्षा लेनी पड़ती है? परतंत्रता की लेनी पड़ती है। तो स्वतंत्र रहो, बस ठीक है। खोजो अपना आनंद, जहां तुम्हें मिले। और किसी से डरो मत। यही संन्यासी का मतलब होता है। किसी से डरो मत। अभी तुम संन्यास ले लोगी तो डरना पड़ेगा। जिनसे ले लोगी उनसे डरना पड़ेगा। जिस सोसाइटी के चक्कर में पड़ोगी उनसे डरना पड़ेगा। वे कहेंगे, ये खाओ, ये पीयो; इस वक्त सोओ, इस वक्त उठो; यहां जाओ, वहां मत जाओ। मुश्किल हो जाएगी। फिर तुम पाओगी कि बहुत मुसीबत हो गई, यह तो नर्स होने से ज्यादा बदतर हो गया।

एक बात ध्यान में रखो, हमारा जिस तरफ आनंद बढ़ता है वह करते रहो, करते रहो। जिस दिन तुम पूरी स्वतंत्र हो जाती हो, उस दिन तुम संन्यासिनी हो गई। किसी से लेना-देना थोड़े ही है। मेरा मतलब समझी न? नर्स रहते-रहते हो जा सकती हो। छोड़ कर भी हो सकती हो।

प्रश्नः नो, बट स्प्रिच्युअल नालेज।

अरे, स्प्रिच्युअल नालेज कौन रोक रहा है।

प्रश्नः मे... लिमिटेड।

सबकी लिमिटेड है। सबकी लिमिटेड है। संन्यासी की भी लिमिटेड है। तुम क्या समझती हो, संन्यासी को कोई फिकर नहीं? लेकिन उसको भी सुबह-शाम फिकर करनी पड़ रही है कहां से खाना मिलेगा, कहां ठहरना मिलेगा। तुम्हारा तो ज्यादा निश्चिंत है। मेरी अपनी मान्यता यह है कि जो आदमी छह घंटे, आठ घंटे मेहनत कर रहा है, उसके बाकी घंटे तो मुक्त हैं। संन्यासी चौबीस घंटे नौकर है। और निपट गंवारों का नौकर है। जिनमें कोई बुद्धि भी नहीं उनका भी। तुम तो छह घंटे दफ्तर से लौट आईं, तो मुक्त तो हो, फिर तुम्हें जो करना हो। नाचना हो नाचो, गाना हो गाओ, जो करना हो करो। फिर नहीं कर सकतीं। क्योंकि गंवार चारों तरफ से देख रहे हैं कि क्या कर रही हो। किससे बात कर रही, किससे मिल रही, कहां जा रही। और अगर गड़बड़ की, तो खाना बंद, इज्जत बंद। सब मुश्किल हो जाता।

कुल इतनी फिकर करो कि दो-चार घंटे, दो घंटे, दो-तीन घंटे कर लिया काम, उससे तुम्हारा खाना लायक निकल आता है, बाकी बीस घंटे तुम मुक्त हो। उस बीस घंटे की मुक्ति का जो भी तुम्हें करना हो करो। उपयोग करो। और नालेज से कौन रोकता है। नालेज तो सब तरफ गति है, खोजो। बंधो मत। संन्यासी होने का मतलब है, बंधो मत। तो मैं कहता हूं, संन्यासी हो जाओ। उसका मतलब ही सिर्फ इतना होता है कि बंधो मत। मुक्त रहो, बस ठीक है। और वे जो कहते हैं कि संन्यासी हो जाओ, उनका मतलब दूसरा है। उनका मतलब है कि बंधो, मुक्त मत रहो। हमसे बंधो, खास ढांचे में बंधो। बिल्कुल बुद्धूपन है। इसका कुछ मतलब नहीं है। मुक्त रहो, जिससे सीखना है सीखो। कोई हर्जा नहीं, जल्दी क्या, बंधने की इतनी जल्दी क्या।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, करो न।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कुछ नहीं, कुछ भी करो। मजे से मुक्त रह कर करो। और तुम्हें लगे कि संन्यासी होने में ज्यादा मुक्ति है, तो संन्यासी हो जाओ। मुझे कोई अड़चन नहीं किसी बात की। मुझे तो कोई आकर कोई स्त्री कहे कि मुझे वेश्या होने में ज्यादा स्वतंत्रता है। मैं तो कहूं, वह हो जाओ। तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारी खोज, तुम्हारी जहां जैसा, कोई तुम्हें बांधने वाला नहीं होना चाहिए। तुम अपनी मालिक हो, अपनी जिंदगी को बसो, जो तुम्हें लगे वह करो। मगर बंधना-वंधना कहीं भी नहीं। बंधना-वंधना कहीं भी नहीं। और यह गुरूडम से बचना। सब गुरु घूम रहे हैं इसी तलाश में। यह एक संन्यासिनी बैठी है होने वाली पहले से। फिर यह असली में हो गई है। इसने कहा, जब जाने दो।

प्रश्नः शैशव संन्यास तो अभी आ गया।
(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कर सकती हो बराबर। क्योंकि अभी पूरा ज्ञान तो नहीं है न। और कल ज्यादा ज्ञान होगा आज की बजाय। इसलिए लौटने का हमेशा उपाय रखना चाहिए। क्योंकि कल तुम ज्यादा ज्ञानवान होगी आज की बजाय। और आज से अगर तुम कल को बांधती हो तो तुम गलती में हो। जितना मैं आज जानता हूं कल और ज्यादा जानूंगा। और मैं आज कसम खाता हूं कि मैं पीछे नहीं लौटूंगा। और कल मैं जाना कि वह सब गड़बड़ था। फिर? इसलिए लौटना, नहीं लौटना सब स्वतंत्र रखो। कोई कहीं कोई बंधने की जरूरत नहीं। स्थान-विस्थान, देश की भी कोई जरूरत नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह सवाल ही नहीं है न। यह सवाल ही नहीं है। यह सब हो सकता है। आज तुम जिस रास्ते पर जाती हो कल पा सकती हो कि वह आगे जाता ही नहीं। फिर तुम क्या करोगी? फिर लौटोगी नहीं? कसम खाकर उसी पर खड़ी रहोगी?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कांप्लिकेशन से जो डरता है, जो कांप्लिकेशन से डरता है वह जिंदगी से डरता है। उसको सुसाइड करने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कांप्लिकेशंस से जो डरता है वह जिंदगी से ही डरता है। उसको कुछ सत्य कभी नहीं मिलेगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिल्कुल कांप्लिकेशंस बढ़ाओ अच्छी तरह से।

प्रश्नः बढ़ाना है।

बिल्कुल। तभी तो जिंदगी का अनुभव होगा। नहीं तो अनुभव नहीं होगा। अगर एक स्त्री वेश्या हो कि साध्वी हो, तो मैं जानता हूं, जो वह जानेगी वह वह लड़की कभी भी नहीं जान सकती जो कभी किसी के प्रेम में नहीं गई। बुरे से बुरे रास्ते पर गया हुआ आदमी भी जब अच्छे से अच्छे रास्ते पर जाता है तो उसका जो जानना है वह रिच होता है, समृद्ध होता है। उसकी जिंदगी और गहरी होती है। कांप्लिकेशंस तो गहरा करते हैं, उससे डरना क्या। और कांप्लिकेशंस से डरना है तो दरवाजा बंद करके अपने बैठ जाओ, मर जाओ। सुसाइडल है।

प्रश्नः बट व्हेन डिफिकल्टी अराइज, सपोज... आई फील डिफिकल्टी बिफोर आई स्टार्ट।

मत सोचो। जैसा तुम्हें ठीक लगे वैसा करो। यह भी तो सब सोचना है न। यह सब सोचना है। तो बचोगी कहां, जाओगी कहां। मत सोचो। बस एक ही बात ध्यान रखो कि बचो मत जिंदगी से। भगवान जिंदगी में धक्का देता है कि जाओ जानने को, और महात्मा समझाते हैं कि बचो।

प्रश्नः बड़ा मुश्किल है।

ये महात्मा जो हैं परमात्मा के सबसे बड़े दुश्मन हैं। महात्माओं से बचना, बस और कुछ नहीं, अगर परमात्मा पाना हो तो। महात्माओं को तो परमात्मा मिलते नहीं, चंद्रेसी। देखा आपने कभी किसी महात्मा को परमात्मा मिला? कभी नहीं मिला। पापी को भी मिल जाए, पंडितों को नहीं मिलता।

चौथा प्रवचन

स्वप्न से जागरण की ओर

एक अदभुत व्यक्ति हुआ, नाम था च्वांगत्सु। रात सोया, एक स्वप्न देखा। स्वप्न देखा कि एक तितली हो गया हूं, फूल-फूल उड़ रहा हूं। सुबह उठा तो बहुत उदास था। मित्र उसके पूछने लगे, कभी उदास नहीं देखा, इतने उदास क्यों हैं? दूसरे उदास होते थे तो पूछते थे राह च्वांगत्सु से, मार्ग पाते थे। और उसे तो कभी किसी ने उदास नहीं देखा था।

च्वांगत्सु ने कहाः क्या बताऊं, क्या फायदा है, एक बहुत उलझन में पड़ गया हूं। रात एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं!

मित्र कहने लगे, पागल हो गए हो, इसमें चिंता की क्या बात है?

च्वांगत्सु ने कहाः सपना देखा इसमें चिंता नहीं है, लेकिन सुबह उठ कर मुझे एक ख्याल घेर लिया है और वह यह कि रात आदमी सपना देखता है कि तितली हो गया, तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि अब तितली सो गई हो और सपना देखती हो कि आदमी हो गई है? अगर आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली भी तो सपने में आदमी हो सकती है? तो च्वांगत्सु कहने लगा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं कि मैं असली में आदमी हूं जिसने तितली का सपना देखा या तितली हूं जो आदमी का सपना देख रही है? और कैसे तय करूं कि क्या सही है?

हम भी कैसे तय करेंगे कि जो रात हम देखते हैं वह सपना है या जो दिन हम देखते हैं वह? हम भी कैसे तय करेंगे कि जाग कर जो हम देखते हैं वह सच है या सपना है? और जब तक हम यह न तय कर लें कि जो हम जी रहे हैं वह सपना है या सत्य, तब तक हमारे जीवन से कोई अर्थ निष्पन्न नहीं हो सकता।

सत्य की खोज में स्वप्न को स्वप्न की भांति जानना, असत्य को असत्य की भांति जानना, असार को असार की भांति जानना तो जरूरी है। जो भी सत्य को जानना चाहता है, उसे स्वप्न से तो जागना ही पड़ेगा। लेकिन रात हम सोते हैं तो भूल जाते हैं दिन को, भूल जाता है सब कुछ जो था। यह भी भूल जाता है कि हम कौन थे जाग कर--धनी हैं या गरीब, आदृत हैं या अनादृत, जवान हैं या वृद्ध, सब भूल जाता है, जो हम जागे हुए थे स्वप्न में सब भूल जाता है।

स्वप्न से उठते हैं तो जाग कर सब भूल जाता है जो स्वप्न में देखा। जाग कर हम कहते हैं, सपना झूठा था। क्यों? क्योंकि जागरण ने उसे भुला दिया। तो निद्रा में भी हमें कहना चाहिए कि जो जाग कर देखा था वह झूठा था।

बल्कि एक बहुत बड़ी मजे की बात है, जाग कर तो हमें ख्याल रहता है कि सपना देखा था, सपना याद रहता है, लेकिन सपने में हमें जागने का इतना भी ख्याल नहीं रहता कि हमने जो देखा था वह कभी देखा था या हम कभी जागे हुए भी थे। जागने में तो सपने की थोड़ी स्मृति रह जाती है, सपने में जागने की इतनी भी स्मृति नहीं रह जाती। इतना भी भूल जाता है, सब तरह खो जाता है।

फिर मरने पर तो हमने जीवन में जो देखा वह फिर सब खो जाएगा। तो जीवन में जो हमने देखा वह मृत्यु के बाद मृत्यु के क्षण में सपना रह जाता है कि सत्य? इस संबंध में थोड़ी बात जाननी जरूरी है। क्योंकि

उसे जान कर ही हम सत्य की दिशा में गतिमान हो सकते हैं। अगर यह साफ हो जाए कि हम अपने से जितने दूर जाते हैं, उतने ही सपनों में चले जाते हैं। तो हम सपनों से जितने पीछे लौटेंगे, उतने ही अपने में आ जाएंगे।

अपने में आने के लिए सब तरह के सपने छोड़ कर आना पड़ेगा। लेकिन जिंदगी को हम असत्य कहें यह तो मुश्किल है, हम तो असत्यों तक को सत्य मान लेते हैं।

मैंने सुना है, और हम सब जानते हैं, चित्र देखने जाते हैं, फिल्म देखने जाते हैं--कोई दुखी है पर्दे पर। पर्दे पर कोई भी नहीं है, सिर्फ धूप और छाया का खेल है, सिर्फ प्रकाश और अंधकार का मेल है, कुछ भी नहीं है कोरे पर्दे पर, सिवाय इसके कि कुछ किरणें नाच रही हैं। और कोई दुखी है और हम दुखी हो जाते हैं। और कोई सुंदर है और हम मोहित हो जाते हैं। और कोई पीड़ित है और हमारे आंख से आंसू बहने लगते हैं। और किसी की खुशी में हम खुश भी हो जाते हैं। और तीन घंटे फिल्म में बैठ कर भूल जाते हैं कि जो था वह सिर्फ एक पर्दा था और नाचती हुई किरणें थीं, और कुछ भी नहीं था। और उन नाचती हुई किरणों में और उन झूठे बने चित्रों में हम रोए भी, हम हंसे भी, हम लीन भी हुए, और उसके लिए हमने पैसे भी दिए, उसके लिए हमने समय भी दिया। अक्सर तो लोग गीले रूमाल लेकर बाहर निकलते हैं। इतने आंसू बह गए, चित्रों में!

हमारे भ्रमजाल में पड़ जाने की बड़ी संभावना मालूम पड़ती है। हम सपने को सत्य मान लेने के लिए इतने, इतने आदी हो गए हैं।

एक बहुत बड़ा विचारक था बंगाल में, विद्यासागर। एक दिन एक नाटक देखने गया है। और एक पात्र है जो एक स्त्री के पीछे बहुत बुरी तरह पड़ा हुआ है, उसे परेशान कर रहा है। एकांत, एक अंधेरी रात में, उस पात्र ने, उस अभिनेता ने उस स्त्री को पकड़ लिया है। विद्यासागर का होश खो गया। वे भूल गए कि सामने है जो नाटक है। निकाला जूता, कूद पड़े स्टेज पर, लगे मारने उस अभिनेता को।

लोग तो हैरान हो गए कि यह क्या हो रहा है? एक क्षण में उनको भी ख्याल आ गया कि यह क्या कर रहा हूं? लेकिन उस अभिनेता ने विद्यासागर से भी ज्यादा बुद्धिमानी प्रदर्शित की, उसने वह जूता उनके हाथ से लेकर सिर से लगा लिया और लोगों से कहा कि इससे बड़ा पुरस्कार अभिनय के लिए मुझे पहले नहीं मिला। कभी सोचा भी नहीं था कि विद्यासागर जैसा बुद्धिमान आदमी भी नाटक की एक कथा को इतना सच मान लेगा। मैं धन्य हुआ। इस जूते को सम्हाल कर रखूंगा। यह सबूत रहा कि मैंने कोई अभिनय किया था जो इतना सच हो गया था। विद्यासागर तो बड़े झेंपे होंगे।

नाटक को हम सच मान सकते हैं। क्यों? कभी सोचा आपने कि ऐसा क्यों हो जाता है? ऐसा हो जाने का कारण है बहुत गहरा मनोवैज्ञानिक है। और वह यह है कि हम सत्य को तो जानते ही नहीं, हम सपनों को ही सत्य मानने के आदी रहे हैं। हम किसी भी सपने को सत्य मान लेते हैं। हमारी आदत है सपने को सत्य मान लेने की। इसलिए रात आंख के पर्दे पर सपनों को हम सच मान लेते हैं। यहां तक कि सपने में कोई आपकी छाती पर चढ़ गया है। अब नींद खुल गई है, आप जानते हैं कि सपना टूट गया, लेकिन छाती है कि धड़के चली जा रही है। अब आप कहते भी हैं कि सपना था सब। लेकिन हाथ-पैर कंपे चले जा रहे हैं। सपने में जो इंपैक्ट, सपने में जो संघात हो गया था, वह अब तक अपना प्रभाव जारी रखे है।

दिन में भी, जिंदगी में भी हम सपनों को ही सच मानते हैं। और जो-जो हम सच समझते हैं, करीब-करीब सपना है। एक आदमी धन इकट्ठा करे चला जा रहा है। रोज गिनता है, तिजोड़ी बंद करता है, खाते-बही, हिसाब रखता है। इतना बढ़ गया, इतना बढ़ गया, इतना बढ़ गया। कोई सपना देख रहा है, धन का सपना देख रहा है--बढ़ाता चला जा रहा है, इकट्ठा करता जा रहा है।

मैंने सुना है, एक ऐसे धनी आदमी ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया था। न तो कभी खाया, न कभी ठीक से पीया, न कपड़े पहने। कपड़े, खाना-पीना गरीब आदमी ही कर पाते हैं। अमीर आदमी सिर्फ पैसा इकट्ठा कर पाते हैं। जिंदगी बेच देते हैं और रुपया इकट्ठा कर लेते हैं। बहुत रुपया उसने इकट्ठा कर लिया था।

पत्नी बीमार पड़ी, पास-पड़ोस के लोगों ने कहाः इलाज करवा लो।

उस आदमी ने कहाः बचना होगा तो कोई उठा नहीं सकता। भगवान की मर्जी होगी, कौन उठा सकता है? बड़ी ज्ञान की बात कही। और भगवान की मर्जी नहीं है, कितनी ही दवा खर्च करो, व्यर्थ पैसा खराब होगा। उठ जाएगी, तो हम तो उस पर विश्वास करते हैं।

अब लोग क्या करते हैं। कई बेईमान होते हैं, कमजोरियों को भी सिद्धांतों में छिपा लेते हैं। और अक्सर बेईमान कमजोरियों को सिद्धांतों में छिपाते हैं। अब उसने एक ऐसी बात कही कि लोग क्या कहते।

आखिर पत्नी मर गई। जब मर ही गई तो लोगों ने कहाः अरथी पर कुछ खर्च करना पड़ेगा। उसने कहाः अब जो मर ही गई उस पर खर्च करना तो बिल्कुल फिजूल है। अब जो मर ही गया, उससे क्या मतलब है। म्युनिसिपल की बैलगाड़ी भी डाल आएगी। अब मरे को ढोना और शोरगुल मचाना और खर्च करना, इसमें सार क्या है। अरे जब जिंदा को नहीं बचा सके, तो अब मुर्दे पर हम क्या कर सकते हैं।

फिर तो उसकी खुद की मौत आई। तो लोगों ने कहा कि अब तो तुम भी बूढ़े होते हो, मरने के करीब होते हो, कमजोर होते हो, बीमारियां आती हैं, इलाज करवा लो। उसने कहा कि मैं बेकार पैसा खराब नहीं कर सकता हूं। बीमारियां तो भाग्य से आती हैं। पिछले जन्मों के कर्म से आती हैं। पैसा क्या करेगा?

लोगों ने कहाः अब ज्यादा हद हो गई। अब खुद पर ही खर्च नहीं करोगे, मर जाओगे, तो यह सारा पैसा लोग बरबाद कर देंगे। न कोई लड़का है तुम्हारा, न कोई।

उसने कहाः मैं एक पैसा नहीं छोड़ कर जाने वाला।

लोगों ने कहाः यह तो आज तक सुना नहीं। सभी को यह ख्याल है कि कुछ छोड़ कर न जाएंगे। क्योंकि अगर यह साफ हो जाए कि सब छोड़ कर जाना पड़ेगा, तो पकड़ छूट जाए, इसी क्षण, अभी। वह पकड़ उतनी ही मजबूत है जितना यह ख्याल है कि नहीं, छोड़ कर नहीं जाएंगे। नहीं तो एक-एक इंच जमीन के लिए आदमी लड़े और खून बहाए! और एक-एक पैसे के लिए जिंदगी को कौड़ी का कर दे। पकड़ ऐसी है कि लगता है कि कभी नहीं छोड़ेंगे। उस आदमी ने भी कहा कुछ गलत नहीं कहा। कहा कि हम छोड़ कर नहीं जाएंगे।

लोगों ने कहाः अब तक तो सुना नहीं, सबको छोड़ कर जाना पड़ता है।

उसने कहा कि लेकिन मैंने ऐसा इंतजाम किया है कि मैं छोड़ कर जाने वाला नहीं। मरने की रात करीब आने लगी, उसे शक हुआ। तो उसने रात अपनी सारी सोने की मोहरें एक गठरी में बांधी। उनको कंधे पर लेकर नदी के किनारे गया।

एक सोए हुए मल्लाह को जगाया। और उससे कहा कि मुझे नाव में बिठा कर ले चल। मैं बीच गंगा में डूब कर प्राण-विसर्जन करना चाहता हूं।

अरे, जब मरना ही है तो तीर्थ में मरना चाहिए। उसने सोचा, मर गए तो वह रुपयों का क्या होगा, इसलिए रुपयों को साथ लेकर गंगा में कूद जाओ।

पैसे वाले इसीलिए तीर्थों में जाकर मरते हैं। जो साथ में है उसे कुछ ले जाने का उपाय तीर्थ में खोजते हैं। मंदिर बनाते हैं, धर्मशाला बनाते हैं। ये तरकीबें हैं रुपयों को साथ ले जाने की। ये तरकीबें हैं, यह आश्वासन

मिला है कि इस तरह खर्च करोगे, धर्म में लगाओगे तो उधर मिल जाएगा। इधर एक लगाओ, उधर लाख मिल जाएंगे। कंजूस, लोभी आदमी लगा देता है कि उधर लाख मिल जाएंगे।

वह सारी बांध कर गठरी... मल्लाह ने कहा कि एक सोने की मोहर लूंगा। आधी रात, सो गया, मुझे गड़बड़ मत करो।

उस आदमी ने कहाः एक सोने की मोहर, तुझे शर्म नहीं आती। एक मरते हुए आदमी पर इतनी भी दया नहीं आती। एक सोने की मोहर, बेशर्म! कभी जिंदगी में मैंने नहीं दी किसी को। और तुझे मरते हुए आदमी पर दया भी नहीं आती। इतना कठोर और दुष्ट है तू।

उस मल्लाह ने कहाः तो आप किसी और को ठहरा लें।

उसने कहाः मैं ज्यादा शोरगुल भी नहीं मचा सकता हूं। लोगों को पता चल जाए कि सब मोहरें लेकर कूद गया, मैं तो मरूं और लोग मोहरें निकाल लें।

तो उसने कहाः चल भाई। लेकिन जरा ठहर जा, मैं छोटी से छोटी मोहर खोज लूं। अब वह आदमी मरने जा रहा है, वह गंगा में कूदने जा रहा है, लेकिन उसका चित्त। जरूर वह किसी सपने में जीया है जिंदगी भर। सपने में या पागलपन में, किसी मैडनेस में। वह आदमी विक्षिप्त रहा है।

जो भी आदमी पैसे को पकड़े हुए दिखाई पड़े, समझना कि वह पागल है। हालांकि इतने पागल हैं दुनिया में कि इतने पागलखाने भी तो नहीं बनाए जा सकते। सच तो यह है कि अगर दुनिया में पागलों और गैर-पागलों को अलग करना हो, तो गैर-पागलों के लिए छोटे-छोटे घर बना देने चाहिए। क्योंकि बाकी तो सब पागल हैं, उनको बाहर रखना पड़े।

एक आदमी पैसे के लिए मरा जा रहा है, वह कोई सपना देख रहा है। कोई जिसका कुछ उसे पता नहीं कि वह क्या कर रहा है। जिंदगी से कोई वास्ता नहीं दिखाई पड़ता उसका। हां, कोई आदमी पैसे कमा रहा हो और जी रहा हो उनसे, तो भी समझ में आता है।

कोई आदमी और तरह के सपने देख रहा है। कोई आदमी पदों के सपने देख रहा है। छोटे पद से बड़े पद। बड़े पद से बड़े पद पर जाना है। पदों की यात्रा करनी है। उसके मन में कोई ड्रीम है, कोई सपना है, जिसको वह पूरा करना चाहता है कि मैं करूंगा। सिकंदर या नेपोलियन या कोई भी। सब उसी दौड़ में लगे हुए हैं। एक सपना देख रहे हैं।

सिकंदर सपना देख रहा है कि सारी दुनिया को जीत लूं। लेकिन क्या मतलब है सारी दुनिया को जीत लिया तो? जीत ही लिया समझो। आपने ही जीत लिया, फिर क्या है? फिर क्या होगा? फिर भी तो कुछ नहीं होगा। लेकिन एक दौड़ है, एक पागल दौड़ है। वह आदमी दौड़ रहा है।

मैंने सुना है, सिकंदर जब हिंदुस्तान आता था, तो रास्ते में एक फकीर से मिल लिया था। एक फकीर था डायोजनीज। एक नंगा फकीर। गांव के किनारे पड़ा रहता था। खबर की थी किसी ने सिकंदर को कि रास्ते में जाते हुए एक अदभुत फकीर है डायोजनीज उससे मिल लेना।

सिकंदर मिलने गया है। फकीर लेटा है नंगा सुबह सर्द आकाश के नीचे। धूप पड़ रही है, सूरज की धूप ले रहा है। सिकंदर खड़ा हो गया है, सिकंदर की छाया पड़ने लगी है डायोजनीज पर। सिकंदर ने कहा कि शायद आप जानते न हों, मैं हूं महान सिकंदर, अलेक्जेंडर दि ग्रेट। आपसे मिलने आया हूं। वह फकीर जोर से हंसा। और उसने अपने कुत्ते को, जो कि अंदर माद में बैठा हुआ था, उसको जोर से बुलाया कि इधर आ, सुन, एक आदमी आया है, जो अपने मुंह से अपने को महान कहता है। कुत्ते भी ऐसी भूल नहीं कर सकते।

सिकंदर तो चौंक गया। सिकंदर से कोई ऐसी बात कहे, एक नंगा आदमी, जिसके पास एक वस्त्र भी नहीं है। एक छुरा भोंक दो, तो कपड़ा भी नहीं है कि बीच में आड़ बन जाए। सिकंदर का हाथ तो तलवार पर चला गया। उस डायोजनीज ने कहाः तलवार अपनी जगह रहने दे, बेकार मेहनत मत कर। क्योंकि तलवारें उनके लिए हैं जो मरने से डरते हैं। हम पार हो चुके उस जगह से जहां मरना हो सकता है। हमने वे सपने छोड़ दिए जिनसे मौत पैदा होती है। हम मर चुके उन सपनों के प्रति। अब हम वहां हैं जहां मौत नहीं।

तलवार भीतर रहने दे। बेकार मेहनत मत कर। सिकंदर से कोई ऐसा कहेगा। और सिकंदर इतना बहादुर आदमी, उसकी तलवार भी भीतर चली गई। ऐसे आदमी के सामने तलवार बेमानी है। और ऐसे आदमी के सामने तलवार रखे हुए लोग खिलौनों से खेलते हुए बच्चों से ज्यादा नहीं हैं।

सिकंदर ने कहाः फिर भी मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?

डायोजनीज ने कहाः क्या कर सकते हो? तुम क्या कर सकोगे? इतना ही कर सकते हो कि थोड़ा जगह छोड़ कर खड़े हो जाओ, धूप पड़ती थी मेरे ऊपर, आड़ बन गए हो। और ध्यान रखना किसी की धूप में कभी आड़ मत बनना।

सिकंदर ने कहा कि जाता हूं, लेकिन एक ऐसे आदमी से मिल कर जा रहा हूं जिसके सामने छोटा पड़ गया। और लगा कि जैसे पहली दफा ऊंट पहाड़ के पास आ गया हो। अब तक बहुत आदमी देखे थे, बड़ी से बड़ी शान के आदमी देखे थे। झुका दिए थे। लेकिन एक आदमी के सामने... अगर भगवान ने फिर जिंदगी दी, तो अब की बार कहूंगा कि डायोजनीज बना दो।

डायोजनीज ने कहाः और यह भी सुन ले कि अगर भगवान हाथ-पैर जोड़े मेरे और मेरे पैरों पर सिर रख दे और कहे कि सिकंदर बन जा, तो मैं कहूंगा, इससे तो न बनना अच्छा है। पागल हूं कोई, सिकंदर बनूं?

पूछता हूं जाने के पहले कि इतनी दौड़-धूप, इतना शोरगुल, इतनी फौज-फाटा लेकर कहां जा रहे हो? सिकंदर ने कहा, आंख पर रौनक छा गई, चेहरा खुश हो गया, कहाः पूछते हैं, एशिया माइनर को जीतने जा रहा हूं।

डायोजनीज बोलाः फिर, फिर क्या करेंगे?

फिर हिंदुस्तान जीतूंगा!

और फिर?

और फिर चीन जीतूंगा!

और फिर?

फिर सारी दुनिया जीतूंगा!

और डायोजनीज ने पूछाः आखिरी सवाल और, फिर क्या करने के इरादे हैं?

सिकंदर ने कहाः उतने दूर तक नहीं सोचा है, लेकिन आप पूछते हैं, तो मैं सोचता हूं कि फिर आराम करूंगा।

डायोजनीज कहने लगा, ओ कुत्ते फिर वापस आ! यह कैसा पागल आदमी है, हम बिना दुनिया को जीते आराम कर रहे हैं, यह कहता है हम दुनिया जीतेंगे फिर आराम करेंगे। हमारा कुत्ता भी आराम कर रहा है, हम भी आराम कर रहे हैं। तुम्हारा दिमाग खराब है, आराम करना है न आखिर में?

सिकंदर ने कहाः आराम ही करना चाहते हैं।

तो उसने कहाः दुनिया कहां तुम्हारे आराम को खराब कर रही है। आओ हमारे झोपड़े में काफी जगह है, दो भी समा सकते हैं। गरीब का झोपड़ा हमेशा अमीर के महल से बड़ा है। अमीर के महल में एक ही मुश्किल से समा पाता है। और बड़ा महल चाहिए, और बड़ा महल चाहिए। एक ही नहीं समा पाता, वही नहीं समा पाता। गरीब के झोपड़े में बहुत समा सकते हैं। गरीब का झोपड़ा बहुत बड़ा है।

वह फकीर कहने लगा, बहुत बड़ा है, दो बन जाएंगे, आराम से बन जाएंगे। तुम आ जाओ, कहां परेशान होते हो।

सिकंदर ने कहाः तुम्हारा निमंत्रण मन को आकर्षित करता है। तुम्हारी हिम्मत, तुम्हारी शान, तुम्हारी बात जंचती है मन को, लेकिन आधी यात्रा पर निकल चुका। आधे से कैसे वापस लौट आऊं? जल्दी, जल्दी वापस आ जाऊंगा।

डायोजनीज ने कहाः तुम्हारी मर्जी, लेकिन मैंने बहुत लोगों को यात्राओं पर जाते देखा, कोई वापस नहीं लौटता। और गलत यात्राओं से कभी कोई वापस लौटता है? और जब होश आ जाए तभी अगर वापस नहीं लौट सकते, तो फिर मतलब यह हुआ कि होश नहीं आया।

एक आदमी कुएं में गिरने जा रहा, रास्ता गलत हो और आगे कुआं हो, उसे पता भी न हो। कोई कहे कि अब मत जाओ, आगे कुआं है। वह कहे, अब तो हम आधे आ चुके, अब कैसे रुक सकते हैं? नहीं, लौट आएगा तत्क्षण।

एक आदमी सांप के पास जा रहा हो, और कोई कहे कि मत जाओ, अंधेरे में सांप बैठा है। वह आदमी कहे, लेकिन हम दस कदम चल चुके हैं, अब हम पीछे कैसे वापस लौट सकते हैं।

और फिर वह डायोजनीज कहने लगा कि सिकंदर सपने बड़े होते हैं, आदमी की जिंदगी छोटी होती है। जिंदगी चुक जाती है, सपने पूरे नहीं होते। फिर तुम्हारी मर्जी। खैर, कभी भी तुम आओ, हमारा घर खुला रहेगा। इसमें कोई दरवाजा वगैरह नहीं है। अगर हम सोए भी हों, तो तुम आ जाना और विश्राम करना। या अगर हमें न भी पाओ, क्योंकि कोई भरोसा नहीं कल का। आज सुबह सूरज उगा है, कल न भी उगे। हम न हों, तो भी झोपड़े पर हमारी कोई मालकियत नहीं है। तुम आ जाओ, तो तुम ठहरना। झोपड़ा रहेगा।

सिकंदर को ऐसा कभी न लगा होगा। असल में जो लोग सपने देखते हैं, अगर वे सच देखने वाले आदमी के पास पहुंच जाएं, तो बहुत कठिनाई होती है। क्योंकि दोनों की भाषाएं अलग हैं।

सिकंदर लेकिन बेचैन हो गया होगा। वापस लौटता था हिंदुस्तान से, तो बीच में मर गया, लौट नहीं पाया।

असल में, अंधी यात्राएं कभी पूरी नहीं होतीं, आदमी पूरा हो जाता है। और सच तो यह है कि न मालूम कितने-कितने जन्मों से हमने अंधी यात्राएं की हैं। हम पूरे होते गए हैं बार-बार और फिर उन्हीं अधूरे सपनों को फिर से शुरू कर देते हैं। अगर एक आदमी को एक बार पता चल जाए कि उसने पिछली जिंदगी में क्या किया था, तो यह जिंदगी उसकी आज ही ठप्प हो जाए। क्योंकि यही सब उसने पहले भी किया था। यही नासमझियां, यही दुश्मनियां, यही दोस्तियां, यही धन, यही यश, यही पद, यही दौड़। न मालूम कितनी बार एक-एक आदमी कर चुका है। इसलिए प्रकृति ने व्यवस्था की है कि पिछले जन्म को भुला देती है। ताकि आप फिर उसी चक्कर में सम्मिलित हो सकें जिसमें आप कई बार हो चुके हैं। अगर पता चल जाए कि यह चक्कर तो बहुत बार हुआ है, यह सब तो मैंने बहुत बार किया है, तो फिर एकदम सब व्यर्थ हो जाएगा।

वह सिकंदर मर गया। संयोग की बात कि उसी दिन डायोजनीज भी मर गया। और बड़ी अदभुत घटना घटी। यूनान में एक कहानी चल पड़ी। मरने के बाद, मरने के पहले कहानी चल पड़ी थी कि सिकंदर से एक आदमी ने ऐसा कह दिया, एक फकीर ने। फिर दोनों एक दिन मरे। किसी होशियार आदमी ने एक कहानी चला दी कि वैतरणी पर फिर दोनों का मिलना हो गया। आगे सिकंदर है, पीछे डायोजनीज है। सिकंदर घंटे भर पहले मरा है, डायोजनीज घंटे भर बाद मरा है। सिकंदर ने पीछे खड़बड़ की आवाज सुनी पानी में, और किसी का जोर का कहकहा सुना। प्राण कंप गए, यह हंसी पहचानी हुई मालूम पड़ी। यह उसी आदमी की हंसी थी, डायोजनीज की।

डायोजनीज जैसा कोई दूसरा आदमी हंस भी तो नहीं सकता था। असल में हम जो हंसते हैं, वह हंसना कभी हंसना नहीं होता। क्योंकि जिनकी रोने की आदत पड़ी है उनका हंसना भी झूठा ही होता है। ऊपर हंसी होती है भीतर रोना होता है। हंसी में भी आंसू ही होते हैं। हंसी सदा झूठी होती है। हंस तो वही सकता है जिसके प्राणों तक हंसी प्रवेश कर गई हो। और जिसके प्राणों में तो रोना चल रहा हो और ऊपर से हंसता हो, वह सब मन का बहलाव है। वह सिर्फ रोने को भुलाए रखने की कोशिश है।

हंसी है डायोजनीज की। सिकंदर तो कंप गया। और सिकंदर ने देखा, आज तो बड़ी मुसीबत हो गई। पिछली बार जब मिले थे, तो सिकंदर तो बादशाह के लिबास में था, डायोजनीज नंगा था। आज बड़ी मुश्किल हो गई। सिकंदर भी नंगा था और डायोजनीज तो पहले से ही नंगा था। इसको तो श्रम की कोई बात न थी। पीछे लौट कर देखा हिम्मत बढ़ाने के लिए। जरा आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए। वह भी हंसा। लेकिन डायोजनीज ने कहाः बंद कर हंसी। झूठी हंसियां। जिंदगी भर झूठे काम किए, मरने के बाद भी झूठी हंसी हंस रहा है। बंद कर यह हंसी।

सिकंदर घबड़ा गया और सिकंदर ने कहाः बड़ी खुशी हुई फिर से मिल कर आपसे। कितना अदभुत है यह। शायद ही कभी वैतरणी पर, एक फकीर का, एक नंगे फकीर का और एक सम्राट का मिलना हुआ हो। यह पहला ही मौका होगा।

डायोजनीज ने कहाः ठीक कहता है तू। लेकिन थोड़ी सी गलती करता है समझने में कि कौन है सम्राट और कौन है फकीर। सम्राट पीछे है, फकीर आगे है।

क्योंकि तू सब खोकर लौट रहा है। क्योंकि तूने जो भी पाना चाहा वह सपने का पाना था। और मैं सब पाकर लौट रहा हूं। क्योंकि मैंने सपने तो तोड़ दिए। फिर जो बचा, उसी को पा लिया।

सारी दौड़ हमारी सपने की दौड़ है। क्या मिलेगा इससे कि एक आदमी बड़ा यश पा ले कि बड़ा पद पा ले? क्या होगा? क्या होगा इससे कि सारे लोग पूजें और आदर दें, सम्मान दें? कुछ भी तो नहीं हो सकता है। और कुछ जो हो सकता है भीतर की खोज से, इस पागलपन की दौड़ के कारण वह खोज के लिए समय नहीं मिलेगा।

लोग मुझे मिलते हैं, वे कहते हैं, आप जो कहते हैं, ठीक है। लेकिन फुरसत कहां है, कब ध्यान करें? कब भगवान को खोजें? समय कहां है? सपना सब समय ले लेता है। आदमी कहता है, सत्य के लिए समय कहां है?

अजीब, अदभुत बात है। सपने इतने जोर से मन को पकड़े हैं कि वे कहते हैं, इंच भर समय मत छोड़ो। और क्यों ऐसा करते हैं सपने? निश्चित, इसलिए कि अगर सत्य की एक किरण भी आ जाए, तो एक सपना नहीं, सारा सपने का चित्त विसर्जित हो जाता है। इसलिए जरा सा भी मौका मत दो। दौड़ाए रखो, दौड़ाए रखो। एक दौड़ चुके न कि दूसरी लगा दो। मन कहता है, यह इच्छा चुके न कि दूसरी पकड़ा दो। एक इच्छा चुक भी नहीं

पाती कि दूसरी इच्छा के अंकुर फूटने शुरू हो जाते हैं। मन कहता है, एक खोज बंद न हो पाए कि दूसरी खोज लगा दो। मन कहता है, एक सपना टूटे, इसके पहले नये सपने जगा दो। क्योंकि एक किरण भी सत्य की--अगर मौका मिल गया दो सपनों के बीच में सत्य की एक किरण के प्रवेश का, तो सब गड़बड़ हो जाएगा। सब गड़बड़ हो जाएगा।

सपने कितने ही गहरे हों, जागरण की जरा सी चोट भी तो उन्हें नहीं बचा सकती। आज इस तीसरी बैठक में यह कहना चाहता हूं कि अगर जाना है स्वयं की तरफ, सत्य की तरफ, तो पहले तो यह पहचानना होगा कि क्या-क्या है जो सपना है? और यह पहचानना होगा कि मैं सपनों को पानी तो नहीं सींचता हूं? यह खोज करनी होगी कि मैं सपनों की जड़ें तो नहीं बढ़ाता हूं? मैं सपनों को पुष्ट तो नहीं करता हूं? मैं कहीं सपनों के ही लिए सपनों में ही तो नहीं जीता हूं? यह खोज करनी पड़ेगी। और अगर यह खोज ठीक चले, तो चित्त खुद जानेगा, चेतना जानेगी कि यह सपना है। और जैसे ही यह पता चल जाए कि सपना है, हाथ ढीले हो जाते हैं।

सपने को भी पकड़ रखने के लिए यह भ्रांति रहनी चाहिए कि वह सत्य है। असल में सपना इतना कमजोर है कि सत्य का धोखा दिए बिना वह आप पर हावी भी नहीं हो सकता। अगर झूठ को भी चलना हो तो सच के कपड़े पहनने पड़ते हैं। अगर बेईमानी को भी बाजार में गति करनी हो तो तख्ती लगानी पड़ती है कि ईमानदारी ही हमारा नियम है। अगर झूठे घी को बिकना हो तो सच्चे घी की दुकान खोलनी पड़ती है।

सपने और असत्य और असार इतना कमजोर है, इतना इंपोटेंट, इतना नपुंसक है कि उसे हमेशा सत्य से उधार लेना पड़ते हैं पैर।

मैंने सुना है कि पहली दफा पृथ्वी बनी और सब चीजें आकाश से उतरीं, कहानी है, तो भगवान ने सौंदर्य की देवी भी बनाई और कुरूपता की भी। वे दोनों भी उतरीं। और वे दोनों आकाश से जमीन तक आईं। तो आकाश की देवियां थीं, रास्ते की धूल-धवांस। आकाश से जमीन तक आना और फिर जमीन की धूल और जमीन की दुनिया। वे दोनों के सब कपड़े, सब शरीर धूल से भर गया है, स्वेद से भर गया है।

उन्होंने कपड़े रखे एक झील के किनारे, स्नान करने को उतरीं। सुंदरता की देवी तो तैरती हुई दूर चली गई। कुरूपता की देवी किनारे पर वापस निकली, सुंदरता की देवी के कपड़े पहने और चलती बनी।

लौट कर सुंदरता की देवी ने देखा, बड़ी मुश्किल है, सुबह होने के करीब आ गई, गांव के लोग जगने लगे। भागी बाहर आई, नंगी है, क्या करे? उसके कपड़े तो ले गई है कुरूपता की देवी। अब कुरूपता के कपड़े भर मौजूद हैं। मजबूरी है, उन्हीं को पहन कर भागी कि कहीं मिल जाएगी रास्ते में कुरूपता की देवी, तो कपड़े बदल ले लेगी।

तब से सुना है कि सौंदर्य की देवी तो कुरूपता के कपड़े पहने घूम रही है। और कुरूपता की देवी सौंदर्य के कपड़े पहने हुए है। और दोनों का मिलना नहीं हो पा रहा है। क्योंकि कुरूपता की देवी कहीं ठहरती ही नहीं, भागती ही रहती है, भागती ही रहती है।

और अब तो बहुत दिन बीत गए। अब ख्याल भी छोड़ दिया है सौंदर्य ने। असत्य भी यही कर रहा है। सपने भी यही कर रहे हैं। चलना हो तो सत्य के पैर चाहिए, वस्त्र चाहिए। सपने भी तभी तक चल सकते हैं जब तक यह ख्याल हो कि वे सत्य हैं। अगर यह दिखाई पड़ जाए कि वे सपने हैं, तो तत्काल टूट जाते हैं।

आपने कभी ख्याल किया रात में, जब सपना चलता है, कभी पता नहीं चलता कि यह सपना है। और अगर पता चल जाए, तो समझना कि सपना टूट गया। अगर पता चल जाए सपने में कि यह सपना है, आप

फौरन पाएंगे कि जागरण हो चुका, सपना टूट चुका है। आप जाग गए हैं, तभी पता चल रहा है कि यह सपना है।

साधक को, जो खोज में निकला हो परम सत्य की, उसे सपनों की खोज-बीन करनी पड़ती है कि क्या-क्या सपना है? कौन-कौन सी बात सपने की है? जितना ही होशपूर्वक यह मनन होगा, यह विश्लेषण होगा कि यह रहा सपना, वहीं सपना विलीन हो जाएगा। और जैसे-जैसे समझ बढ़ेगी, अंडरस्टेंडिंग बढ़ेगी, साफ होगी बात, वैसे-वैसे सपने घनीभूत होने बंद हो जाते हैं और चेतना अपने पर विश्राम करती हुई वापस आने लगती है वहां जहां सत्य है। सपनों से लौटती हुई चेतना सत्य पर पहुंच जाती है। और हमारी सारी चेतना सपनों की तरफ भाग रही है। सपनों की तरफ हम भागे चले जा रहे हैं। और बचपन से लेकर मरने तक, पूरा समाज जोर देता है सपनों के लिए।

छोटा सा बच्चा स्कूल में गया है, मां-बाप कहते हैं, पहले नंबर आना। सपना पैदा करना शुरू हुआ। स्कूल में शिक्षक कहता है, नंबर एक। जो नंबर एक आएगा वही धन्य है, बाकी जो पिछड़ जाते हैं, सब अभागे हैं।

दौड़ शुरू हो गई, एक छोटे से बच्चे के मन में जहर डाल दिया गया। अब वह बच्चा जिंदगी भर इसी कोशिश में रहेगा कि नंबर एक, नंबर एक। जहां भी जाएगा, नंबर एक। मुझे नंबर एक खड़े होना है। और एक दौड़ शुरू हुई। लेकिन कोई पूछे कि नंबर एक किसलिए खड़ा होना है? यह तो समझ में आ सकता है कि कोई कहे कि जहां भी तुम खड़े रहो वहां आनंदित होना। लेकिन समझाया यह जा रहा है कि नंबर एक खड़े होओगे तो ही आनंदित हो सकते हो। हालांकि अदभुत बात है कि नंबर एक खड़ा आदमी आज तक आनंदित नहीं देखा गया। लेकिन अजीब अंधे हैं हम!

कौन, नंबर एक आदमी कब आनंदित रहा? और सच तो यह है कि कौन आदमी कभी नंबर एक हो पाया है? कहीं भी चले जाओ, आगे फिर कोई मौजूद है। हमेशा कोई आगे है, हमेशा कोई पीछे है। जैसे एक वर्तुल में, एक सर्किल में मनुष्यता भाग रही है। जैसे एक गोल घेरे में हम दौड़ रहे हैं। कितना ही दौड़ो फिर भी कोई आगे है, फिर भी कोई पीछे है। और आगे जाना है, नंबर एक जाना है।

जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। गलत कहा होगा, क्योंकि हमारे सब शिक्षक, हमारी सब सभ्यता, हमारा समाज तो कहता हैः नंबर एक। चाहे धन में, चाहे पद में, चाहे ज्ञान में, चाहे मोक्ष में, कहीं भी, नंबर एक। संन्यासी भी कोशिश करता है कब जगतगुरु हो जाए, किस शंकराचार्य की पीठ पर बैठ जाए। और बैठ कर ऐसे अकड़ जाता है जैसे कोई मिनिस्टर अकड़ जाता है, वैसे वह भी अकड़ जाता है। उसकी अकड़ भी अपनी। वह भी ऐसे देखने लगता है कि बाकी सब कीड़े-मकोड़े हैं, वह जगतगुरु। और मजा यह है कि जगत से बिना पूछे लोग जगतगुरु हो कैसे जाते हैं?

कोई जगत से पूछता ही नहीं, जगतगुरु हो जाते हैं। दंभ है पीछे, सपने हैं पीछे। जगत के सम्राट होने की कामनाएं हैं, गुरु होने की भी कामनाएं हैं, बात वही है। सबकी छाती पर चढ़ने की चेष्टा है। लेकिन मिलेगा क्या?

लेकिन दौड़ यह है महत्वाकांक्षा की। महत्वाकांक्षा यानी सपना। एंबीशन यानी सपना। हम सब महत्वाकांक्षी हैं। और जो जितना महत्वाकांक्षी है, उतना ही स्वयं से दूर चला जाएगा। सत्य से दूर चला जाएगा। सत्य उन्हें मिलता है जो महत्वाकांक्षी नहीं हैं। नॉन-एंबीशस माइंड। ऐसा मन जिसकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। जो न कुछ होना चाहता है, न कहीं जाना चाहता है, न कुछ पाना चाहता है, न किसी के ऊपर बैठना चाहता है, न किसी का मालिक होना चाहता है, न किसी का गुरु होना चाहता है, जो कुछ होना ही

नहीं चाहता। जो जो है उसे जानना, उसमें जीना, उसमें खड़ा होना, उसमें ही होना चाहता है जो है। जिसकी कोई बिकमिंग, आगे, अपने से अलग कोई दौड़ नहीं है। लेकिन सब दौड़ रहे हैं।

देखो, एक संन्यासी भागा चला जा रहा है, और उससे पूछो, कहां जा रहे हो? वह कह रहा है कि जब तक हम मोक्ष न पहुंच जाएं तब तक चैन नहीं है। कहां है मोक्ष? वह कहता है, जितनी दौड़ जोर से दौड़ेंगे उतने ही जल्दी पहुंचेंगे। लेकिन उससे पूछो, दौड़ोगे कहां, जाओगे कहां, कहां है मोक्ष? वह कहता है, समय खराब मत करवाओ, मुझे तेजी से दौड़ने दो, जितनी तेज दौड़ होगी उतने ही जल्दी मैं पहुंच जाऊंगा। लेकिन यह उसे पता नहीं कि कहां है? कहां दौड़ रहे हो? कहीं मोक्ष बाहर है कि तुम दौड़ोगे, पहुंच जाओगे?

कोई आदमी कहता है मुझे धनी होना है। और दौड़ रहा है, दौड़ रहा है। लेकिन कभी पूछता नहीं कि धन बाहर है? हां, एक धन है, रुपये-पैसे का। लेकिन कोई आदमी कितना ही धन इकट्ठा कर ले, कभी धनी हुआ है? भीतर की निर्धनता तो शेष रह जाती है। धन बाहर इकट्ठा हो जाता है, भीतर की गरीबी भीतर रह जाती है।

अकबर का एक मित्र था, फरीद। एक दिन फरीद के गांव के लोगों ने कहाः जाओ अकबर तुम्हें इतना मानता है, उससे प्रार्थना करो कि गांव में एक मदरसा खोल दे, एक स्कूल खोल दे।

फरीद तो कभी कहीं गया नहीं था। फरीद ने कहाः मैं कभी कहीं गया नहीं। मैंने कभी किसी से कुछ मांगा नहीं। लेकिन तुमने मुझे बड़ी मुश्किल में डाल दिया। अगर मैं न जाऊं तो तुम सोचोगे कि गांव के लिए इतना सा काम न किया। और अगर मैं जाऊं तो पता नहीं अकबर क्या सोचे। क्योंकि अकबर मेरे पास ही मांगने आता है। तो मैं उसके पास मांगने जाऊं? लेकिन ठीक है, तुम कहते हो, मैं जाऊंगा।

फरीद गया। सुबह-सुबह जल्दी पहुंच गया ताकि दरबार के पहले मिल ले। गया। अकबर? भीतर, लोगों ने कहा मस्जिद में वे नमाज पढ़ते हैं। फकीर अंदर गया। अब वह नमाज पढ़ कर उठा है, हाथ जोड़े हैं, परमात्मा से कह रहा हैः हे प्रभु! मेरे धन को और बढ़ा, मेरी दौलत को बढ़ा, मेरे साम्राज्य को बड़ा कर। फरीद उलटे पांव वापस लौट पड़ा।

अकबर उठा तो देखा फरीद सीढ़ियां उतर रहा है। आवाज दी, कैसे आए? कैसे चले? कुछ गलती हो गई?

उसने कहाः नहीं, कोई गलती नहीं। तुमसे नहीं, गलती मुझसे हो गई।

अकबर ने कहाः क्या गलती? आपसे और गलती!

उसने कहाः मैं बड़ी गलत जगह आ गया। गांव के लोगों ने कहा कि अकबर सम्राट है। और यहां आकर हमने देखा कि अकबर भी भिखारी है। वह अभी मांग ही रहा है, अभी और दे दो।

तेरी मैं कुछ कमी नहीं करूंगा। मुझे माफ करना, गलत जगह आ गया। और फिर तू जिससे मांग रहा है, अगर मांगना होगा उसी से हम मांग लेंगे। तेरी मैं कमी नहीं करूंगा। मदरसा बनाने में बड़ा मुश्किल हो जाएगा।

अकबर कुछ समझा नहीं। कहां, कैसा मदरसा? क्या बात है?

उसने कहाः नहीं, अब कुछ बात ही नहीं है। वह फकीर कहने लगा, नहीं, अब नहीं बनाना मदरसा। मदरसे से बड़ी कमी हो जाएगी। तेरे पास वैसे ही कमी है। भगवान से मांगना पड़ रहा है। हम तुझे गड़बड़ नहीं करते। हम फकीर भिखारी के पास आ गए, यह पता नहीं था।

अकबर भी अमीर नहीं है। असल में अमीर तो अमीर कभी हो ही नहीं पाता है। न बाहर इकट्ठा हो जाता है। भीतर का निर्धन बैठा हुआ है। वह मांग करता है और लाओ, इससे कुछ नहीं भरा। हमारी गरीबी इससे नहीं मिटती।

एक धन और भी है। वह धन, वह धन शायद बाहर के सिक्कों में नहीं है। पद है, एक पद बाहर है। कितने ही बड़े पद पर चढ़ जाओ, कुछ फर्क नहीं पड़ता। बच्चों का खेल है, इससे ज्यादा नहीं। छोटे बच्चे होते हैं घर में, कुर्सी पर चढ़ जाते हैं, अपने बाप से कहते हैं, देखो, आपसे बड़े हो गए। बाप हंसता है कि जरूर बिल्कुल बड़े हो गए, कंधे पर बिठाल लेता है कि बड़े हो गए। और बच्चा खुश होता है, अकड़ कर देखता है कि देखो हम बड़े हो गए।

कुर्सी पर खड़े होकर बच्चा बड़ा हो जाता है, तो पद की कुर्सी पर खड़े होकर कोई बड़ा अगर हो जाए, तो चाइल्डिश और बचकाना ही जानना चाहिए, और तो कुछ बात नहीं होगी। आप कुर्सी पर हो गए तो बड़े कैसे हो गए?

मद्रास में एक मजिस्ट्रेट था, अंग्रेज था। और बड़ी फिकर रखता था कि आदमी को पद के अनुसार कुर्सी होनी चाहिए। ख्याल तो हम सब रखते हैं, लेकिन इतने पागल नहीं। वह बिल्कुल कंसिस्टेंटली मैड, बिल्कुल व्यवस्थित रूप से पागल था। फिकर तो हम भी रखते हैं। नौकर घर में आता है, कितना ही बूढ़ा है, तो भी कोई नहीं कहता कि बैठिए। बूढ़ा आदमी खड़ा है और जवान आदमी बैठा है और वह ये-तू करके बोल रहा है कि जाओ यह करो, वह करो। बूढ़े आदमी से कोई नहीं कहता कि बैठ जाओ। बूढ़ा आदमी दिखाई ही नहीं पड़ता।

वह भी किसी का बाप है। लेकिन गरीब का बाप भी किसी का बाप होता है? फिर एक पैसे वाला आ जाता है। दो कौड़ी का आदमी है। लेकिन पैसा उसके पास बहुत है। और आप उठ कर खड़े हो गए हैं, और जी-हजूरी कर रहे हैं, और बैठिए, और बैठिए। है तो दिमाग हमारा भी वही। वही उसका था, लेकिन वह बड़ा व्यवस्थित था। उसने सात नंबर की सात कुर्सियां बना रखी थीं। आदमी देख कर नंबर की कुर्सी बुलवाता था। सबसे कमजोर आदमी को तो ऐसे ही खड़ा रखता था, बैठने ही नहीं देता। अदालत थी उसकी। अपनी कुर्सी पर बैठा रहता था। फिर आदमी कोई अंदर आता, तो चपरासी से कहता, जाओ, नंबर एक ले आओ, या नंबर दो ले आओ, या तीन ले आओ, या सात ले आओ। सात नंबर की कुर्सियां थीं।

सात नंबर की कुर्सी सबसे छोटे आदमी के लिए थी। और आठ नंबर के लिए तो कोई कुर्सी ही नहीं थी। उसको ऐसे ही खड़ा रहना पड़ता था। सातवें नंबर की भी कुर्सी ही क्या थी, एक मुडा था।

एक आदमी आया एक दिन सुबह, और यह घटना कहानी नहीं है, यह घटना असलियत है। और डाक्टर पट्टाभि सीता रमैया ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि वे उस मजिस्ट्रेट से परिचित थे, और उस अदालत की पूरे गांव में चर्चा थी। एक आदमी अंदर आया, बूढ़ा आदमी है, लकड़ी टेक रहा है, कपड़े पुराने हैं। देखा कि खड़े-खड़े काम चल जाएगा। तो खड़े ही रहने दिया।

लेकिन उस बूढ़े ने ऐसे हाथ उठा कर अपनी घड़ी देखी। घड़ी कीमती मालूम पड़ी। मजिस्ट्रेट ने फौरन कहा अपने चपरासी को, जा नंबर तीन ले आ। वह तीन लेकर आ रहा था, तब तक उस बूढ़े ने कहा, आप शायद पहचाने नहीं, मैं फलां-फलां गांव का जमींदार, रायबहादुर, फलां-फलां।

अरे, रायबहादुर! नौकर तीन नंबर की कुर्सी लेकर आ रहा था, मजिस्ट्रेट ने कहाः रख, भीतर रख, वापस भीतर रख, नंबर दो की लेकर आ।

नौकर नंबर दो की ला रहा था, उस रायबहादुर ने कहाः नहीं, आप पहचाने नहीं, पिछले महायुद्ध में दस लाख रुपये सरकार को दिए थे।

नौकर तब तक नंबर दो की ला रहा था, मजिस्ट्रेट ने कहाः अंदर रख, अंदर रख, नंबर एक की लेकर आ।

उसे बूढ़े आदमी ने कहाः मैं खड़े-खड़े थक गया, आखिरी नंबर की बुला लो, क्योंकि मैं दस लाख रुपये और देने के ख्याल से आया हूं।

आदमी ऐसे नापा जाता है। यही आदमी रहता है। अगर इसके पास रुपये न होते, तो आदमी दूसरा होता? अगर इसके पास अच्छी घड़ी न होती, तो आत्मा दूसरी होती? अगर इसने दस लाख रुपये न दिए होते तो, तो बस यह कुछ न था, फिर ना-कुछ था, फिर कुछ मतलब का न था। यह हमारा मूल्यांकन है। हम सपने तोल रहे हैं कि सत्य तोल रहे हैं? सत्य तो आदमी है, उसके भीतर की आत्मा है वह जो है।

ये सपने हैं कि उसके पास कैसी घड़ी है, कैसा मकान है, कैसी पदवी है। ये सपने हैं जो चारों तरफ से जुड़े हैं। लेकिन हम सब सपने ही पहचानते हैं। क्योंकि हम खुद उन्हीं सपनों में जीते हैं, उन्हीं का आग्रह रखते हैं, वही हम होना चाहते हैं।

सपनों की दुनिया कपड़ों की दुनिया है। सपनों की दुनिया बाहर की आंखों की दुनिया है। भीतर कोई सपना नहीं है, सब सपने बाहर हैं। लेकिन जो तोड़ेगा इनको, जागेगा इनसे, लौटेगा भीतर की तरफ। तो हमें देखना यह है, दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। एक-एक को यह जानना चाहिए कि मैं भी तो एक ड्रीमर, एक सपना देखने वाला नहीं हूं, स्वप्न द्रष्टा, एक स्वप्न निर्माता, मैं भी तो सपने नहीं बना रहा हूं?

सब बना रहे हैं हम। कितने-कितने सपने हैं हमारे। क्या-क्या हो जाने की इच्छा है। क्या-क्या बन जाने का ख्याल है। क्या-क्या! कभी-कभी हम बन ही जाते हैं! कौन नहीं है जो कभी रास्ते पर चलते-चलते एकदम राष्ट्रपति नहीं हो जाता? कई दफे मन होने लगता है कि पड़ोस के लोग कुछ सोचेंगे नहीं मेरे बाबत। कोई संसद में कहेगा नहीं कि फलां आदमी को बना दो अब। ख्याल आ ही जाता है। कौन नहीं बन जाता? मन ही मन में क्या नहीं बन जाता? किसको लाटरी नहीं मिल जाती सड़क पर चलते-चलते? कि लाख रुपये मिल ही गए।

मेरे एक मित्र थे डाक्टर। दिन-रात क्रासवर्ड प.जल भरते थे, दिन-रात। और लाखों से नीचे नहीं उतरते थे। दवाखाना तो चलता नहीं था। क्योंकि वैसे आदमी का क्या दवाखाना चले। जब भी मरीज पहुंचे तब वे अपनी पहेली भर रहे हैं। मरीज से कह रहे हैं कि रुको। क्योंकि वहां लाखों का मामला है। दो रुपये की फीस के लिए कौन पंचायत में पड़े।

मैं भी कभी-कभी वहां जाता था। हर महीने उनको लाखों मिलते थे। मिले तो कभी नहीं थे। फिर ड्रा तारीख खो जाती थी। फिर मामला... दूसरी भरने लगते थे।

एक दिन मुझसे बोले कि इस बार तो बिल्कुल पक्का है। ये एक लाख रुपये निश्चित रहे।

मैंने कहा कि अगर एक लाख मिल जाएं, तो एक काम करना, गांव की लाइब्रेरी के लिए कुछ चंदे की जरूरत है, कुछ उसमें दोगे?

सोचने लगे कि कितना दें। बड़ी मुश्किल से बोले कि पांच हजार दे दूंगा। एक लाख मिलने को थे, पांच हजार, ऐसा कष्ट मालूम पड़ा।

मैंने कहाः नहीं, ज्यादा हो जाएंगे पांच हजार, आपका मन बहुत भारी है।

आप कहते तो ठीक हैं, गरीब आदमी हूं, पांच हजार भी बहुत मुश्किल है, ढाई हजार पक्का रहा। बिल्कुल ढाई हजार दे दूंगा।

मैंने कहाः लिख कर दे दो, बदल जाओ।

लिखते वक्त कहने लगे कि ढाई हजार! और किसने क्या दिया है? गांव में और कौन कितना दे रहा है? बड़े सेठ गांव के जो हैं वे कितना दे रहे हैं?

मैंने कहाः वे तो केवल दो सौ एक रुपया दे रहे हैं।

तो कहाः मुझ गरीब डाक्टर को आप ढाई हजार! दो सौ एक वे देते हैं, तो दो सौ एक मुझसे ले लें। अभी वह मिलने वाली है, पहेली अभी मिल नहीं गई है। और मिलने वाले हैं लाख उसमें। और मामला बिल्कुल पक्का है।

जैसी मर्जी लिख दो।

लिखने की क्या बात है, आपसे बात हो गई, दे ही देंगे।

मैं तो गपशप करके वापस लौट आया, हंसता हुआ, सोचता हुआ कि आदमी भी कैसा है! आदमी कैसा है, कैसा दिमाग है!

रात को कोई ग्यारह बजे, मैं अपनी छत पर सोया था, गर्मी के दिन थे, नीचे से उन्होंने आवाज दी कि सुनिए।

मैंने कहाः क्या मामला है?

उन्होंने कहाः देखिए इस बार रहने दीजिए। अगली बार जब मिलेगा, तब दे देंगे।

ग्यारह बजे रात तक, सोच कर फिर आए वापस। आधा मील फासला था, मेरे और उनके घर का।

मैंने कहाः आप सुबह बता देते।

उन्होंने कहाः नींद ही नहीं आई। कि अगली बार पक्का मानिए। वह मिली तो है ही नहीं। अगली बार का तो कोई सवाल नहीं उठा।

लेकिन आदमी कैसे जीता है? और हम सब ऐसे जीते हैं। उन पर हंसना मत। क्योंकि वह आदमी कोई खास नहीं है। बिल्कुल हमारे ही, हम ही जैसे आदमी हैं। हम सब ऐसे ही जीते हैं। बिल्कुल ऐसे ही जीते हैं।

यह जो चित्त है, ऐसा जीने वाला चित्त सत्य को जान सकता है? कौन आदमी है जो सपने खड़े नहीं किए हुए है? कितने दूर तक खड़े किए हुए है। कौन आदमी है जिसने सपनों की नावें नहीं चला दी हैं सागरों में? अब कागज की नाव भी कमजोर होती है, लेकिन सपने की नाव तो और भी कमजोर होती है।

कागज की नाव तक डूब जाती है। सपने की नाव तो चलती ही नहीं। लेकिन सब चला रहे हैं। फिर जब नावें डूबती हैं तो दुख होता है। तब हम जल्दी दूसरी नावें बना लेते हैं। एक डूबी कि हमने दूसरी बनाई।

एक-एक क्षण में व्यक्ति को सजग होकर जांच करनी पड़ती है भीतर कि कहां-कहां सपना है। और दिखाई भर पड़ जाए कि यह सपना रहा, सपना तत्क्षण गिर जाएगा। यह पता भर चल जाए कि यह रहा सपना मेरा, मैं सपने में चला, सपना फौरन गिर जाएगा। बैठे हैं, कुर्सी पर बैठे हैं, और दिमाग सपने देखने लगा। दिवा स्वप्न चल रहे हैं। यह जो चित्त की दशा है, यह ध्यान में सबसे बड़ी बाधा है। ड्रीमिंग माइंड जो है, सपने देखने वाला चित्त जो है, वह ध्यान में सबसे बड़ी बाधा है। ध्यान में वह जाता है जो स्वप्न तोड़ देता है।

लेकिन पहचान हमें नहीं है। दूसरे की बात तो हमें पहचान में आ जाएगी कि हां, यह आदमी सपना देख रहा है। लेकिन हम अपनी तरफ जब जांचने जाएंगे तो हमें पता ही नहीं चलता कि हम सपने देख रहे हैं।

हर आदमी जब निकलता है अपने घर से, तो देखें, कैसे आईने में सजता है, संवरता है, बनता है। इसी ख्याल में है कि सारा गांव उसको देखेगा। हालांकि किसी को फुरसत है गांव में देखने की किसी को?

इतना तैयार होकर जा रहा है। इतनी तैयारी जब मैं देखता हूं, इतनी तैयारी हो रही है, तब मेरे मन में बड़ा दुख होता है कि गांव के लोग तो बड़े कठोर है, कोई देखेगा ही नहीं। यह बेचारा कितनी मेहनत कर रहा है। यह निकल जाएगा।

अब गांव के लोगों को फुरसत कहां है। वे खुद अपनी तैयारी करके आए हैं, वे चाहते हैं कोई दूसरा देखे। अब बड़ी मुश्किल है। कौन किसको देखे?

एक बाप अपने बेटे से कह रहा था कि भगवान ने तुम्हें बनाया है इसलिए कि तुम दूसरों की सेवा करो। पुराना जमाना होता तो बेटा मान लेता। अब बेटे काफी समझदार हैं। उस बेटे ने कहाः मैं समझ गया कि भगवान ने मुझे इसलिए बनाया है कि मैं दूसरों की सेवा करूं, मैं यह पूछता हूं कि भगवान ने दूसरों को किसलिए बनाया है? यह भी तो पता हो जाना चाहिए न उनको, दूसरों को किसलिए बनाया हुआ है? अगर उनको भी दूसरों की सेवा के लिए बनाया है, तो बड़ा ही जाल पैदा कर दिया। कि हम उनकी सेवा करें, वे हमारी सेवा करें। इससे तो बेहतर यह है कि हम अपनी-अपनी सेवा कर लें।

हर आदमी निकल रहा है घर से कि दूसरे उसे देखें। हर आदमी। दूसरा भी इसीलिए निकला है कि दूसरे उसे देखें। इससे तो अच्छा है कि हम अपना-अपना आईना अपने साथ रखें। और जब तबीयत हो देख लें। कुछ होशियार स्त्रियों ने रखना शुरू कर दिया है। यह जो पुरुष है, यह उतना होशियार नहीं है। या उतना हिम्मतवर नहीं है।

कौन किसको देखे? किसको फुरसत है? लेकिन क्या सपना देख रहे हैं फिजूल? अगर दस लोगों ने सड़क पर झांक कर भी देख लिया तो मतलब क्या है? क्या होगा उससे? लेकिन एक सपना है कि सारी दुनिया मुझे देखे। लेकिन किसलिए? और जरूरत क्या है? और मतलब क्या है? प्रयोजन क्या है? और फायदा क्या है? और होगा क्या? पर हमें ख्याल में नहीं है कि जब हम जूते का बंध भी लगा रहे हैं, जब टाई कस रहे हैं, तब पता नहीं किस काल्पनिक दुनिया में जी रहे हैं कि कौन देख लेगा। कपड़े को भी हम कोई तन ढंकने के लिए नहीं पहन रहे हैं। कपड़े भी कुछ और मतलब ही रखते हैं।

तन ढंकने के लिए तो कोई भी कपड़ा काम दे सकता है। लेकिन तन ढंकने का सवाल नहीं है इतना। सवाल कुछ और है। तन ढंकना बिल्कुल गौण हो गया है। मामला कुछ और है। सच तो यह है कि बहुत कम लोग शरीर को ढंकने के लिए कपड़ा पहन रहे हैं। शरीर को प्रकट करने के लिए कपड़ा पहना जा रहा है। जो कपड़ा शरीर को जितना प्रकट करता हो, उतना बढ़िया कपड़ा समझा जा रहा है। इसलिए तो कपड़े एकदम चुस्त होते चले जा रहे हैं। आदमी की जान निकल रही है भीतर। और कपड़े कसते चले जा रहे हैं। क्योंकि कसे हुए कपड़े में से शरीर दिखाई पड़ता है, नहीं तो दिखेगा नहीं। तो जान निकली जा रही है।

अगर आदमी को देखें, उसकी हालतें देखें। जितना कपड़ा कसता चला जाता है, भीतर जान निकल रही है। लेकिन संयम साधे हुए हैं। संयम साधे हुए चले जा रहे हैं। तपश्चर्या कर रहे हैं। गर्म मुल्क है, आदमी टाई कसे हुए है। फांसी नहीं लगा लेते! गर्म मुल्क है, आदमी जूता और मोजा पहने हुए है। सच्चाई में जी रहे हो, कहां जी रहे हो? पूरे वक्त न मालूम कोई दूसरा मूल्य काम कर रहा है।

गालिब को एक दफा बहादुरशाह जफर ने बुलाया निमंत्रण के लिए, सम्राट ने। और गालिब तो गरीब आदमी हैं। तो पुराने कपड़े हैं। कवि हैं, और कवि अब तक अमीर तो नहीं हो सका। कवि अमीर हो सके, इसके अभी बहुत जमाने में देर है, कवि तो अमीर नहीं हो सकता। सिर्फ चोर अमीर हो सकते हैं। कवि कैसे अमीर होगा? हां, अगर कवि भी चोर हो, यानी दूसरों की कविताएं चुराता हो, तो हो सकता है।

लेकिन वह गालिब तो गरीब आदमी है। और कविताओं के लिए कुछ मिलता है? अब सम्राट ने बुलाया है, तो वह चल पड़ा। मित्रों ने कहाः पागल हो गए हो, ये कपड़े पहन कर जा रहे हो। दरवाजे के भीतर दरबान घुसने नहीं देगा।

गालिब ने कहाः मुझे बुलाया है कि मेरे कपड़ों को? नहीं माना। कुछ नासमझ नहीं मानते। नासमझ ही रहा होगा गालिब। समझदार तो, समझदार यानी चालाक, यानी कनिंग। वे जितने चालाक थे, वे तो ठीक कह रहे थे। वे कह रहे थे, कोई पहचानेगा नहीं, तुम कहां जा रहे हो ये कपड़े पहन कर? सम्राट ने तुम्हारी कविताएं सुन ली हैं। कविताओं की खबर पहुंच गई है। लेकिन दरबान को क्या पता?

नहीं माना गालिब। चला गया। द्वार पर जाकर बोला कि मुझे भीतर जाने दें, मैं सम्राट का मित्र हूं, उन्होंने भोजन के लिए निमंत्रण भेजा है।

पहरेदार ने जवाब तो नहीं दिया, एक धक्का दिया। और कहा कि जितने भी गांव के भिखमंगे हैं, सभी सम्राट के दोस्त! दिन भर यही परेशानी! फिर कोई आ गया। जो देखो वही महल में जाने को आए, रास्ते पर लगो अपने।

गालिब की तो समझ के बाहर हो गया। सोचा कि मित्र ही ठीक कहते थे। वापस लौट पड़ा। मित्रों से कहाः तुम ठीक कहते थे। उधार कपड़े ले आओ।

पड़ोस-पास से उधार कपड़े मांग लाए गए। अच्छा कमीज है, कोट है, कुर्ता है, पगड़ी है, जूते हैं, सब उधार। उधार कपड़े पहन कर चल पड़ा गालिब। अब बड़ा जंच रहा है। उधार आदमी बहुत जंचते हैं। अब जो भी देखो वही झांक कर देख रहा है उसी सड़क पर, कौन जा रहा है? दरबान झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा कि आइए, अंदर आइए। आप कौन हैं? गालिब ने कहाः ये! वह कुछ समझा नहीं कि क्या मतलब। डर के मारे कि कोई बड़ा आदमी है, भीतर जाने दिया। गालिब ने कहाः ये! वह दरबान समझा नहीं कि क्या मतलब है, कहा, अच्छी बात है, भीतर जाइए। इतना बड़ा आदमी है, सोने की जंजीर लटकी हुई है। अब यह थोड़े ही पता लगाना पड़ता है कि जंजीर किसकी है? किसी की हो। लटकी होनी चाहिए। और जिस पर लटकी हो, उसी की है। और क्या, इससे ज्यादा और क्या सबूत हो सकता है।

भीतर गया गालिब। सम्राट, बड़ी देर, परेशान हो गए हैं। समय गुजर गया। कहा कि बड़ी देर लगा दी?

गालिब ने कहा कि नहीं, देर नहीं लगाई। कुछ जरा अड़चन में फंस गया, कुछ नासमझी में फंस गया, कुछ भूल-चूक में पड़ गया। समझदारों की न मानी, इससे देर हो गई।

सम्राट कुछ समझा नहीं कि वह क्या बातें कर रहा है। फिर कहा, अच्छा बैठिए, बहुत देर हो गई, खाना सामने रखा है।

खाना उठाया है गालिब ने और पगड़ी से बोला कि ले पगड़ी खा। कोट से बोला कि ले कोट खा। सम्राट ने कहाः क्या करते हैं आप? आपके खाने की बड़ी अजीब आदतें मालूम होती हैं। यह क्या कर रहे हैं?

गालिब ने कहाः मैं तो बहुत देर पहले भी आया था। मैं तो लौट गया। अब तो कपड़े आए हैं। अब कपड़े ही भोजन करेंगे। माफ करिए, आदत का सवाल नहीं। मैं हूं ही नहीं। मैं तो जा चुका वापस। इस बार कपड़े ही आ गए हैं। कपड़े खाएंगे, कपड़ों से मिलिए, बातचीत करिए, गले लगिए।

ठीक कहा उसने। कपड़े ही हैं। और उन्हीं कपड़ों में हम सब जी रहे हैं। और सब झूठे कपड़े हैं। वह जो, भीतर जो सच है, वह तो दब गया है। सपनों के बहुत कपड़े हैं--पद के, प्रतिष्ठा के, मान-मर्यादा के, ज्ञान के, पांडित्य के, त्याग तक के कपड़े हैं।

एक आदमी को देखो जरा, त्याग कर दे तो कैसा अकड़ कर चलता है। क्या अकड़ रहे हैं आप? कि उन्होंने सात दिन का उपवास किया है।

तुम्हारी किस्मत खराब, भूखे मरो। जो तुम्हें करना है, वह करो। लेकिन अकड़े किसलिए जा रहे हो? तुम सात दिन उपवास करो, तो इसमें किसी का क्या कसूर है? बैंड-बाजा बजा कर गांव के बच्चों की परीक्षा क्यों खराब कर रहे हो। यह अकड़ किसलिए? तुम्हारी मौज है कि तुम सात दिन सात बार खाओ दिन में या सात दिन बिल्कुल मत खाओ।

नहीं, लेकिन वह सारी दुनिया को खबर करके बता रहा है कि मैंने सात दिन उपवास किया। मैं कोई खास आदमी हो गया। खूब सपने में जी रहे हो। भूखे मरने से कोई खास हो जाएगा। सब तरह के, न मालूम किस-किस तरह के हम, इस तरह की बातें जिनका जीवन के सत्य तक जाने से कोई संबंध नहीं। लेकिन जीवन को झुठलाने और असत्य करने से बहुत संबंध है। उनसे हम बंधे हैं।

अगर इनसे हम बंधे हैं, तो हमारी यात्रा ध्यान की तरफ नहीं हो सकती। इसलिए दूसरी बात, अभी जो हम ध्यान के लिए बैठेंगे, तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि थोड़ा जागें कि हमने क्या-क्या सपने देखे हैं, और उनको क्षमा करें, जाने दें।

बड़ा बुरा लगेगा मन को। क्योंकि सपने उखड़ते हैं तो बड़ी चोट पड़ती है। क्योंकि सपने ही सब कुछ रहे हैं। वही हमारी संपत्ति, वही हमारा प्राण, वही हम। सपने उखड़ते हैं, तो जान निकलती है, वही तो सब कुछ है। उखड़ गए तो हम तो कुछ न रह जाएंगे। नंगे, ना-कुछ। कुछ हमारे पास बचेगा नहीं। कपड़ों के सिवाय और क्या है? ख्यालों के सिवाय और क्या है? चारों तरफ बंधी हुई बातचीत के सिवाय और क्या है हमारे पास? वही संपदा है, वही प्राण है, वही हमारी आत्मा हो गई है, उसको ही कहते हैं छोड़ दें, तो गए, फिर हम खो जाएंगे।

लेकिन जो खोने को राजी है, वह पाने का हकदार हो जाता है। जो अपने को मिटाने को राजी है, वह स्वयं होने का अधिकारी हो जाता है।

और अपने को मिटाना क्या है? मिटता केवल वही है जो मिट सकता है। सपना ही मिट सकता है। वह तो मिट ही नहीं सकता जो है। सत्य तो मिट नहीं सकता। इसलिए उखाड़-उखाड़ कर भीतर से जहां-जहां मालूम पड़े कि यहां-यहां मैंने देखा स्वप्न और बांध लिया भवन कल्पना का, वहां-वहां गिरा देना, वहां-वहां मिटा देना, सब तरफ कर देना।

जैसे बच्चे नदी की रेत पर इकट्ठे हो जाते हैं। रेत के घर बनाते हैं और लड़ते हैं कि मेरे घर से दूर रहना। अपनी टांग दूर रखो, अपना पैर दूर रखो, मेरा घर न गिर जाए। एक तो रेत का घर बनाते हैं। फिर दूसरों से कहते हैं, दूर रहो। कोई पास मत आ जाना, मेरा रेत का घर। मेरा घर गिर न जाए।

एक तो रेत का घर बनाते हो, फिर गिरने से डरते हो। फिर दूसरा कोई पास न आ जाए। फिर अगर एक बच्चे का पैर दूसरे बच्चे के घर पर पड़ जाए, तो झगड़ा हो जाता है, मार-पीट भी हो जाती है। कपड़े भी फाड़ दिए जाते हैं। खून भी निकल जाता है। सिर भी फोड़ दिए जाते हैं।

कोई पूछे कि क्या कर रहे हो? रेत के घरों के लिए सिर फोड़ रहे हो, कपड़े फाड़ रहे हो, मार रहे हो?

और फिर सांझ हो गई है। और सूरज ढलने लगा है। और मां की घर से आवाज आती है कि लौट आओ। खाने का वक्त हो गया है। और लड़के अपने घरों में खुद ही पैर मार कर भाग जाते हैं। और रेत पर सब पड़ा रह जाता है। जिसके लिए लड़े थे, वह सब वहीं छूट जाता है।

लेकिन लड़कों की जो बात है, वही बूढ़ों की भी है। जिंदगी की रेत पर बहुत घर बनाते हैं सपनों के, फिर लड़ते हैं पड़ोसी से, इससे-उससे। अदालतें हैं, मुकदमे हैं। और न मालूम क्या-क्या जाल है। और काहे का जाल है? कि कुछ रेत के घर मैंने बनाए, कुछ रेत के घर आपने बनाए। एनक्रोचमेंट हो गया है। मेरा घर आपके घर

पर चढ़ गया है। आपका घर थोड़ा मेरे घर के इधर आ गया। आपका छप्पर थोड़े मेरे घर के भीतर आ रहा है। एनक्रोचमेंट। एक-दूसरे के सपने में घुस गया सपना। जान निकल रही है। अदालतें खड़ी है वहां। देखें, ढोंग कैसा अदभुत है। नासमझ लड़ रहे हैं। और अदालतों में और नासमझ, बड़े मोरमुकुट बांधे हुए बैठे हैं, फैसले दे रहे हैं।

और मजा यह है कि किस बात पर लड़ रहे हो? क्यों लड़ रहे हो? यह अगर बोध थोड़ा जगे। कोई दूसरा नहीं जगा सकता। यह तो आपको ही इंच-इंच अपनी जिंदगी देखनी पड़ेगी। किस बात के लिए जी रहा हूं? किस बात के लिए लड़ रहा हूं? क्या बना रहा हूं? क्या खोज रहा हूं? क्या होने की आकांक्षा कर रहा हूं?

और अगर इसकी खोज जारी हो, तो अचानक ऐसी शांति भीतर आनी शुरू हो जाएगी, ऐसा दिखने लगेगा साफ--यह रहा सपना, यह गया। सपने गिर जाएं और सत्य प्रकट हो जाता है। सत्य सदा से है, सपनों में दबा है। जैसा कल मैंने कहाः और सत्य कहीं सपनों में दब सकता है? वह ऐसे ढंग से दबता है जैसे चांद कुएं में उलझ जाता है। सच तो नहीं दब सकता है। सत्य कैसे सपने में दब सकता है?

हां, सपने के कुएं में चांद का प्रतिबिंब फंस सकता है। और चांद ऊपर भागा चला जा रहा है। वह जो हम हैं असली में भीतर, वह तो सदा बाहर है। लेकिन हमारे चारों तरफ सपने का जाल गूंथा है। सपने की जाल में परछाईं बन रही है। परछाईं फंस गई है, अब परेशान हैं।

ध्यान का अर्थ हैः इस परछाईं को तोड़ देना। परछाईं से हट जाना। उसको जान लेना जिसकी परछाईं है।

अब हम रात के प्रयोग के लिए बैठेंगे। दो मिनट समझ लें, क्या करेंगे।

सच तो यह है कि करना कुछ नहीं है। न करने की हालत में सब छोड़ देना है। एक दस मिनट के लिए सब छोड़ कर हम बैठेंगे। शरीर को शिथिल छोड़ देंगे। आंख बंद कर लेंगे। और एक ही बात देखने की कोशिश करेंगे कि सब मुझसे बाहर है। और जो भी मुझसे बाहर है वह सपना है। मैं जो भीतर हूं, अकेला मैं, चेतना, कांशसनेस, मेरी आत्मा, मेरा जो साक्षी होना है, वही सत्य है। और धीरे-धीरे उस साक्षी में थिर हो जाना है। थिर हो जाना हो जाता है। एक बार साफ ख्याल में आना शुरू हो। वह ख्याल में आ जाएगा।

फिर दस मिनट के लिए मैं छोड़ दूंगा। फिर आप सिर्फ साक्षी होकर रह जाएंगे। थोड़े-थोड़े फासले पर बैठें। कोई किसी को छूता न हो। एनक्रोचमेंट बिल्कुल नहीं। कोई किसी के भीतर नहीं घुस जाना चाहिए। न किसी को छूना चाहिए। थोड़े-थोड़े हट जाएं। और कोई बातचीत न करें। कोई बातचीत न करें। किसी को जाना भी हो, तो भी दस मिनट बैठ कर जाए। ताकि दूसरों को कोई डिस्टर्बेंस न हो। आपको न भी करना हो तो बाहर चुपचाप बैठ जाएं। लेकिन आप जाने की फिकर न करें कोई भी। क्योंकि दूसरों को बाधा पड़ेगी।

आप जितनी देर तक जाएंगे, उतनी देर तक गड़बड़ जारी रहेगी। दूसरों का ख्याल रख कर भी बैठ जाएं। अगर किसी को जल्दी भी जाना हो, तो भी दस मिनट चुपचाप बाहर बैठ जाए। और अलग-अलग फैल जाएं। कहीं भी बैठ जाएं।

पांचवां प्रवचन

दुख के प्रति जागरण

मेरे प्रिय आत्मन्!

मनुष्य दुख में है और सुख की केवल कल्पना करता है। मनुष्य अज्ञान में है और ज्ञान की केवल कल्पना करता है। मनुष्य ठीक अर्थों में जीवित नहीं है, जीवन की केवल कल्पना कर रहा है।

आज की सुबह की इस बैठक में इस संबंध में मैं कुछ कहना चाहूंगा कि हम जो कल्पना करते हैं उसके कारण ही हम जो हो सकते हैं वह नहीं हो पाते हैं। जैसे कोई बीमार आदमी कल्पना कर ले कि वह स्वस्थ है, तो फिर स्वास्थ्य की दिशा में कदम उठाना बंद कर देगा। जब वह स्वस्थ है, तो स्वस्थ होने का कोई सवाल नहीं है। अगर कोई अंधा आदमी कल्पना करने लगे कि उसे प्रकाश का पता है कि प्रकाश कैसा होता है, तो फिर वह अंधा आदमी आंख की खोज बंद कर देगा।

अंधे को पता होना चाहिए कि उसे प्रकाश का पता नहीं है। और बीमार को ज्ञात होना चाहिए कि वह स्वस्थ नहीं है। और दुखी को ज्ञात होना चाहिए कि सुखी वह नहीं है।

लेकिन अपने को राहत और सांत्वना देने के लिए हम जो नहीं हैं उसकी हम कल्पना कर लेते हैं। दुखी आदमी सुख की कल्पना में जी रहा है। और ध्यान रहे, सुख की कल्पना के कारण दुख मिटता नहीं, सुख की कल्पना के कारण दुख चलता ही चला जाता है और बढ़ता चला जाता है।

यदि दुख को मिटाना हो तो सुख की कल्पना छोड़ देनी पड़ेगी और दुख को ही जानना पड़ेगा। जो दुख को जानता है, उसका दुख मिट जाता है। जो सुख को मानता है, उसका दुख छिप जाता है; मिटता नहीं, भीतर चलता चला जाता है। अगर अज्ञान को मिटाना है, तो ज्ञान की कल्पना नहीं करनी है, अज्ञान को ही जानना है। अज्ञान को जो जानता है, वह ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जो ज्ञान को, झूठे ज्ञान को, कल्पित ज्ञान को पकड़ लेता है, उसका अज्ञान छिप जाता है, अज्ञान मिटता नहीं। और ज्ञान उसे मिलता नहीं क्योंकि कल्पित ज्ञान का कोई भी अर्थ नहीं है।

इसे दो-तीन कोणों से समझना अच्छा होगा।

जैसे, मैं पूछना चाहता हूं, क्या हम सुखी हैं? क्या हमने कभी भी सुख जाना है? अगर कोई बहुत निष्पक्ष होकर अपने जीवन पर लौट कर देखेगा तो पाएगा, सुख? सुख तो कभी नहीं जाना, दुख ही जाना है।

लेकिन दुख को हम भुलाते हैं। और जिस सुख को नहीं जाना उसको कल्पित करते हैं, उसको थोपते हैं। हां, एक आशा है मन में कि कभी जानेंगे। और आशा उसी की होती है जिसे न जाना हो। सुख को जाना नहीं है, इसलिए निरंतर सोचते हैं कल, आने वाले कल, भविष्य में सुख मिलेगा। जो और भी ज्यादा काल्पनिक हैं, वे सोचते हैं, अगले जन्म में। जो और भी ज्यादा काल्पनिक हैं, वे सोचते हैं, किसी स्वर्ग में, किसी मोक्ष में सुख मिलेगा।

अगर आदमी ने सुख जाना होता, तो स्वर्ग की कल्पना कभी न की गई होती। स्वर्ग की कल्पना उन लोगों ने की है जिन्होंने सुख कभी भी नहीं जाना। जो नहीं जाना है, उसको स्वर्ग में निर्मित करने की आशा बांधे बैठे हुए हैं।

सुख हमने जाना है कभी? कोई ऐसा क्षण है जीवन का जब हम कह सकें कि मैंने जाना सुख? और ध्यान रहे, बहुत जल्दी में ऐसा मत कह देना। क्योंकि जिसने एक बार सुख जान लिया, वह दुख जानने में असमर्थ हो जाता है। जिसने सुख जान लिया, वह दुख जानने में असमर्थ हो जाता है। फिर वह दुख जानता ही नहीं। फिर वह दुख जान ही नहीं सकता। क्योंकि जो सुख जानता है उसे यह भी पता चल जाता है कि मैं सुख हूं। यह बहुत मजे की बात है। और चूंकि हम दुख जानते ही चले जाते हैं, यह इस बात का सबूत है कि सुख हमने कभी जाना नहीं। आशा है, कल्पना है। और कभी-कभी सुख को थोप भी लेते हैं।

एक मित्र आया है, गले लग गया है, और हम कहते हैं, बहुत सुख आ रहा है। गले मिल कर कितना सुख मिला है? उसके आलिंगन में कितना रस मिला है? लेकिन कभी आपने सोचा, जो मित्र गले आकर मिल गया है वह गले मिला ही रहे--दस मिनट, पंद्रह मिनट, बीस मिनट, और गला छोड़े ही नहीं, तब ऐसी तबीयत होगी कि कोई पुलिसवाला निकल आए, किसी तरह इससे छुटकारा दिलाए, यह क्या कर रहा है। और अगर घंटे, दो घंटे वह गले को न छोड़े, तो फांसी मालूम पड़ेगी।

अगर सुख था, तो और बढ़ जाता। जो एक क्षण में सुख मिला था, तो दस क्षण में और दस गुना हो जाता। लेकिन एक क्षण में सुख लगा था और दस क्षण में फांसी मालूम होने लगी। सुख नहीं था, कल्पित था, एक क्षण में खो गया। जो कल्पित है, वही क्षण भर टिकता है। जो सत्य है, वह सदा है। जो कल्पित है, वही क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है, उसे कल्पित जानना। क्योंकि जो है वह शाश्वत है, वह सदा है। वह क्षण में नहीं है, वह नित्य है, वह कभी मिटता नहीं है, वह है, और है, और है। था, और होगा, और होगा। कभी ऐसा क्षण नहीं आएगा कि वह न हो जाए। जो सुख दुख में बदल जाता है उसे कल्पित जानना, वह सुख था ही नहीं। और सब सुख जो हम जानते हैं, दुख में बदलने में समर्थ हैं।

खाना खाने आप बैठे हैं, और बहुत सुखद खाना लग रहा है, और खाते चले जाएं, और एक सीमा पर दुख शुरू हो जाएगा। और अगर खाते ही चले गए, जैसा कि कुछ लोग खाते ही चले जाते हैं, तो सारी जिंदगी खाने के दुख से ग्रसित हो जाती है। डाक्टर कहते हैं, आप जितना खाते हैं, उससे आधे से आपका पेट भरता है, आधे से डाक्टरों का भरता है। अगर आप आधा ही खाएं तो किसी डाक्टर की कोई जरूरत न रह जाए। आप ज्यादा खा जाते हैं, बीमारी चली आती है और डाक्टर उसके पीछे चला आता है। अगर हम खाते ही चले जाएं तो खाना मौत बन सकती है। ज्यादा खाने से आदमी मर सकता है।

एक गीत कोई आपको सुनाता है, आप कहते हैं, कितना सुख आया। वह दुबारा सुनाता है, तब आप नहीं कहते कितना सुख आया, तब आप चुप रह जाते हैं। वह तीसरी बार सुनाता है, आप कहते हैं, बस भी करो। वह चौथी बार सुनाता है, आप कहते हैं कि अब क्षमा करिए। वह पांचवीं बार सुनाएगा, आप भागने की कोशिश करेंगे। और अगर द्वार बंद हो, और अगर वह छठवीं बार सुनाए, तो आपका मस्तिष्क घूमने लगेगा। और अगर वह सुनाता ही चला जाए, तो आप पागल हो जाएंगे। वही गीत पागल कर देगा जो जिसने कि पहली दफा सुख दिया था।

सुख अगर था तो दस बार सुनने से दस गुना हो जाना था। इसे पहचान के लिए कसौटी समझ लेना। इसे कसौटी मानना कि जो सुख क्षण में विलीन हो जाता है और उसी की पुनरुक्ति दुख ले आती है, वह सुख रहा ही न होगा, सुख आपने कल्पित किया होगा। एक बार कल्पना कर ली, दुबारा कल्पना करनी मुश्किल हो गई, तीसरी बार कल्पना और मुश्किल हो गई, दस बार में कल्पना उखड़ गई। चीजें जैसी थीं वैसी साफ हो गईं और सामने हो गईं।

हमारे सब सुख दुख में बदल जाते हैं। सुख दुख हैं। हम सिर्फ सुख कल्पित करते हैं, ऊपर से मानते हैं कि यह सुख है। माना हुआ सुख कितनी देर टिक सकता है? सुख हमने जाना नहीं, सिर्फ कल्पना की है। दुख हमने जाना है। और कल्पना क्यों की है?

कल्पना इसीलिए की है कि अगर कल्पना न करें तो दुख हमारी जान ले लेगा। दुख हमारे प्राण ले लेगा। अगर हम कल्पना न करें, तो दुख के साथ जीएंगे कैसे? इसलिए झूठे सुख के जाल बुन कर हम दुख को बिताने की कोशिश करते हैं, भुलाने की कोशिश करते हैं। हमारा सारा जीवन दुख को भुलाने की एक लंबी कोशिश है और कुछ भी नहीं। लंबी कोशिश है दुख को भुलाने की।

नीत्शे बहुत हंसता था। और किसी ने नीत्शे को कहा कि तुम कितना हंसते हो, कितने सुखी हो?

नीत्शे ने कहाः यह मत पूछो, यह मत कहो। मेरे हंसने का कारण बिल्कुल दूसरा है।

उसके मित्रों ने कहाः और क्या कारण हो सकता है, सिवाय इसके कि तुम आनंदित हो?

उसने कहाः छोड़ो यह बात, आनंद को छोड़ कर और ही कोई कारण है। आनंद तो बिल्कुल कारण नहीं है।

मित्रों ने कहाः क्या कारण है?

नीत्शे न कहाः इसलिए हंसता हूं ताकि रोने न लगूं। अगर नहीं हंसूंगा तो रोना शुरू हो जाएगा। रोना भीतर चल रहा है। हंसने में भुला रखता हूं अपने को, ताकि रोना रुका रहे।

इसलिए दुनिया जितनी ज्यादा सुख की खोज में तल्लीन दिखाई पड़ती है, जानना कि दुनिया उतनी दुखी हो गई है। चौबीस घंटे सुख चाहिए। क्योंकि चौबीस घंटे दुख है। इसलिए हम मनोरंजन के नये-नये साधन ईजाद करते चले जाते हैं। मनोरंजन के साधनों की ईजाद दुखी दुनिया का सबूत है। जो आदमी दुखी नहीं है, वह मनोरंजन की खोज में कभी नहीं जाता।

सिनेमागृहों में जो लोग बैठे हैं, वे अगर सुखी होते, तो अपने घरों में होते। वे दुखी हैं इसलिए सिनेमागृहों में हैं। शराबघरों में जो लोग बैठे हैं, अगर वे सुखी होते, तो घरों में होते। शराबघरों में बैठे हैं, क्योंकि दुखी हैं। वेश्याओं के नृत्य जो देख रहे हैं, अगर वे सुखी होते, तो आंख बंद करके सुख में लीन होते। वे उन नृत्यों में बैठे हैं, वे दुखी हैं, वे दुख को भूलने की कोशिश कर रहे हैं। सब तरफ दुख को भुलाने की कोशिश चल रही है।

और यह मत सोचना कि सिनेमा में बैठा हुआ आदमी दुख भुला रहा है। शराब पीने वाला दुख भुला रहा है। वेश्या के दरवाजे पर बैठा हुआ आदमी दुख भुला रहा है। नहीं, मंदिर में बैठ कर जो भजन-कीर्तन कर रहा है, वह भी दुख भुला रहा है। इसमें कोई फर्क नहीं है। सुखी आदमी किसलिए जाकर झांझ-मंजीरे पीटेगा, पागल हो गया है! सुखी आदमी किसलिए हाथ-पैर जोड़ कर किसी मूर्ति के सामने खड़ा हो जाएगा? दुखी आदमी भुला रहा है, कोशिश खोज रहा है। राम-राम जपता है, जितनी देर राम-राम की धुन लगाए रखता है, दुख भूल जाता है। फिर दुख वापस खड़ा है। जितनी देर माला सरकाता है, दुख भूल जाता है। किसी भी चीज में उलझ जाता है, दुख भूल जाता है।

चाहे सिनेमा देखता हो, चाहे रामलीला देखता हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दुख भुलाने की कोशिश चल रही है। अपने को भुलाने की कोशिश चल रही है। शराब में भी वही हो रहा है और प्रार्थना में भी वही हो रहा है। एक बुरा रास्ता है भुलाने का, एक अच्छा रास्ता है भुलाने का। लेकिन दोनों रास्ते भुलाने के हैं। फॉरगेटफुलनेस के हैं। अपने को भुला लेना है किसी तरह।

जो आदमी दुखी है, वह भुलाना चाहता है। कोई ताश खेल कर भुला रहा है। कोई शतरंज खेल कर भुला रहा है। कोई गीता ही पढ़ रहा है। क्या कर रहे हैं आप? सुखी होने का हमें कोई पता नहीं। हम दुखी हैं। हम

किसी तरह इस दुख से बचना चाहते हैं, भूल जाना चाहते हैं। किसी तरह भूल जाना चाहते हैं। चाहे वेद के युग से उठा कर देखें, वेद के युग में सोमरस पीया जा रहा है। वह सोमरस यानी शराब। लेकिन ऋषि-मुनि शराब पीएं तो उसका नाम सोमरस है। साधारण आदमी सोमरस पीए तो उसका नाम शराब है।

वेद से लेकर अभी ठेठ आज के आधुनिक अमरीका का--सोमरस से लेकर मेस्कलीन और लिसर्जिक एसिड तक--आज सारी अमरीका में लिसर्जिक एसिड और मेस्कलीन और मारिजुआना, सब पीया जा रहा है। और अमरीका के बड़े से बड़े विचारक, अल्डुअस हक्सले जैसे लोग यह कहते हैं कि दुख इतना है कि भुलाने का कोई उपाय चाहिए। हम दुख भुलाना चाहते हैं। हमारे सुख के सारे उपाय कहीं दुख को भुलाने के मार्ग ही तो नहीं हैं?

और इसीलिए सब उपाय उखड़ जाते हैं। एक आदमी एक स्त्री के पीछे पागल है और सोचता है यह मिल जाए तो सुख हो जाएगा और जिस दिन वह मिल जाती है उसी दिन व्यर्थ हो जाती है।

प्रेयसियों के चेहरे तो लोग देखते हैं, पत्नियों के चेहरे किसी ने देखे हैं? जिसको घर ले आए, वह व्यर्थ हो जाती है। वह जो कल्पना थी, एक क्षण को टूट गई है, घर पत्नी आ गई, अब वह भूल गई।

पड़ोस के लोग उसको देख सकते हैं और उसमें सुख पा सकते हैं। लेकिन पति को अब कोई सुख नहीं मिलता मालूम होता है।

बायरन ने शादी की, अदभुत आदमी था, जब तक शादी नहीं हुई थी तो पागल था कि अगर इस स्त्री से शादी न हो सकी तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा। फिर उससे शादी करके चर्च से नीचे उतर रहा है, सीढ़ियों पर उसका हाथ हाथ में लिए हुए है। पीछे अभी चर्च की घंटियां बज रही हैं और मेहमान विदा हो रहे हैं। शादी हुई है अभी। अभी जो मोमबत्तियां जलाई थीं शादी के लिए, वे जल रही हैं, वे बुझी नहीं हैं। बायरन अपनी पत्नी का हाथ पकड़ कर, उतर कर बग्घी में बैठने को है और तभी सड़क पर एक दूसरी स्त्री दिखाई पड़ती है। बायरन बहुत ईमानदार आदमी होगा, उसने बग्घी में बैठ कर अपनी पत्नी को कहाः कैसा आश्चर्य, कल तक मैं सोचता थाः तू मिल जाएगी तो मुझे सब मिल जाएगा। और अभी, जब हम सीढ़ियां उतर रहे थे, वह सामने से जो स्त्री जा रही थी, मैं उसके पीछे हो लिया, तू मुझे भूल गई। और मन में हुआ, काश यह स्त्री मुझे मिल जाए! तू तो भूल ही गई, क्योंकि तू मेरी मुट्ठी में आ गई और बेकार हो गई। अब तू मेरी है और बेकार है। सारा आकर्षण दूर का है। सारा आकर्षण उसका है जो नहीं मिला। जो मिल गया वह व्यर्थ हो जाता है। क्यों?

क्योंकि जो नहीं मिला उसमें सुख की कल्पना जारी रह सकती है। लेकिन जो मिल जाता है उसमें सुख की कल्पना टूट जाती है, क्योंकि वह मिल गया। क्षण भर की झलक आई और खो गई। वह जो कल्पना थी, वह गई और नष्ट हो गई।

किसी एक कवि ने तो यह कहा है कि धन्य हैं वे प्रेमी जिन्हें उनकी प्रेमिकाएं कभी नहीं मिलती हैं, क्योंकि वे जीवन भर कम से कम सुख की कल्पना तो कर सकते हैं। और अभागे हैं वे प्रेमी जिनको उनकी प्रेमिकाएं मिल जाती हैं, क्योंकि मिल जाने के बाद पता चलता है यह तो नरक अपने हाथ से मोल ले ली है।

हमारे सारे सुख किसी भी तल पर हों, काल्पनिक हैं। और दुख एकदम वास्तविक है। दुख की तो कोई कल्पना नहीं करता। कौन करेगा दुख की कल्पना? दुख से तो हम बचना चाहते हैं। दुख की तो कोई कल्पना करेगा नहीं। दुख तो है और सुख काल्पनिक है। यही जीवन की कठिनाई है। और कल्पना के सुखों में जो चला जाता है, वह खो जाता है। फिर हम बहुत तरह की कल्पनाएं कर सकते हैं।

मजनू से उसके गांव के सम्राट ने बुला कर पूछा कि तू पागल है, और लैला साधारण सी लड़की है, तू दीवाना है! हम उससे बहुत अच्छी लड़कियां तेरे लिए खोज दें, हमने लड़कियां बुलाई हैं, तू चल और देख। तू पागल हो गया है! उसका बाप नहीं है राजी। छोड़, लैला में कुछ भी नहीं है। साधारण सी सांवली सी लड़की है।

आपको भी शायद ख्याल होगा कि लैला सुंदर रही होगी, तो आप गलती में हैं। लैला अति साधारण, जिसको होमली कहते हैं, घरेलू लड़की थी। लेकिन मजनू ने क्या कहा कि नहीं-नहीं, आप जानते नहीं, लैला के सौंदर्य को मैं ही जानता हूं।

सम्राट ने कहाः तेरा मतलब? हम अंधे हैं?

मजनू ने कहाः नहीं, आप अंधे नहीं हैं, मैं अंधा हूं। लेकिन जो मुझे दिखाई पड़ता है वह मुझे ही दिखाई पड़ता है और किसी को दिखाई नहीं पड़ सकता। मुझे तो लैला में ही सब दिखाई पड़ता है और कहीं नहीं दिखाई पड़ता।

अब किसी को दिखाई नहीं पड़ता, मजनू को दिखाई पड़ता है!

इसलिए तो प्रेमी जो हैं वे पागल मालूम पड़ते हैं। खुद को छोड़ कर सारा गांव उन्हें पागल कहेगा कि यह आदमी पागल है। उसको खुद मालूम नहीं पड़ेगा। उसने तो कल्पना का जाल इतना बुन लिया है कि जो आपको दिखाई पड़ रहा है वह उसे थोड़े ही दिखाई पड़ रहा है। उसे तो कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है।

प्रेयसी में जो दिखता है, वह प्रेमी की कल्पना का प्रोजेक्शन है, प्रेयसी में वह होता ही नहीं। प्रेमी में जो दिखता है, वह प्रेयसी की कल्पना का प्रक्षेपण है, वह उसमें होता ही नहीं।

हमें जो दूसरों में सुख दिखाई पड़ता है, वह हमारी ही कल्पना है। जो हमने फैला कर उनके ऊपर आरोपित कर दी है। और उस आरोपित कल्पना को टूटने में कितनी देर लगेगी? वह आरोपित कल्पना क्षण में टूट जाती है। पास आते ही टूट जाती है। पहचान होते ही टूट जाती है। जानते ही टूट जाती है। दूरी पर, फासले पर, वह कल्पना ही थी।

न केवल लोगों ने सामान्य जीवन में सुख की कल्पना की है, जब सामान्य जीवन में सुख नहीं मिला है और दुख को नहीं भुलाया जा सका है, तो लोगों ने और-और बड़ी कल्पनाएं की हैं। कोई मुरली बजाते भगवान की कल्पना कर रहा है। वह अपना आंख बंद करके मुरली बजाते भगवान में लीन हो रहा है। कोई जीसस क्राइस्ट की कल्पना कर रहा है। कोई धनुर्धारी राम की कल्पना कर रहा है। ये सारी कल्पनाएं सत्य के पास ले जाने वाली नहीं हैं। चाहे कोई कितनी ही गहरी कल्पना कर ले, चाहे किसी को बिल्कुल बांसुरी बजाते हुए कृष्ण दिखाई पड़ने लगें, धनुर्धारी राम दिखाई पड़ने लगे, और चाहे सूली पर लटका हुआ ईसा दिखाई पड़ने लगे, चाहे बुद्ध और महावीर दिखाई पड़ने लगे। आपके दिखाई पड़ने में बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण का कोई कसूर नहीं है। उनका कोई हाथ ही नहीं है। आपकी कल्पना के अतिरिक्त वहां और कुछ भी नहीं है।

लेकिन उस कल्पना में अपने को खोया जा सकता है। और ध्यान रहे, यह कल्पना लंबी हो सकती है। क्योंकि ठोस तो कुछ पास नहीं है जो उखड़ जाए, सिर्फ कल्पना ही है। कल्पना लंबी चल सकती है। तो साधारण मनुष्य के प्रेमी तो मुक्त भी हो सकते हैं कल्पना से, लेकिन भगवान की कल्पना करने वाले भक्त मुक्त भी नहीं हो पाते। क्योंकि कल्पना हवाई है, हमारे हाथ में है। जैसा चाहो, वैसा। एक ठोस आदमी से प्रेम करोगे, तो जैसा चाहोगे वैसा थोड़े ही होगा। अगर उससे कहोगे कि बायां पैर ऊपर उठाओ और हाथ मुरली पर रखो और खड़े रहो घंटे भर। तो वह कहेगा, क्षमा करो, नमस्कार!

लेकिन अपने ही कृष्ण हैं कल्पना के, बेचारों को खड़ा रखो एक पैर पर। बांसुरी पकड़े हुए वे खड़े हैं। वे कुछ नहीं कर सकते। और जैसा तबीयत हो, कहो कि रखो दूसरा पैर नीचे, तो नीचे रखना पड़ेगा दूसरा। आपकी ही कल्पना का जाल है। वहां कोई दूसरा है नहीं। इसलिए भक्त बड़ा प्रसन्न होता है भगवान को मुट्ठी में पाकर। चाहो जैसा नचाओ, भगवान मुट्ठी में है।

लेकिन जो मुट्ठी में है वह हमारी कल्पना का है। और कल्पना में खोकर फायदा क्या है? मिलेगा क्या? दुख भूल सकता है, लेकिन सुख नहीं मिल सकता। दुख को भूलना हो, तो कल्पना सार्थक उपाय है। लेकिन सुख को पाना हो, तो कल्पना अत्यंत घातक उपाय है। कल्पना से बचना तब जरूरी है।

यह मैं कहना चाहता हूं कि हमने सब तरफ से भुलाने की कोशिश की है दुख को। और जो दुख को भुलाने की कोशिश कर रहा है, वह अपने हाथ अपने को ऐसे जाल में डाल रहा है जिससे निकलना मुश्किल होता चला जाएगा। उसे रोज-रोज नये-नये जाल बनाने पड़ेंगे। एक झूठ के लिए फिर रोज नये झूठ गढ़ने पड़ेंगे। और झूठों की इतनी लंबीशृंखला हो जाएगी कि उसे पता भी नहीं रहेगा कि सत्य कहां है?

हमने न मालूम कितने झूठ तय किए हैं। जन्मों-जन्मों से झूठ की एक लंबी कतार खड़ी कर ली है और उस झूठ में हम सब खो गए हैं। हमें कुछ पता नहीं है। हमारा परिवार झूठ है; हमारी कल्पना पर खड़ा है, सत्य पर नहीं। हमारी मित्रता झूठ है; हमारी कल्पना पर खड़ी है, सत्य पर नहीं। हमारी शत्रुता झूठ है, हमारा धर्म झूठ है, हमारी भक्ति झूठ है, प्रार्थना झूठ है; हमारी कल्पना पर खड़ी है, सत्य पर नहीं।

और हमने सब, एक झूठ का इतना व्यापक जाल फैलाया है कि आज कहां से तोड़ें इसे, यह बहुत मुश्किल हो गया। एक आदमी हाथ जोड़े मंदिर में खड़ा है। किसके सामने हाथ जोड़े है? भगवान का कुछ पता है? जिसका पता नहीं है, उसके सामने हाथ जोड़े गए हों तो हाथ झूठे हो जाएंगे। किसलिए हाथ जोड़े हैं?

मैंने सुना है, एक यात्रियों का दल एक नाव से वापस लौट रहा है। वे बहुत धन कमा कर वापस लौटे हैं। हीरे-जवाहरात लेकर लौटे हैं। सौदागर हैं। उनमें एक फकीर भी है। जो लौटते में सवार हो गया। उसने कहाः मुझे भी देश लौटना है, मुझे भी बिठा लो। उसे भी बिठा लिया है। आखिरी दिन है। ऐसा लगता है कि थोड़ी ही देर में जमीन आ जाएगी। लेकिन बड़े जोर का तूफान आया है। बादल घिर गए। सूरज ढंक गया। हवाएं चलने लगीं। पानी उछाले भरने लगा। नाव अब डूबी, अब डूबी होने लगी।

वे तीस ही यात्री हाथ जोड़ कर, घुटने टेक कर, आंख बंद किए आकाश की तरफ हाथ उठाए और कह रहे हैंः भगवान हमें बचाओ! हमें बचाओ! हम से जो भी हो सकेगा, हम करेंगे। अगर हम बच गए और जमीन पर उतर गए--तो कोई कह रहा है कि मैं जितनी संपत्ति लाया हूं, सब गरीबों में बांट दूंगा। कोई कहता है कि मैं सारी संपत्ति सेवा में लगा दूंगा। कोई कहता है कि जो भी तुम कहोगे, मैं करूंगा। लेकिन मुझे बचाओ!

लेकिन वह फकीर है, वह हंस रहा है बैठा हुआ। और वे सारे लोग कह रहे हैं कि तुम कैसे आदमी हो! हमारी जान खतरे में है! तुम्हारी जान भी खतरे में है! प्रार्थना करो। और तुम तो फकीर हो, तुम्हारी प्रार्थना शायद जल्दी सुन ली जाए। लेकिन वह फकीर कहता है, तुम ही करो प्रार्थना। और फिर जब वे आंखें बंद किए हुए प्रार्थना कर रहे हैं, तो वह फकीर एकदम से चिल्लाता है कि ठहरो! गलती में वायदे मत कर देना कि सब दे देंगे, जमीन करीब है, जमीन दिखाई पड़ने लगी।

और वे सारे लोग उठ कर खड़े हो गए हैं। प्रार्थना अधूरी रह गई। और वे सब हंस रहे हैं और अपना सामान बांध रहे हैं। और उन्होंने कहाः तुमने ठीक समय पर चेता दिया। नहीं तो हम वायदा कर देते और मुसीबत होती। लेकिन एक आदमी ने वायदा कर दिया था। और सबने वायदा सुन लिया था। वह गांव का सबसे

बड़ा धनपति था। और उसने यह कह दिया था कि मैं अपना मकान बेच कर, जितना पैसा होगा वह गरीबों को बांट दूंगा। सबने कहाः तुम मुसीबत में पड़ गए।

वह आदमी चिंतित दिखाई पड़ा। लेकिन उस फकीर ने कहा लोगों से कि घबड़ाओ मत, वह इतना होशियार है कि भगवान को भी धोखा दे देगा।

और यही हुआ। पंद्रह दिन बाद, गांव के लोगों ने देखा कि डुंडी पीटी जा रही है। उस अमीर ने खबर की है कि मैं अपने मकान को बेच रहा हूं, और जितना पैसा आएगा वह गरीबों को बांट दूंगा।

सारा गांव आया। क्योंकि उससे बढ़िया मकान नहीं था। लाखों की कीमत थी उसकी।

जब सारे लोग आ गए, तो उसने, दरवाजे के बाहर वह आया, उसने एक छोटी सी बिल्ली दरवाजे के बाहर बांधी हुई थी। लोग पूछने लगे, यह बिल्ली किसलिए बांधी?

उसने कहाः दोनों मुझे बेचने हैं। बिल्ली भी और मकान भी। मकान का दाम है एक रुपया और बिल्ली का एक लाख रुपया। दोनों इकट्ठा ही बेचूंगा। जिसको भी लेना हो ले ले।

फकीर भीड़ में था, उसने कहाः समझ गए, समझ गए। वह बेच दिया। मकान तो लाख का था। लोगों ने कहाः हमें क्या मतलब! एक लाख एक में लेते हैं। एक रुपये की बिल्ली भी थी। कोई हर्जा नहीं है। किसी ने मकान खरीद लिया।

एक रुपये में मकान बेचा, लाख में बिल्ली बेची। लाख रुपये खीसे में रखे, एक रुपया गरीबों में बांट दिया।

कहा था उसने कि मकान बेच कर गरीबों में बांट दूंगा।

ये हमारी प्रार्थनाएं, ये हमारी सारी आराधनाएं, आखिर में बेईमानियां हैं। और ईश्वर को भी धोखा देने में हम पीछे नहीं हैं। और स्वाभाविक है क्योंकि ईश्वर से हमें कोई मतलब नहीं है। हमारे दुख से बचने की चेष्टा है, ईश्वर से क्या मतलब है?

जब नाव डूबती थी, तो हमने कहा कि हम यह कर देंगे। कोई ईश्वर से मतलब था! कोई गरीब से मतलब था! अपने दुख से बचने का सवाल था। जब बच गए, तब अब दूसरा दुख सिर पर आ गया कि लाख रुपये का मकान चला जाएगा। अब इससे बचने की तरकीब निकाली।

दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। नाव पर किया गया वायदा भी दुख से बचने के लिए था और यह चालाकी भी दुख से बचने के लिए है। और आदमी जो दुख से बचने के लिए कर रहा है, वह कभी धर्म नहीं हो सकता। धर्म है, दुख से बचने की तरकीब नहीं। दुख से बचाव हो तो गलत रास्ते पर ले ही जाएगा। क्योंकि दुख से बचाव में एक बुनियादी झूठ स्वीकार कर लिया गया है और वह यह कि मैं दुखी हूं। मैं दुखी हूं, यह बुनियादी झूठ स्वीकार कर लिया गया। मुझे दुख से बचना है अब।

मैं कहता हूं कि रास्ता दूसरा है। और वह यह है कि मुझे जानना है दुख क्या है? कहां है? बचना नहीं है। और जो आदमी जानने जाता है कि दुख क्या है, कहां है, वह हैरान होकर पाता है, दुख बाहर है, मैं तो अलग हूं, मैं तो कभी दुखी हूं नहीं। मैं दुखी हूं ही नहीं, इसलिए बचना क्या है? इसलिए बचना किससे है?

और जिसे यह पता चल जाता है कि मैं दुखी नहीं हूं, वह क्या किस हालत में पहुंच जाता है? जिसे यह पता चल गया कि मैं दुखी नहीं हूं, उसे यह पता चल जाता है कि मैं सुखी हूं। लेकिन हम माने हुए हैं कि हम दुखी हैं। मैं दुखी हूं, मैं दुखी हूं, मैं दुखी हूं। और यह जो मान्यता है, यह एक नये झूठ में ले जा रही है कि दुख से कैसे बचूं?

एक फकीर के पास एक आदमी गया है और उसने कहा कि मुझे मरने से बचने का कोई रास्ता बताइए?

उस फकीर ने कहाः किसी और के पास जाओ, क्योंकि मैं कभी मरा ही नहीं। कई बार मौत आई और मैं नहीं मरा। अब मैं इस झंझट के बाहर हो गया हूं। अब मैं जानता हूं कि मैं मर ही नहीं सकता। इसलिए मुझे कोई तरकीब भी पता नहीं है। तुम उस आदमी के पास जाओ जो मर चुका हो। उससे पूछो, वह शायद तुम्हें बता सके कि मरने से बचने की तरकीब क्या है? मैं क्या बताऊं? क्योंकि मैं कभी मरा नहीं। और अब मैं जानता हूं कि मैं मर ही नहीं सकता। इसलिए मृत्यु मेरे लिए सवाल ही नहीं है।

एक तो सवाल है कि मृत्यु को मान लिया हमने। अब हम पूछते हैं, कैसे बचें? पहली झूठ हमने स्वीकार कर ली कि हम मरते हैं। अब दूसरी झूठ ईजाद करनी पड़ेगी, मरने से कैसे बचें? और झूठ कीशृंखला चलती रहेगी। लेकिन जो भवन झूठ की नींव पर खड़ा हो, वह कितना ही बड़ा हो जाए, वह कभी भी ठहर नहीं सकता। झूठ की नींव पर खड़ा हुआ भवन पूरा झूठ ही होगा। वह किसी दिन भी गिरेगा। और जब वह गिरने लगेगा तो झूठ के नये-नये और हमें सहारे खड़े करने पड़ेंगे कि वह गिर न जाए। और इस तरह हम एक ऐसे विसियस सर्कल में, एक ऐसे दुष्टचक्र में फंस जाएंगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

बस झूठ के बाद झूठ, झूठ के बाद झूठ होती चली जाएगी। लेकिन हमें होश नहीं आता कि जिस चित्त ने एक झूठ हमें सिखाया है, उसी चित्त की मान कर हम चलेंगे, तो और झूठ भी हमें सिखाएगा।

माइंड जो है, चित्त जो है, अगर ठीक से समझें तो झूठ पैदा करने की मशीन है। वहां से झूठ पैदा होता है।

परसों रात ही मैं एक कहानी कह रहा था।

एक गरीब फकीर है, एक गरीब आदमी है। वह दिन-रात भगवान की प्रार्थना में ही लीन रहता है। उसकी पत्नी परेशान हो गई। भगवान की प्रार्थना करने वाले पतियों से पत्नियां परेशान हो ही जाती हैं। वह बहुत परेशान हो गई है। खाने को कहां से आए, रोटी कहां से आए, वह है कि बस भगवान है।

आखिर एक दिन उसने क्रोध में कहा कि यह अब ज्यादा नहीं चलेगा। यह कहां से लाएं हम खाने को? तुम निरंतर यही कहते हो, मैं भगवान का सेवक हूं, भगवान का सेवक हूं। अरे साधारण आदमी के भी सेवक हो जाओ, तो दो रोटी तो मिल सके। और भगवान के सेवक हो, मिलता क्या है? उस फकीर ने कहाः बात मत कर। कभी मैंने मांगा नहीं, यह बात दूसरी है। अगर मांगूं, तो सब अकाउंट में जमा होगा। इतने दिन भगवान की सेवा की है, तो सब वहां जमा होगा। मांगा नहीं मैंने, यह दूसरी बात है।

उसकी पत्नी ने कहाः तो आज मांग कर दिखा दो।

वह आदमी बाहर गया। उसने जोर से चिल्ला कर आकाश की तरफ कहा कि एक हजार रुपया फौरन भेज दे।

पड़ोस में एक सेठ रहता था। वह सुन रहा था यह सारी बातचीत। उसे मजाक सूझी। उसने एक हजार रुपये थैली में भर कर फेंक दिए। मजाक!

हद हो गई! उसने जब सुना कि वह आदमी भगवान को आज्ञा दे रहा है बाहर आकर कि फौरन एक हजार रुपये भेज दो। बहुत दिन हो गए, मैंने कुछ मांगा भी नहीं सेवा करते-करते।

एक हजार रुपये नीचे गिरे। उस आदमी ने थैली उठा ली और कहाः धन्यवाद! बाकी अभी जमा रखना। जब जरूरत होगी, ले लेंगे।

अंदर गया, पत्नी के सामने रुपये पटक दिए। पत्नी तो हैरान हो गई। प्रभावित भी हो गई कि हद हो गई। हजार रुपये नकद सामने थे। अब तो कुछ कहना भी ठीक न था।

सेठ ने सोचा कि थोड़ी देर मजा ले लेने दो, फिर चले जाएंगे। लेकिन तभी देखा कि बड़ा सामान बाजार से चला आ रहा है। तो सेठ ने कहाः अरे, यह तो मुश्किल हो जाएगी। मजाक तो महंगी पड़ जाएगी। वह तो सामान खरीदने उसने आदमी भेज दिए हैं। सामान चला आ रहा है। कीमती चीजें आ रही हैं।

सेठ भागा हुआ आया। उसने कहाः भई मैंने मजाक की थी। तुम क्या समझ रहे हो, रुपये मैंने फेंके हैं।

उस आदमी ने कहाः हद हो गई। तुमने साफ सुना कि मैंने भगवान से कहा कि भेजो हजार रुपये। और फिर मैंने धन्यवाद भी दिया। तुमने सुना नहीं?

कहाः वह मैंने सुना। लेकिन रुपये मैंने फेंके हैं।

उसने कहा कि यह मैं मान नहीं सकता। पत्नी मेरी गवाह है।

सेठ ने कहाः यह तो जाल हो गया। सेठ ने कहाः फिर सीधे इसी वक्त गांव के अदालत में चले चलो, काजी के पास।

उस फकीर ने कहाः मैं नहीं जाऊंगा ऐसे। क्योंकि मैं गरीब आदमी, देखते हैं कपड़े फटे-पुराने। आप घोड़े पर सवार होंगे, शानदार कपड़ों में होंगे। मजिस्ट्रेट आपकी तरफ झुक जाएगा। मजिस्ट्रेट कहीं गरीब की तरफ झुका है कभी? वह समझ लेगा कि आदमी ठीक कहता है। जिसके पास पैसे हैं, वह ठीक कहता है। यह मेरे गरीब कपड़े देख कर ही कह देगा कि छोड़ कहां की बातें कर रहा है। वापस करो रुपये।

नहीं, पहले मुझे ठीक कपड़े दे दें, अपना घोड़ा दे दें। जब मैं शान से चलूं, तो ही मैं चल सकता हूं। नहीं तो वहां सब गड़बड़ हो जाएगी।

सेठ को हजार रुपये वापस लेने थे। बेचारे ने घोड़ा दिया, अपने कपड़े दिए। खुद पैदल चला। फकीर शान से घोड़े पर चला।

अदालत के सामने जाकर घोड़ा बांधा। आदमी को चिल्ला कर कहाः घोड़े का ख्याल रखना। मजिस्ट्रेट भीतर सुन ले। अंदर गया शानदार कपड़ों में। सेठ ने निवेदन किया कि ऐसी-ऐसी बात हो गई। यह भगवान से प्रार्थना कर रहा था, मैं सिर्फ मजाक में हजार रुपये की थैली फेंक दिया। कहीं भगवान कोई रुपये फेंकता है, कभी सुना है आपने, मजिस्ट्रेट से उसने कहा कि भगवान ने रुपये फेंके हों? लेकिन यह पागल मान कर बैठ गया है कि इसके रुपये हैं। मैं रुपये वापस चाहता हूं।

मजिस्ट्रेट ने उस फकीर से कहा कि तुम्हें क्या कहना है?

उसने कहाः मुझे कुछ भी नहीं कहना है। इस आदमी का दिमाग खराब हो गया है, यह पागल है।

मजिस्ट्रेट ने कहाः सबूत?

तो उसने कहाः सबूत यह है कि आप तो रुपये की कह रहे हैं। अगर इससे पूछिए कि ये कपड़े किसके हैं, तो यह कहेगा, इसी के हैं। घोड़ा किसका है, यह कहेगा, इसी का है। सभी कुछ इसी का है।

उस सेठ ने कहाः तुच्छ, कपड़े मेरे हैं और घोड़ा भी मेरा है।

मजिस्ट्रेट ने कहाः मुकदमा बर्खास्त। यह आदमी का दिमाग खराब हो गया है।

वह सेठ यह नहीं समझ पाया कि जो फकीर इतना बड़ा झूठ बोल सकता है उसको कपड़े देना खतरनाक है, उसको घोड़ा देना खतरनाक है। वह और भी झूठ बोल सकता है। जो मन हमें झूठ की बुनियाद सिखाता है, उस मन की मान कर हम जो-जो इंतजाम करते हैं, वे सब झूठ होते चले जाते हैं।

लेकिन हमें कभी ख्याल भी नहीं आता कि मन का हमने पहला झूठ मान लिया और उसने यह कह दिया है कि मैं दुखी हूं। यह झूठ है। कोई मनुष्य, कोई आत्मा कभी भी दुखी नहीं है। दुख आस-पास घिरता है और मन कह देता है, मैं दुखी हूं।

यह मैं दुखी हूं कि जो आइडेंटिटी है, यह जो तादात्म्य है, यह बुनियादी झूठ है। इस झूठ को मान कर फिर हमें दूसरे झूठों में उतरना पड़ता है कि दुख को कैसे भुलाएं? शराब से, प्रार्थना से, पूजा से, नृत्य से, गीत से, संगीत से, कैसे भुलाएं? दुख है, दुख को कैसे भुलाएं? और जो दुख को भुलाने चला जाता है, वह आदमी सत्य की तरफ कभी भी नहीं जा पाता।

फिर क्या रास्ता है? इस सुबह की बैठक में आपसे मैं कहना चाहता हूं, दुख को भुलाएं मत। भुलाने से कोई कभी दुख से नहीं छूटा। क्योंकि भुलाने वाले ने यह मान ही लिया कि मैं दुखी हूं। अब भुलाए या कुछ भी करे, दुख से छुटकारा नहीं है।

रास्ता यह है कि जानें कि दुख कहां है? दुख क्या है? है भी? पहले दुख को पहचानें। और जिसने दुख को पहचानने की कोशिश की है और अपनी आंख दुख पर गड़ा दी हैं, दुख तिरोहित हो गया है। ऐसे ही जैसे सुबह का सूरज निकलता है और ओस के कण तिरोहित हो जाते हैं।

ठीक जिसने अपनी आंख दुख पर गड़ा दी है और ज्ञान का सूरज दुख पर बैठ गया है, दुख ऐसे ही उड़ गया है, जैसे ओस-कण उड़ जाते हैं और उनका कोई पता नहीं चलता। और पीछे जो स्थिति छूट जाती है, उसका नाम सुख है।

सुख दुख से विपरीत अवस्था नहीं है। दुख से लड़ कर कोई सुखी नहीं हो सकता। सुख दुख का अभाव है, एब्सेंस है। दुख चला जाए, तो जो शेष रह जाता है उसका नाम सुख है।

इसे ठीक से समझ लें। दुख से लड़ कर कोई सुखी नहीं हो सकता। दुख से उलटा नहीं है सुख कि आप दुख को हरा दो और सुख को ले आओ। दुख से उलटा नहीं है सुख।

हां, दुख न हो जाए, दुख शून्य हो जाए, दुख क्षीण हो जाए, पता चले कि दुख नहीं है, तो जो अवस्था शेष रह जाती है वह सुख है। सुख हमारा स्वभाव है। उसे कहीं से लाना नहीं है। दुख ऊपर से छा गई बदली है। और हम उस बदली से इतने मोहित हो गए हैं कि उसी-उसी का सोच रहे हैं। उसको भूल ही गए हैं जो बदली में छिपा है और बिल्कुल बाहर है। जैसे सूरज के चारों तरफ बादल घिर गए हों। घिर जाएं बादल, बादलों के घिरने से सूरज को क्या फर्क पड़ता है? कोई बादलों के घिरने से सूरज अंधेरा हो जाता है? कोई बादलों के घिरने से सूरज मिट जाता है? कोई बादलों के घिरने से सूरज की रोशनी में कोई भी फर्क पड़ता है? सूरज के स्वभाव में कोई फर्क पड़ता है? लेकिन अगर सूरज में बुद्धि हो, होश हो, और सूरज डर जाए और कहे कि बादल घिर गए, मैं मरा। अब मैं बादलों से बचने के लिए क्या करूं?

बस सूरज मुश्किल में पड़ जाएगा। बादलों से सूरज बचेगा भी कैसे? बादलों से सूरज लड़ेगा भी कैसे? और जितना लड़ेगा, जितना बचेगा, उतना ही ध्यान बादलों पर अटका रहेगा और सूरज भूल जाएगा कि मैं सूरज हूं और किससे लड़ रहा हूं, बादलों से?

लेकिन अगर सूरज गौर से देखे और देखे कि बादल वहां हैं, मैं यहां रहा, मेरे और बादलों के बीच तो बड़ा फासला है। और कितने ही पास आ जाएं बादल, तो भी फासला है। और फासला हमेशा इनफिनिट है। फासला हमेशा अनंत है।

इन दो हाथों को मैं कितने ही पास ले आऊं, तो भी फासला मौजूद है और फासला अनंत है। दोनों हाथ के बीच का फासला नहीं मिटता। पास लाने से नहीं मिटता। अगर फासला मिट जाए, तो दोनों हाथ एक हाथ हो जाएं। दो हैं, फासला जारी है। चाहे कितने ही पास लाओ, फासला जारी है।

चाहे बादल कितने ही करीब आ जाएं। अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि दो अणु कितने पास होते हैं, लेकिन अनंत फासला है दोनों के बीच में। फासला बहुत है। फासला मिट नहीं सकता।

दो प्रेमी कितने पास आ जाते हैं, कितने पास बैठ जाते हैं, फासला मौजूद है। और वही तो कष्ट देता है प्रेमियों को कि इतने पास आ गए, फिर भी फासला नहीं मिटता। सात चक्कर लगाए, फिर भी फासला नहीं मिटता। अदालत से रजिस्ट्री करवाई, फिर भी फासला नहीं मिटता। एक-दूसरे की गर्दन दबा रहे हैं, फिर भी फासला नहीं मिटता। फासला मौजूद है।

फासला मिट ही नहीं सकता। कितने ही बादल आ जाएं सूरज के पास। सूरज सूरज है, बादल बादल हैं। और फासला अनंत है। लेकिन अगर बादल पर ध्यान अटक गया, तो मुश्किल हो जाती है। तो सूरज अपने को भूल जाता है और बादलों का ख्याल करने लगता है। और जो अपने को भूल गया, वह धीरे-धीरे जिसका ख्याल करता है, समझ लेता है वही मैं हूं।

फिर थोड़े दिन में सूरज कहने लगे, मैं तो बादल हूं, मैं तो अंधेरा बादल हूं। जैसी सूरज को हम कहेंगे, यह हालत नासमझी की है। वैसी हालत आदमी की नासमझी की है। वह जो भीतर आत्मा है, वह आनंद है। चारों तरफ दुख के बादल हैं। और दुख ही दुख को देखते-देखते भूल गई है यह बात कि मैं कौन हूं? और वही बात पकड़ गई है कि यह जो दिखाई पड़ रहा है, यही मैं हूं, यही मैं हूं, यही मैं हूं।

अब इससे कैसे बचें? अब कैसे भागें? कैसे छूटें? प्रार्थना करें? शराब पीएं? कहां जाएं? जीएं, मरें, क्या करें? सीधे खड़े हों, शीर्षासन करें, कुछ भी करें। वह एक बात जो पकड़ ली है कि यह दुख जो दिखाई पड़ रहा है, यही मैं हूं, तो फिर बहुत कठिनाई हो गई। लौटना पड़ेगा इस बात से और जांच करनी पड़ेगी, दुख क्या है? कहां है? और मैं कौन हूं और कहां हूं?

और जो इस बात की खोज करता है, उसके बीच और दुख के बीच एक फासला खड़ा हो गया। और तत्काल एक क्रांति घटित हो जाती है। वह जानता है, दुख वहां है, मैं यहां हूं। दुख वह है, मैं यह हूं। दुख जाना जा रहा है, मैं जान रहा हूं। दुख दृश्य है, मैं द्रष्टा हूं। दुख ज्ञेय है, मैं ज्ञाता हूं। मैं अलग हूं। मैं दुखी नहीं हूं, मैं दुख नहीं हूं। और जिसको यह पता चल गया उसका ध्यान अपने पर लौट आता है। और वहां तो सूरज है, वहां तो आनंद है, वहां तो सुख है। और जिसको एक बार उसकी झलक मिल गई, वह हंसता है और अनंत जन्मों तक हंसता रहता है। और तब वह हैरान होता है कि कैसे लोग पागल हैं! कैसे लोग दुखी हैं!

बुद्ध को ज्ञान हुआ। उसी दिन सुबह उनके पास लोग आए और उन्होंने कहाः आपको क्या मिल गया है? क्योंकि बुद्ध खुशी में डूबे हुए। पूछा, क्या मिल गया है?

बुद्ध ने कहाः मिला कुछ भी नहीं, जो अपना ही था सदा, उसका पता चल गया है। बुद्ध ने कहाः मिला कुछ भी नहीं, जो सदा से अपना था और जिसे भूल गए थे, उसका पता चल गया है। हां, खोया जरूर बहुत कुछ। दुख खोया, पीड़ा खोई, पलायन खोया। खोया बहुत कुछ, मिला कुछ भी नहीं। मिला तो वही जो था ही, जो अपना ही था, मिला ही था। चाहे पता चलता और चाहे पता न चलता, वही मिल गया। खोया बहुत कुछ जो अपना नहीं था और मान लिया था अपना है। जो मैं नहीं था और जान लिया था कि मैं हूं, वह सब खोया है। मिला कुछ भी नहीं, खोया बहुत कुछ है।

जो भी जागेगा भीतर, वह पाएगा, मिलने को क्या है? जो मिलने को है वह मिला ही हुआ है। खोने को बहुत कुछ है। वह जो हमने पकड़ा है, जो हमने सोचा है। और हमने क्या-क्या पकड़ा है? हम क्या-क्या पकड़ सकते हैं? आदमी की क्षमता बहुत अदभुत है। आदमी का पागलपन बहुत गहरा है। आदमी की ऑटो-हिप्नोसिस, आत्म-सम्मोहित होने की क्षमता अनंत है। हम अपने ही दुख से सम्मोहित हो गए हैं। हम किसी भी चीज से सम्मोहित हो जा सकते हैं।

मैं कुछ घटनाएं सुनाऊं, फिर अपनी बात पूरी करूं। उससे ख्याल आ सके।

जब हिंदुस्तान में नेहरू जिंदा थे, तो दस-पचास आदमी थे हिंदुस्तान में जिनको यह ख्याल था कि वे भी पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं। एक आदमी मेरे गांव ही थे। उनको यह ख्याल पैदा हो गया कि वे पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं।

वे दस्तखत भी नेहरू के करते थे। और सर्किट हाउस वगैरह में तार करके सर्किट हाउस भी रुकवा देते थे और पहुंच जाते थे। और जब उनको लोग देखते थे, तो लोग हैरान होते थे कि आप कौन हैं?

वे तो पंडित नेहरू थे। फिर उनको पागलखाने में रखना पड़ा। बहुत से पंडित नेहरूओं को पागलखाने में रखना पड़ा।

एक बार एक पागलखाने में ऐसे ही एक पागल पंडित नेहरू से पंडित नेहरू का मिलना हो गया। पंडित नेहरू गए थे उस पागलखाने को देखने। अधिकारियों ने सोचा कि वह जो आदमी पंडित नेहरू की तरह तीन साल पहले भर्ती हुआ था, अब वह ठीक हो गया है। अब उसे छुट्टी देनी है। तो उसे नेहरू के हाथ से ही छुट्टी क्यों न दिला दी जाए? और बड़ी गड़बड़ हो गई।

उस आदमी को लाया गया। नेहरू से मिलाया गया। नेहरू ने उस आदमी से पूछा, आप बिल्कुल ठीक तो हो गए हैं?

उसने कहाः मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। अब मैं बिल्कुल ठीक हूं। इस पागलखाने के अधिकारियों का धन्यवाद। तीन साल में मेरा मन बिल्कुल ठीक हो गया, अब मैं वापस होकर जा रहा हूं।

चलते वक्त उसने पूछा, लेकिन मैं भूल गया आपसे पूछना कि आप कौन हैं?

पंडित नेहरू ने कहाः तुम्हें पता नहीं कि मैं कौन हूं? पंडित जवाहरलाल नेहरू!

वह आदमी हंसने लगा, उसने कहाः घबड़ाइए मत, तीन साल यहां रह जाइए, आप भी ठीक हो जाएंगे। तीन साल पहले इसी हालत में मैं भी आया था। मगर तीन साल में बिल्कुल ठीक हो गया हूं। आप बिल्कुल बेफिकर रहिए। चिंता मत करिए। बड़ा अच्छा इलाज है यहां के चिकित्सकों का। आपको तीन साल में ठीक कर देंगे।

इस आदमी को पंडित नेहरू होने का ख्याल इतने जोर से पकड़ सकता है कि वह भूल ही जाए।

अमरीका में तो ऐसी घटना घटी कुछ वर्षों पहले। अब्राहम लिंकन की शताब्दी मनाई गई। तो एक आदमी खोजा गया, अब्राहम लिंकन का चेहरा जिसका मिलता हो। एक नाटक किया गया। सारे मुल्क के बड़े-बड़े नगरों में वह नाटक हुआ। और उस आदमी को लिंकन बनाया गया।

उसने एक साल तक गांव-गांव में घूम कर लिंकन का पार्ट किया। उसका चेहरा मिलता-जुलता था। और एक साल निरंतर अभ्यास करने से वह आदमी पागल हो गया और भूल गया कि मैं कौन हूं? और वह आदमी कहने लगा कि मैं तो अब्राहम लिंकन हूं। पहले तो लोग समझे मजाक करता है।

लेकिन जब वह आखिरी रात विदा हो रहा था नाटक से और नाटक-मंडली टूट रही थी, तब उसने वह कपड़े उतारने से इनकार कर दिया जो उसने नाटक में पहने थे।

मंडली ने कहाः ये कपड़े तो वापस करने पड़ेंगे। उस आदमी ने कहाः ये कपड़े तो मेरे हैं। मैं अब्राहम लिंकन हूं। लोगों ने फिर भी समझा कि वह मजाक कर रहा है।

लेकिन वह मजाक नहीं कर रहा था। वह आदमी पागल हो गया था। वह उन्हीं कपड़ों को पहने घर चला गया। घर के लोगों ने भी समझाया कि ये कपड़े पहन कर नाटक तो ठीक है, लेकिन अगर सड़कों पर निकले तो लोग पागल समझेंगे।

उसने कहाः पागल का सवाल क्या, मैं अब्राहम लिंकन हूं! पहले घर के लोग भी मजाक समझे। लेकिन जब यह रोज चला, तो पता चला, वह आदमी तो पागल हो गया।

वह आम बात भी करता था, तो लिंकन के लहजे में करता था। अगर लिंकन अटकता था, तो वह आदमी भी बोलने में अटकने लगा। अगर लिंकन जिस भांति चलता था, वैसे ही वह चलता था। वही डायलाग, जो उसने नाटक में सीख लिए थे। मजबूत हो गए थे। वह वही बोलता था।

आखिर चिकित्सकों से पूछा। चिकित्सकों ने कहाः बड़ा मुश्किल है, क्या इतना, इतना गहरे तक इसको यह ख्याल हो गया कि मैं अब्राहम लिंकन हूं।

एक साल तक लिंकन होने का ही बादल उसके चारों तरफ घूमता रहा। सुबह, सांझ, रात। और लिंकन होने में मजा भी बहुत आया। खूब आदर मिला।

कोई आदमी रामचंद्र जी बन जाए उदयपुर में। फिर देखो उदयपुर के पागल उसके ही पैर पड़ रहे हैं, फूल चढ़ा रहे हैं। उनके ही चरण का अमृत पीया जा रहा है। उस आदमी का दिमाग खराब हो ही जाए कि क्या फायदा साधारण आदमी होने में, रामचंद्रजी ही क्यों न हो जाओ?

वह आदमी हो गया। चिकित्सकों के पास ले गए। अमरीका में उन्होंने एक मशीन बनाई हुई है, लाई-डिटेक्टर। उसको अदालत में उपयोग करते हैं झूठ पकड़ने के लिए। छोटी सी मशीन है, अदालत में आदमी आता है तो जिस कठघरे में उसे खड़ा करते हैं, उसके नीचे मशीन लगी रहती है। वह ऊपर खड़ा होता है। उससे पूछते हैं, तुम्हारी घड़ी में इस वक्त कितना बजा है? वह अपनी घड़ी देख कर कहता है कि इतना बजा है। झूठ क्यों बोलेगा। तो मशीन नीचे अंकित करती है उसके हृदय की गति।

फिर उस आदमी से पूछा जाता है कि दो और दो कितने होते हैं? तो वह कहता है, चार होते हैं। झूठ क्यों बोलेगा। मशीन अंकित करती है उसके हृदय की गति। फिर उससे पूछा जाता है, तुमने चोरी की? तो हृदय तो कहता है, की, क्योंकि उसने की है। और ऊपर से वह कहता है कि नहीं की। तो हृदय की गति में झटका लगता है। और वह झटका नीचे मशीन अंकित कर लेती है।

तो उस अब्राहम लिंकन हो गए आदमी को लाई-डिटेक्टर पर खड़ा किया। वह घबड़ा गया था। जो भी पूछे उससे, वह यही पूछे, आप अब्राहम लिंकन हैं?

तो वह घबड़ा गया था। उसने अपने आप तय किया था कि अब चाहे कोई कितना ही पूछे, मैं कहूंगा कि मैं हूं ही नहीं।

लाई-डिटेक्टर मशीन पर खड़ा किया। डाक्टर घेरे खड़े हैं। उन्होंने पूछा कि क्या आप अब्राहिम लिंकन हैं?

उसने कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने नीचे नोट किया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। उसके हृदय में तो कह रहा था कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। ऊपर से झूठ बोल रहा है। मशीन ने कहा कि यह आदमी अब्राहम लिंकन है। झूठ बोल रहा है।

इतना गहरा, इतना गहरा भाव पकड़ सकता है। इसे मैं कहता हूं, ऑटो-हिप्नोसिस है यह। यह किसी विचार और भाव से सम्मोहित हो जाना है।

हम सब भी दुख से सम्मोहित हो गए हैं। और चौबीस घंटे दुख में जी रहे हैं और चौबीस घंटे दुख से बचने की कोशिश कर रहे हैं। और दिन-रात दुख ही दुख देखने से सम्मोहन गहरा हो गया है। और अनंत जन्मों का दुख का यह सम्मोहन है। और इसलिए हम किसी से भी जाकर पूछते हैं, दुख से बचने का उपाय क्या? अशांति से बचने का उपाय क्या? अंधकार से बचने का उपाय क्या? अज्ञान से बचने का उपाय क्या? और जब तक हम ये उपाय खोजते रहेंगे, तब तक हम मुक्त हो भी नहीं सकेंगे। क्योंकि बुनियादी बात ही झूठ है।

न हम अज्ञान हैं, न हम दुख हैं, न हम बंधन हैं, न हम अमुक्ति हैं। हम ये हैं ही नहीं। इसलिए इनसे बचने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन यह कैसे पता चलेगा? यह अपने दुख पर ध्यान को केंद्रित करना पड़ेगा। भागें मत, पलायन मत करें, एस्केप न लें। दुख आए उसे देखें और पहचानें और जानें कि वह कहां है। और जैसे ही आप जानेंगे, पहचानेंगे, आप हैरान हो जाएंगे, लगेगा मैं तो सदा अलग हूं, मैं तो सदा भिन्न हूं--दुख आता है चला जाता है, दुख घेरता है भाग जाता है--मैं, मैं अलग हूं, जानता हूं। जानना हूं।

मनुष्य की आत्मा ज्ञान है। सिर्फ जानना है। सब भोगना झूठ है। सब भोगना असत्य है। ज्ञान मात्र सत्य है। इसे ही मैं ध्यान कहता हूं। अगर दुख के प्रति यह जागरण हो, ध्यान हो गया।

रात्रि हम बैठेंगे, तो ध्यान रखना, आप दिन भर यह सोच कर आना कि आप दुख हो या दुख से अलग हो? आप ही दुख हो या दुख के जानने वाले हो? यह जान कर आना। यह खोज कर आना। और अगर यह साफ हो जाए कि दुख वहां है, मैं यहां हूं, तो बस वह क्रांति होनी शुरू हो गई, जो अंततः मनुष्य को स्वयं में और सत्य में ले जाती है।

रात्रि हम प्रयोग के लिए भी बैठेंगे कि कैसे हम यह प्रयोग करें और भीतर प्रविष्ट हो जाएं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

समस्त के प्रति प्रेम ही प्रार्थना है

सबसे पहले तो एक मित्र ने पूछा है कि कल मैंने कहा कि खोज छोड़ देनी है। और अगर खोज हम छोड़ दें, तो फिर तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकेगा।

मैंने जो कहा है, खोज छोड़ देनी है, वह कहा है उस सत्य को पाने के लिए जो हमारे भीतर है। खोज करनी व्यर्थ है, बाधा है। लेकिन हमारे बाहर भी सत्य है। और हमसे बाहर जो सत्य है, उसे तो बिना खोज के कभी नहीं पाया जा सकता।

इसलिए दुनिया में दो दिशाएं हैं। एक जो हमसे बाहर जाती है। हमसे बाहर जाने वाला जो जगत है, अगर उसके सत्य की खोज करनी हो, जो विज्ञान करता है, तो खोज करनी ही पड़ेगी। खोज के बिना बाहर के जगत का कोई सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता।

एक भीतर का जगत है। अगर भीतर के सत्य की खोज करनी है, तो खोज बिल्कुल छोड़ देनी पड़ेगी। अगर खोज की तो बाधा पड़ जाएगी और भीतर का सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता। और ये दोनों सत्य किसी एक ही बड़े सत्य के भाग हैं। भीतर और बाहर किसी एक ही वस्तु के दो विस्तार हैं। लेकिन जो बाहर से शुरू करना चाहता हो, उसके लिए तो अंतहीन खोज है। खोज करनी पड़ेगी, खोज करनी पड़ेगी, खोज करनी पड़ेगी। जो भीतर से शुरू करना चाहता हो, उसे खोज का अंत इसी क्षण कर देना पड़ेगा, तो भीतर की खोज शुरू होगी।

तो विज्ञान खोज है और धर्म अ-खोज है। विज्ञान खोज कर पाता है, धर्म स्वयं को खोकर पाता है। खोज कर नहीं पाता।

तो मैंने जो बात कही है, वह विज्ञान को ध्यान में लेकर नहीं कही है। वह मैंने साधक को, साधना को, धर्म को ध्यान में रख कर कही है कि जिसे स्वयं के सत्य को पाना है उसे सब खोज छोड़ देनी चाहिए। विज्ञान की खोज में जिसे जाना है, उसे खोज करनी पड़ेगी। लेकिन ध्यान रहे, कोई कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो जाए, और बाहर के जगत के कितने ही सत्य खोज ले, तो भी स्वयं के सत्य के जानने के संबंध में वह उतना ही अज्ञानी होता है जितना कोई साधारण-जन।

इससे उलटी बात भी सच है। कोई कितना ही परम आत्म-ज्ञानी हो जाए, कितना ही बड़ा आत्म-ज्ञानी हो जाए, वह विज्ञान के संबंध में उतना ही अज्ञानी होता है जितना कोई साधारणजन।

कोई महावीर, बुद्ध या कृष्ण के पास आप पहुंच जाएं, एक छोटा सा मोटर ही लेकर कि जरा इसको सुधार दें, तो आत्म-ज्ञान काम नहीं पड़ेगा। और आइंस्टीन के पास आप पहुंच जाएं, और आत्मा के रहस्य के संबंध में कुछ जानना चाहें, तो कोई आइंस्टीन की वैज्ञानिकता काम नहीं पड़ेगी।

वैज्ञानिकता एक तरह की खोज है। एक आयाम है। धर्म बिल्कुल दूसरा आयाम है, दूसरी ही दिशा है। और इसलिए तो यह नुकसान हुआ। पूरब के मुल्कों ने, भारत जैसे मुल्कों ने भीतर की खोज की, इसलिए विज्ञान पैदा नहीं हो सका। क्योंकि भीतर के सत्य को जानने का रास्ता बिल्कुल ही उलटा है। वहां तर्क भी छोड़ देना है, विचार भी छोड़ देना है, इच्छा भी छोड़ देनी है, खोज भी छोड़ देनी है। सब छोड़ देना है। भीतर की खोज का

रास्ता सब छोड़ देने का है। इसलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो सका। पश्चिम ने बाहर की खोज की। बाहर की खोज करनी है--तर्क करना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, प्रयोग करना पड़ेगा, खोज करनी पड़ेगी, तब विज्ञान का सत्य उपलब्ध होगा। तो पश्चिम ने विज्ञान के ज्ञान को तो पाया, लेकिन धर्म के मामले में वह शून्य हो गया। और अगर किसी संस्कृति को पूरा होना है, तो उसमें ऐसे लोग भी चाहिए जो भीतर खोजते रहें, जो बाहर की सब खोज छोड़ दें। और ऐसे लोग भी चाहिए जो बाहर खोजते रहें और बाहर के सत्य को भी जानते रहें।

हालांकि एक ही आदमी एक ही साथ वैज्ञानिक और धार्मिक भी हो सकता है। कोई ऐसा न सोचे कि कोई धार्मिक हुआ तो वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता। कोई ऐसा भी न सोचे कि कोई वैज्ञानिक हो गया तो वह धार्मिक नहीं हो सकता। लेकिन अगर ये दोनों काम करने हैं, तो दो दिशाओं में काम करना पड़ेगा।

जब वह विज्ञान की खोज करेगा, तो तर्क, विचार और प्रयोग का उपयोग करना पड़ेगा। और जब स्वयं की खोज करेगा, तो तर्क, विचार और प्रयोग, सब छोड़ देना पड़ेगा। एक ही आदमी दोनों हो सकता है।

लेकिन दोनों होने के लिए उसे दो तरह के प्रयोग करने पड़ेंगे। अगर किसी देश ने यह तय किया कि हम सब खोज छोड़ देंगे, कुछ न खोजेंगे, तो देश शांत तो हो जाएगा, लेकिन शक्तिहीन हो जाएगा। शांत तो हो जाएगा, सुखी हो जाएगा, लेकिन बहुत तरह के कष्टों से घिर जाएगा। भीतर तो आनंदित हो जाएगा, बाहर गुलाम हो जाएगा, दीन-हीन हो जाएगा।

किसी देश ने अगर तय किया कि हम बाहर की ही खोज करेंगे। संपन्न हो जाएगा, शक्तिशाली हो जाएगा, समृद्ध हो जाएगा, कष्ट बिल्कुल न रह जाएंगे, लेकिन भीतर अशांति और दुख और विक्षिप्तता घेर लेगी। तो किसी देश को अगर सम्यक संस्कृति पैदा करनी हो, तो उसे दोनों दिशाओं में काम करना पड़ेगा। और किसी व्यक्ति को अगर मौज हो तो वह दोनों दिशाओं में काम कर सकता है।

वैसे परम लक्ष्य मनुष्य का धर्म है। विज्ञान केवल जीवन को गुजरने का जो रास्ता है, उसे थोड़ा ज्यादा सुंदर, ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा संपन्न बना सकता है। लेकिन परम शांति और परम आनंद तो धर्म से ही उपलब्ध होते हैं।

दूसरे मित्र ने जो पूछा है, तो बहुत से प्रश्न पूछ लिए हैं। एक-दो प्रश्न उसमें से ले लें, फिर जो बाकी बचेंगे, वे कल ले लेंगे।

उन्होंने पूछा है कि प्रार्थना किसकी?

अगर प्रार्थना किसी की भी की तो वह प्रार्थना नहीं होगी। लेकिन प्रार्थना से मतलब ऐसा निकलता है कि किसी की करनी है और किसी लिए करनी है। कोई कारण होगा, कोई प्रार्थी होगा और किसी से करेगा। तो हमें ऐसा लगता है, प्रार्थना तो हो ही नहीं सकती अगर कोई कारण नहीं है और किसी से करने वाला नहीं है। अकेला करने वाला क्या करेगा? कैसे करेगा?

तो मेरा कहना यह है कि प्रार्थना अगर ठीक से हम समझें, तो कोई क्रिया नहीं है, बल्कि एक वृत्ति है। प्रेयरफुल मूड। प्रेयर नहीं है सवाल, प्रेयरफुल मूड। प्रार्थना नहीं है सवाल, प्रार्थनापूर्ण हृदय। यह बिल्कुल और बात है।

आप रास्ते से निकल रहे हैं। एक प्रार्थना-शून्य हृदय है, रास्ते के किनारे कोई गिर पड़ा है और मर रहा है, वह प्रार्थना-शून्य हृदय ऐसे निकल जाएगा जैसे रास्ते पर कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन प्रार्थनापूर्ण हृदय जो है, वह कुछ करेगा, वह जो गिर गया है, उसे उठाएगा, कुछ चिंता करेगा, दौड़ेगा, भागेगा, उसे कहीं पहुंचाएगा। अगर रास्ते पर कांटे पड़े हैं, तो एक प्रार्थना-शून्य हृदय कांटों से बच कर निकल जाएगा, लेकिन कांटों को उठाएगा नहीं। प्रार्थनापूर्ण हृदय उन कांटों को उठाने का श्रम लेगा, उठा कर उन्हें अलग फेंकेगा।

प्रार्थनापूर्ण हृदय का मतलब हैः प्रेमपूर्ण हृदय। और जब कोई व्यक्ति का प्रेम एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति होता है, तो हम उसे प्रेम कहते हैं। और जब किसी व्यक्ति का प्रेम किसी से बंधा नहीं होता, समस्त के प्रति होता है, तब मैं उसे प्रार्थना कहता हूं।

प्रेम है दो व्यक्तियों के बीच का संबंध और प्रार्थना है एक और अनंत के बीच का संबंध। वह जो सब हमारे चारों तरफ फैला हुआ है--पौधे हैं, पक्षी हैं, सब, उस सबके प्रति जो प्रेमपूर्ण है, वह प्रार्थना में है।

प्रार्थना का मतलब यह नहीं कि कोई मंदिर में कोई आदमी हाथ जोड़ कर बैठा है, तो वह प्रार्थना कर रहा है। प्रार्थना का मतलब है, ऐसा व्यक्ति जो जीवन में जहां भी आंख डालता है, हाथ रखता है, पैर रखता है, श्वास लेता है, तो हर घड़ी प्रेम से भरा हुआ है, प्रेमपूर्ण है।

एक मुसलमान फकीर था। जिंदगी भर मस्जिद गया। बूढ़ा हो गया है। एक दिन लोगों ने मस्जिद में नहीं देखा, तो सोचा, क्या मर गया? क्योंकि वह जीते-जी नहीं मस्जिद आए, यह असंभव है। तो वे उसके घर गए। वह तो बैठा था बाहर दरवाजे पर। कुछ खंजड़ी बजा कर गीत गाता था। तो लोगों ने कहाः यह तुम क्या कर रहे हो? क्या आखिरी वक्त नास्तिक हो गए? प्रार्थना नहीं करोगे?

उस फकीर ने कहाः प्रार्थना के कारण ही आज मस्जिद नहीं आ सका।

उन्होंने कहाः क्या मतलब? मस्जिद नहीं आए प्रार्थना के कारण? मस्जिद के बिना प्रार्थना हो कैसे सकती है?

उस आदमी ने अपनी छाती खोल दी। उसकी छाती में एक नासूर हो गया है। जिसमें कीड़े पड़ गए हैं। उसने कहा कि कल मैं गया था, और जब नमाज पढ़ने के लिए झुका, तो कुछ कीड़े मेरी छाती से नीचे गिर गए। और मुझे ख्याल हुआ कि ये तो मर जाएंगे, बिना नासूर के जीएंगे कैसे? तो फिर आज मैं झुक नहीं सकता हूं। प्रार्थना के कारण आज मस्जिद नहीं आ सका।

यह प्रार्थना बहुत कम लोगों की समझ में आएगी। लेकिन जब मैं प्रार्थना की बात करता हूं, तो मेरे प्रार्थना का यही अर्थ है--प्रेयरफुल मूड, प्रेयरफुल एटिट्यूड। वह हम जो जीवन जी रहे हैं, उसमें सब तरफ हम कितने प्रार्थनापूर्ण हो सकते हैं, यह सवाल है। किसी भगवान और किसी देवता की आराधना की बात नहीं है। प्रार्थना मेरे लिए प्रेम का ही अर्थ रखती है।

तो मैं निरंतर कहता हूंः प्रेम ही प्रार्थना है। अगर हम एक व्यक्ति से बंध जाते हैं, तो प्रेम की धारा रुक जाती है और प्रेम मोह बन जाता है। और अगर हम फैल जाते हैं और प्रेम की धारा मुक्त हो जाती है, तो प्रेम प्रार्थना बन जाती है।

इसे थोड़ा ख्याल कर लेना। अगर एक व्यक्ति पर प्रेम रुक जाए तो मोह बन जाता है। और बंधन का कारण हो जाता है। और अगर फैलता चला जाए प्रेम और सब पर फैलता चला जाए और धीरे-धीरे बेशर्त हो

जाए, अनकंडिशनल हो जाए, हमारी कोई शर्त न रह जाए कि हम इससे प्रेम करेंगे। हमारा केवल एक भाव रह जाए कि हम प्रेम ही कर सकते हैं, हम कुछ और कर ही नहीं सकते।

राबिया नाम की एक फकीर औरत थी। कुरान में कहीं हैः शैतान से घृणा करो। तो उसने वह लकीर काट दी। कोई मित्र ठहरा हुआ था, उसने कहाः कुरान में संशोधन किसने किया? कुरान में कोई संशोधन कर सकता है। धर्मग्रंथ में तो संशोधन नहीं हो सकता।

राबिया ने कहाः मुझे ही करना पड़ा। क्योंकि इसमें लिखा है शैतान से घृणा करो। और मैं तो घृणा करने में असमर्थ हो गई हूं। जब से प्रार्थना पूरी हुई तब से मैं घृणा नहीं कर सकती हूं। अगर शैतान मेरे सामने खड़ा हो जाए, तो भी मैं प्रेम करने को ही मजबूर हूं। यह सवाल उसका नहीं है कि वह कौन है, यह सवाल मेरा है। क्योंकि मेरे पास सिवाय प्रेम के कुछ है ही नहीं। तो मुझे यह लकीर काट देनी पड़ी। यह लकीर ठीक नहीं है। अब तो मेरे सामने भगवान आए तो और शैतान आए तो, मैं प्रार्थना ही कर सकती हूं, मैं प्रेम ही कर सकती हूं। और इसलिए अब मुश्किल है पहचानना भी कि कौन है शैतान और कौन है भगवान? और अब पहचानने की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि वही मुझे करना है चाहे कोई भी हो।

प्रेम एक पर रुक कर बंधन बन जाता है, मोह बन जाता है। जैसे नदी रुक जाए और डबरा बन जाए। समझ लेना, नदी रुक जाए और डबरा बन जाए। बहे न, गोल घूमने लगे। एक तालाब बन गया, सड़ेगा, खराब होगा, बहेगा नहीं। नदी अगर रुक जाए, तो डबरा बन जाती है। और नदी अगर बढ़ जाए और फैल जाए तो सागर बन जाती है।

वह जो प्रेम की धारा है हमारे भीतर, अगर एक व्यक्ति के आस-पास डबरा बना ले, या दो-चार व्यक्तियों के आस-पास डबरा बना ले--बेटे के पास, पत्नी के पास, मित्र के पास डबरा बना ले, तो प्रेम की धारा वहीं सड़ जाती है। फिर उस प्रेम से सिवाय दुर्गंध के और कुछ नहीं उठता। इसलिए सब परिवार दुर्गंध के केंद्र हो गए हैं। वे सब डबरे बन गए हैं। और डबरे में गंध आएगी ही। सब संबंध हमारे सड़ गए हैं। क्योंकि प्रेम जहां रुका वहीं सड़ांध शुरू हो जाती है। पति-पत्नी के बीच सड़ांध के सिवाय और कुछ भी नहीं है। बाप और बेटे के बीच कुछ नहीं है। जहां प्रेम रुका, वहीं उसकी निश्छलता गई, उसका निर्दोषपन गया, उसकी ताजगी गई। और हम अपने मोह में इस डर से कि कहीं प्रेम सब पर बंट न जाए, रोकने की कोशिश करते हैं। सब रोकने की कोशिश करते हैं कि रुक जाए तो शायद ज्यादा मिले। और मजा यह है कि रुका कि सड़ा। फिर तो मिलता ही नहीं।

बढ़ जाए, फैल जाए, फैलता चला जाए। जितना फैलेगा प्रेम, जितने अधिकतम तक पहुंचेगा, उतना ही वह प्रार्थना बनता चला जाएगा। और अंत में प्रेम बढ़ते-बढ़ते सागर तक पहुंच जाता है। तब वह प्रेम प्रार्थना बन जाता है।

तो किससे का सवाल नहीं है। और किससे आपने पूछा, तो आप इसीलिए पूछ रहे हैं कि किससे बांधें? राम से बांधे, कि कृष्ण से, कि महावीर से, कि बुद्ध से। तो वह जो हम व्यक्तिगत रूप से प्रेम बांधे हुए हैं, प्रार्थना तक बांधते हैं। अगर शिव के मंदिर जाने वाला पागल है, तो वह राम के मंदिर नहीं जाएगा। अगर कृष्ण का भक्त है, तो वह राम को नमस्कार नहीं करेगा। वह प्रार्थना भी बंधी हुई है।

रास्ते पर इतने मंदिर पड़ते हैं। अपना-अपना मंदिर है। अब मंदिर भी कहीं अपना-अपना हो सकता है? मंदिर भी अपना-अपना! मंदिर तो परमात्मा का हो सकता है। लेकिन सबके अपने-अपने मंदिर हैं। उन मंदिरों में भी संप्रदाय हैं। महावीर को ही मानने वाले एक ही मंदिर में मुकदमेबाजी करेंगे। क्योंकि किसी का महावीर

कपड़े पहनता है, किसी का महावीर नंगा रहता है। तो नंगा रहने वाला कपड़े नहीं पहनने देगा। कपड़े पहनने वाला नंगा नहीं रहने देगा। और झगड़ा जारी है। बड़े मजे की बात है!

मैंने एक घटना सुनी है कि एक गांव में गणेश का उत्सव होता है। गणेश निकलते हैं। सारे गांव के अलग-अलग लोग अलग-अलग गणेश बनाते हैं, सबके अपने-अपने गणेश हैं। ब्राह्मणों का गणेश अलग है। लोहारों का गणेश अलग है। बनियों का गणेश अलग है। शूद्रों के गणेश अलग हैं। और सबके गणेश हैं; उनका जुलूस निकलता है। सबसे पहले ब्राह्मण का गणेश होता है। नियम से ऐसा ही चलता है।

लेकिन उस दिन क्या हुआ कि ब्राह्मणों के गणेश के आने में जरा देरी हो गई और तेलियों का गणेश पहले पहुंच गया। तो जब ब्राह्मण आए, तो तेलियों का गणेश आगे हो गया, यह बरदाश्त के बाहर है। कहीं तेलियों का गणेश और आगे हो जाए। तो ब्राह्मणों ने कहा, हटाओ, साले तेलियों के गणेश को।

गणेश भी तेलियों का है! हटाओ इसको पीछे। कभी ऐसा हुआ है। ब्राह्मणों का गणेश आगे होता है।

और तेलियों के गणेश को पीछे हटा दिया गया जबरदस्ती और ब्राह्मणों का गणेश आगे हो गया।

अगर गणेश कहीं भी होंगे, तो अपनी खोपड़ी ठोंक रहे होंगे। गणेश से किसी को प्रयोजन है? अपना गणेश! और उसमें भी फर्क है। प्रार्थना भी बंधती है, वह पूछती है, किससे? किसकी प्रार्थना करें? किसी की भी नहीं। प्रार्थना का मतलब ही हैः सबकी। वह जो समस्त फैला हुआ है, सर्व जो फैला हुआ है, उसके प्रति जो प्रेम का भाव है उसका नाम प्रार्थना है।

यह हाथ जोड़ने का मामला नहीं है कि हाथ जोड़ लिए, निपट गए। यह चौबीस घंटे जीने का मामला है। इस तरह जीना है कि सबके प्रति प्रेम बहता रहे, तो प्रार्थना पूरी होगी। लेकिन बेईमानों ने तरकीबें निकल ली हैं असली प्रार्थना से बचने की। वे दो मिनट के लिए जाकर, हाथ जोड़ कर मंदिर से लौट आते हैं, कहते हैं, हम प्रार्थना कर आए।

ये तरकीबें हैं और बेईमानियां हैं। इस तरह तरकीब यह है कि हम किस तरह बच जाएं असली प्रार्थना से।

प्रेम ही प्रार्थना है। समस्त के प्रति प्रेम ही प्रार्थना है।

हम ऐसे जीएं कि हमारा प्रेम रिक्त न होता हो। हम ऐसे जीएं कि प्रेम बढ़ता ही चला जाता हो। हम ऐसे जीएं कि प्रेम किसी पर रुकता न हो, ठहरता न हो। हम ऐसे जीएं कि धीरे-धीरे हमारा प्रेम बेशर्त हो जाए। हमारा प्रेम हमेशा शर्त-बंद होता है। हम कहते हैं, तुम ऐसा रहोगे, तो हम प्रेम करेंगे। तुम ऐसा करोगे, तो हम प्रेम करेंगे। तुम प्रेम करोगे, तो हम प्रेम करेंगे।

जहां प्रेम पर शर्त लगी, कंडिशन लगी, वहां प्रेम सौदा हो गया और बाजार हो गया। जब मैंने कहा कि मैं तब प्रेम करूंगा, जब ऐसा होगा।

सुना है मैंने, कि एक बहुत बड़े संत को, नाम लेना तो ठीक नहीं, क्योंकि नाम लेना इस मुल्क में बड़े खतरे की झंझट है। एक बड़े संत को, जो कि राम के भक्त थे, कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। उन्होंने कहा कि जब तक धनुष-बाण हाथ नहीं लोगे, मैं सिर नहीं झुका सकता। बड़े मजे की बात है! प्रेम में भी शर्त कि धनुष-बाण हाथ लोगे, तब हम सिर झुकाएंगे। मतलब, यह सिर भी शर्त से झुकेगा। हमारी पहले मानो, तब हम सिर झुकाएंगे।

यह भक्त भगवान का भी मालिक बनने का, पजेसिव होने की कोशिश कर रहा है। वह कहता है, इस तरह व्यवहार करो, तब हम सिर झुकाएंगे। नहीं तो बात खतम, नाता-रिश्ता बंद।

यह जो हमारा मस्तिष्क है, यह प्रार्थनापूर्ण नहीं हो सकता। शर्त से बंधा हुआ आदमी कभी प्रार्थनापूर्ण नहीं हो सकता। बेशर्त, इसलिए नहीं कि तुम कैसे हो, इसलिए कि मैं प्रेम ही दे सकता हूं, प्रेम ही देना चाहता हूं, प्रेम ही देने की मेरी क्षमता है, और कुछ मेरे पास नहीं है। तुम क्या करोगे यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है।

एक छोटी सी बात फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। फिर कल, जो प्रश्न रह जाएंगे, हम बात कर लेंगे।

बुद्ध के पास एक दिन सुबह-सुबह एक आदमी आया और उनके ऊपर थूक दिया। बुद्ध ने चादर से अपना मुंह पोंछ लिया और उस आदमी से कहाः और कुछ कहना है? कोई आदमी आपके ऊपर थूके, तो आप यह कहेंगे कि कुछ और कहना है? पास बैठे भिक्षु तो क्रोध से भर गए। उन्होंने कहाः यह क्या आप पूछ रहे हैं? कुछ और कहना है?

बुद्ध ने कहाः जहां तक मैं जानता हूं, इस आदमी के मन में इतना क्रोध है कि शब्दों से नहीं कह सका, थूक कर कहा है। लेकिन मैं समझ गया कि इसे कुछ कहना है। क्रोध इतना ज्यादा है कि शब्द से नहीं कह पाता है, थूक कर कहता है। प्रेम ज्यादा होता है, आदमी शब्द से नहीं कहता, किसी को गले लगा कर कहता है। इसने थूक कर जो कहा है, वह हम समझ गए। अब और भी कुछ कहना है कि बात खत्म हो गई?

वह आदमी तो हैरान हो गया। क्योंकि यह तो सोचा ही नहीं था कि थूकने का यह उत्तर मिलेगा। उठ कर चला गया। रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया और बुद्ध के पैर पर पड़ गया, आंसू गिराने लगा। जब उठा तो बुद्ध ने कहाः और कुछ कहना है? तो आस-पास के भिक्षुओं ने कहाः आप क्या कहते हैं? उन्होंने कहाः देखो न, मैंने तुमसे कल कहा था, अब यह आदमी आज भी कुछ कहना चाहता है, लेकिन ऐसे भाव से भर गया है कि आंसू गिराता है, शब्द नहीं मिलते, पैर पकड़ता है, शब्द नहीं मिलते। हम समझ गए। लेकिन कुछ और कहना है?

उस आदमी ने कहाः कुछ और तो नहीं, यही कहना है कि रात भर मैं सो नहीं सका। क्योंकि मुझे लगा कि आज तक सदा आपका प्रेम मिला, थूक कर मैंने योग्यता खो दी। अब आपका प्रेम मुझे कभी नहीं मिल सकेगा।

बुद्ध ने कहाः सुनो, आश्चर्य! क्या मैं तुम्हें इसलिए प्रेम करता था कि तुम मेरे ऊपर थूकते नहीं थे? क्या मेरे प्रेम करने का यह कारण था कि तुम थूकते नहीं थे? तुम कारण ही नहीं थे मेरे प्रेम करने में। मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि मैं मजबूर हूं और प्रेम के सिवाय कुछ भी नहीं कर सकता हूं।

एक दीया जलता है, कोई भी उसके पास से निकले। वह इसलिए थोड़े ही उसके ऊपर उसकी रोशनी गिरती है कि तुम कैसे हो। रोशनी दीये का स्वभाव है; वह गिरती है। कोई भी निकले--दुश्मन निकले, दोस्त निकले। दीये को बुझाने वाला दीये के पास आए तो भी रोशनी गिरती है।

तो बुद्ध ने कहाः मैं प्रेम करता हूं; क्योंकि मैं प्रेम हूं। तुम कैसे हो, यह बात अर्थहीन है। तुम थूकते हो कि पत्थर मारते हो कि पैर छूते हो, यह बात निष्प्रयोजन है। इससे कोई संगति नहीं है। यह संदर्भ नहीं है।

तुम्हें जो करना हो तुम करो। मुझे जो करना है मुझे करने दो। मुझे प्रेम करना है, वह मैं करता रहूंगा। तुम्हें जो करना है, वह तुम करते रहना। और देखना यह है कि प्रेम जीतता है कि घृणा जीतती है? यह आदमी प्रेमपूर्ण है। यह आदमी प्रेयरफुल है। यह आदमी प्रार्थनापूर्ण है। ऐसे चित्त का नाम प्रार्थना है।

फिर, और जो रह गए हैं, कल बात करेंगे।

सातवां प्रवचन

विश्वासः सत्य की खोज में सबसे बड़ी बाधा

सत्य की खोज में, उसे जानने की दिशा में, जिसे जान कर फिर और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता है। और उसे पाने के लिए जिसे पाए बिना हम ऐसे तड़फते हैं जैसे कोई मछली पानी के बाहर रेत पर फेंक दी गई हो। और जिसे पा लेने के बाद हम वैसे ही शांत और आनंदित हो जाएं जैसे मछली सागर में वापस पहुंच गई हो। उस आनंद, उस अमृत की खोज में एक और दिशा और द्वार की चर्चा आज की संध्या मैं करूंगा।

सत्य को खोजने का उपकरण क्या है? रास्ता क्या है? साधन क्या है? मनुष्य के पास एक ही साधन मालूम पड़ता है, विचार। एक ही शक्ति मालूम पड़ती है कि मनुष्य सोचे और खोजे।

लेकिन सोचने और विचारने से कभी किसी को सत्य उपलब्ध नहीं हुआ है। विचार से कोई कभी कहीं नहीं पहुंचता। विचार से स्वयं के बाहर जो जगत है, उस संबंध में हम कुछ जान भी लें, लेकिन स्वयं के भीतर जो विराजमान है, उसे हम नहीं जान सकते। और हम विचार ही करते-करते जीवन व्यतीत कर देते हैं।

न मालूम कैसे मनुष्य को यह भ्रम हो गया है कि हम सोचेंगे तो हम जान लेंगे। जानने और सोचने का कोई भी संबंध नहीं है। सच तो यह है कि जो सोचना छोड़ दे, वही जान सकता है। सोचना और विचारना भी धुएं की तरह मन को घेरता है और मन के दर्पण को धूमिल करता है। मन का दर्पण पूरा, पूरा निश्छल, निर्दोष तो तभी होता है जब मन में कोई विचार भी नहीं होते।

लेकिन शायद आप कहेंगे, तो फिर हम विश्वास करें, श्रद्धा करें, उससे मिल जाएगा सत्य? उससे भी नहीं मिलेगा। विश्वास विचार से भी नीचे की अवस्था है। विश्वास का अर्थ हैः अंधापन।

विश्वास से नहीं मिलेगा। विचार से भी नहीं मिलेगा। और भी ऊपर उठना जरूरी है। इस बात को समझेंगे, तो शायद साफ हो सके कि कैसे, कैसे हम खोजें।

तो पहले हम समझें कि विश्वास क्या है?

विश्वास है अंधी स्वीकृति। विश्वास का अर्थ हैः न मैं सोचता, न मैं खोजता, न मैं ध्यान करता, न मैं निर्विचार में जाता, दूसरा कुछ कहता है उसे ही मान लेता हूं। दूसरे को इस भांति जो मानता है, उसके भीतर की आत्मा छिपी ही रह जाती है। उसे चुनौती ही नहीं मिलती कि वह जागे। और हम सब दूसरे की मान कर ही चल रहे हैं।

एक कहानी सुनी होगी आपने। लेकिन अधूरी सुनी होगी।

कुछ ऐसा हुआ है कि आधी बातें, अधूरी बातें ही लोगों को बताई जाती रही हैं। और सत्य अगर आधा बताया जाए, तो असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है। क्यों? क्योंकि असत्य तो दिख जाता है कि असत्य है। आधा सत्य दिखता भी नहीं कि असत्य है। आधा सत्य लगता है कि सत्य है।

और ध्यान रहे, आधा सत्य जैसी कोई चीज होती ही नहीं। या तो सत्य होता है पूरा या नहीं होता है। अगर कोई आपसे आकर कहे कि मैं आधा प्रेम करता हूं आपको, तो आप कहेंगे, आधा प्रेम, सुना है कभी? आधा प्रेम होता नहीं। या तो होता है या नहीं होता है। महत्वपूर्ण कुछ भी आधा नहीं होता। आधा करते ही नष्ट हो जाता है। और बहुत आधे सत्य प्रचलित हैं।

यह कहानी भी आधी ही प्रचलित है। हर स्कूल में बच्चों को पढ़ाई जाती है। जब आप बच्चे होंगे, आपने भी पढ़ी होगी। और आपके बच्चे भी आधी ही कहानी पढ़ते रहेंगे। हम सबको पता है।

एक सौदागर था, टोपियां बेचता था। किसी मेले में टोपियां बेचने जा रहा है, रास्ते में थक गया है, एक वृक्ष के नीचे रुका है। नींद लग गई है। वृक्ष पर से बंदर नीचे उतरे हैं। उन्होंने सौदागर को टोपी लगाए देखा है। उसकी टोकरी में टोपियां हैं बेचने को, उन्होंने टोपियां लगा लीं। सौदागर की नींद खुली, टोकरी खाली पड़ी है। हंसा सौदागर, क्योंकि सौदागर जानता था बंदरों की आदत। उसने ऊपर देखा, सब बंदर शान से टोपी लगाए बैठे हैं। बंदरों के सिवाय शान से टोपी लगा कर कोई बैठता ही नहीं है। टोपी लगाने में भी कोई शान होती है! और फिर अगर खादी की टोपी हो तब तो शान बहुत बढ़ जाती है।

खादी की टोपी रही होगी, क्योंकि बंदर बड़े अकड़ कर बैठे हुए थे। फिर उस सौदागर ने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। और सारे बंदरों ने अपनी टोपियां निकाल कर फेंक दी। बंदर तो नकलची हैं। बंदर तो किसी के पीछे चलते हैं। खुद तो कुछ सोचते नहीं, विचारते नहीं। बंदर ही ठहरे, सोचेंगे-विचारेंगे क्यों, विश्वास करते हैं। सौदागर ने टोपी फेंकी, तो उन्होंने भी फेंक दी।

सौदागर टोपियां समेट कर घर आ गया। इतनी कहानी आपने पढ़ी होगी। आगे की कहानी भी मैं आपको कहता हूं।

सौदागर का बेटा बड़ा हुआ। और सौदागर के बेटे ने भी वही धंधा किया जो उसके बाप ने किया था। नासमझ बेटे हमेशा वही करते हैं जो बाप करते रहते हैं। अयोग्य बेटों का यह सबूत है। बेटे आगे बढ़ने चाहिए बाप से। लेकिन न बाप को यह पसंद है कि बेटे आगे बढ़ें और न बेटों की यह हिम्मत है कि वे आगे जाएं। वह भी टोपी बेचने लगा। वह भी उसी मेले की तरफ चला। वह भी उसी झाड़ के नीचे रुका जहां बाप रुका था। क्योंकि उसने कहाः जहां हमारे बाप रुके, वहीं रुकना चाहिए।

वहीं उसी झाड़ के नीचे। वहीं उसने पेटी रखी, जहां बाप ने रखी थी। बंदर तो वृक्ष पर थे। वे ही बंदर न थे, उनके बेटे रहे होंगे। टोपी बेटों ने देखीं। उन्होंने भी सुनी थी कहानी कि हमारे बाप ने टोपी निकाल कर पहन ली थी।

सौदागर का बेटा सो गया। बंदर उठे, टोपियां पहन कर ऊपर चले गए। नींद खुली सौदागर के बेटे की। हंसा, लेकिन यह हंसी झूठी थी। यह बाप की कहानी पर आधारित थी। बाप ने कहा था कभी डरना मत, अगर बंदर टोपी पहन ले, घबड़ाना मत। बंदरों से टोपी छीनना बहुत कठिन नहीं है। अपनी टोपी निकाल कर फेंक देना।

बेटे ने भी टोपी निकाल कर फेंक दी। लेकिन एक चमत्कार हुआ। कोई बंदर ने टोपी नहीं फेंकी। एक बंदर के पास टोपी नहीं मिली थी, वह नीचे उतरा, उस टोपी को भी लगा कर वृक्ष पर चढ़ गया।

बंदर अब तक सीख चुके थे। और आदमी अब तक नहीं सीखा था। बंदर धोखा खा चुके थे एक बार। अब बार-बार यह धोखा नहीं चल सकता था। यह आधी कहानी किसी किताब में नहीं लिखी है। और यह आधी कहानी जब तक न लिखी हो, तब तक कहानी बिल्कुल खतरनाक है।

कुछ लोग हैं, जो दूसरों को देख कर चलते हैं। खुद कभी नहीं चलते। कुछ लोग हैं, जो दूसरों से बंधे-बंधाए उत्तर सीख लेते हैं, खुद कभी कोई उत्तर नहीं खोजते। कुछ लोग हैं, जो समाधान हमेशा उधार ले आते हैं। जिनके पास अपना कोई समाधान नहीं है। और समस्याएं रोज नई हो जाती हैं और समाधान पुराने रहते हैं, तो फिर बहुत मुश्किल हो जाती है।

सत्य की खोज में भी नकल नहीं चल सकती है। सत्य की खोज में भी बंधे-बंधाए रेडीमेड उत्तर नहीं चल सकते हैं। गीता, कुरान और बाइबिल से सीखी हुई, कंठस्थ की गई बातें सत्य की खोज में काम नहीं आती हैं। खुद ही खोजना पड़ता है।

और जितने विश्वास करने वाले लोग हैं, वे नकलचियों से ज्यादा नहीं हैं। वे अपना आदमी होना खोते हैं और बंदर हो जाते हैं। जो भी किसी दूसरे के पीछे आंख बंद करके चलता है, वह आदमी होने का अधिकार खो देता है। लेकिन गुरुओं को इसी में फायदा है कि आदमी आदमी न हो, बंदर हो। इसलिए हर गुरु के पास बहुत बंदरों की तादाद इकट्ठी मिलेगी।

जो लोग भी खुद हिम्मत नहीं जुटाते कुछ करने की और किसी के पीछे चल पड़ते हैं, उनका तो शोषण होता ही है। शोषण उतना बुरा नहीं, वे सत्य को जानने से भी सदा को वंचित रह जाते हैं। क्योंकि सत्य की तरफ जाने का जो पहला कदम है, वह अपने पैर पर खड़ा होना है। अपनी हिम्मत, अपना साहस, अपनी क्षमता, अपनी खोज। जो इसके लिए तैयार नहीं है और कहता है दूसरे से उधार मांग लेंगे, किसी का पैर पकड़ लेंगे, किसी की पूंछ पकड़ लेंगे, किसी के पीछे चल पड़ेंगे और सब हो जाएगा। वह गलती में है। विश्वास से कोई कहीं नहीं पहुंचता है।

विश्वास उधार विचार है। लेकिन इसका क्या यह अर्थ है कि हम विचार करें तो कहीं पहुंच जाएंगे? हम खुद ही विचार करते रहें तो कहीं पहुंच जाएंगे? अब थोड़े गहरे में अगर हम देखेंगे, तो विचार भी जो हम करते हुए मालूम पड़ते हैं, वह भी हमारा अपना नहीं होता है। विश्वास करने वाला भी उधार होता है। और विचार करने वाला दिखाई तो पड़ता है कि विश्वास नहीं करता, लेकिन अगर हम उसके विचारों की बहुत जांच-परख करेंगे तो पाएंगे कि उसके विचार भी सब उधार हैं। थोड़ा सा फर्क है। और वह फर्क यह है कि उसने विचार तर्क कर-कर के संगृहीत किए हैं। अंधे होकर नहीं किए हैं, सोचा है। लेकिन आदमी सोच क्या सकता है? सोचेंगे क्या? जो पता नहीं है क्या वह सोचा जा सकता है? जिसका कोई ज्ञान नहीं है, जिसका कोई बोध नहीं है, क्या वह विचारा जा सकता है? हम वही विचार सकते हैं जो पता हो। जो पता नहीं है उसको विचार भी नहीं सकते हैं।

जो अज्ञात है, अननोन है, उसे हम सोचेंगे कैसे? विश्वास काम नहीं देगा, क्योंकि विश्वास दूसरे से उधार है। विचार थोड़ा बल देगा, हिम्मत देगा, अपने पैरों पर खड़ा करेगा, लेकिन अकेला विचार भी नहीं पहुंचा देगा। क्योंकि विचार वहां तक चल सकता है जहां तक हमें ज्ञात है। जहां हमें ज्ञात नहीं है वहां विचार ठप्प हो जाता है, उसके आगे कोई मार्ग नहीं पाता।

क्या आपने कभी कोई ऐसी बात विचारी है जो आपको ज्ञात ही न हो? आप कहेंगे, कई बार। आप कहेंगे, कई बार हम ऐसी बात विचारते हैं कि एक सोने के घोड़े पर बैठे हुए आकाश में उड़ रहे हैं। अब हमें सोने का घोड़ा ज्ञात भी नहीं है। सोने का घोड़ा देखा भी नहीं है। सोने का घोड़ा उड़ता भी नहीं है। सभी बातें अज्ञात हैं। फिर भी हम सोचते हैं।

लेकिन नहीं, यह सोचना न हुआ। आपको घोड़े का ज्ञान है, सोने का ज्ञान है, उड़ते हुए पक्षियों को देखा है। इन तीनों का जोड़-तोड़ करके आप सोने का उड़ता हुआ घोड़ा बना लेते हैं। यह कोई नई बात न हुई। ये तीन चीजों को तोड़ कर नया निर्माण हुआ।

तो विचार में आदमी बहुत से विचारों को संगृहीत करके, नया दिखाई पड़ने वाला, अॅपेरन्ट, वस्तुतः नहीं, नया दिखाई पड़ने वाला विचार निर्मित कर सकता है। लेकिन उससे कोई सत्य का उदघाटन नहीं होगा।

अगर हम अपने सारे विचारों को फैला कर रख लें अपने सामने और खोजें कि इनमें कौन मेरा है, तो हम पाएंगे कि सब विचार दूसरों से लिए गए हैं। कहीं से सुने गए हैं, पढ़े गए हैं, इकट्ठे किए गए हैं। और उन सब में नया संग्रह बना लिया है। नया संग्रह मौलिक मालूम पड़ता है, ओरिजिनल मालूम पड़ता है। लेकिन कोई विचार मौलिक नहीं होता है। विचार मौलिक हो ही नहीं सकता है। विचार भी उधार ही है। विश्वासी भी उधार है, लेकिन वह अंधा होकर उधार है। विचार वाला भी उधार है, लेकिन वह तर्कनिष्ठ होकर, वह थोड़ा रीजन का और तर्क का उपयोग कर रहा है। लेकिन तर्क से भी क्या मिलता है? क्या मिला है?

जो विश्वासी हैं, वे आस्तिक हो जाते हैं। जो तार्किक हैं, वे नास्तिक हो जाते हैं। धार्मिक उनमें से कोई भी नहीं होता। आस्तिक भी धार्मिक नहीं है और नास्तिक भी धार्मिक नहीं है। आस्तिक विश्वासी है, उसने दूसरों के विश्वास को पकड़ लिया। नास्तिक भी दूसरों के विचार को पकड़ता है लेकिन तर्क की प्रक्रिया से गुजार कर पकड़ता है। लेकिन तर्क से क्या सिद्ध होता है? तर्क से भी कुछ सिद्ध नहीं होता। तर्क भी बूढ़े बच्चों का खेल है। जिनकी उम्र ज्यादा हो गई है, वे एक खेल खेल सकते हैं, तर्क का।

मैंने सुना है, एक आदमी अमरीका के एक बड़े नगर में गया और उसने सारे गांव में जाकर इत्तला की कि मैं एक ऐसा घोड़ा लाया हूं जैसा किसी ने कभी नहीं देखा होगा। ऐसा घोड़ा कभी हुआ ही नहीं। यह बिल्कुल मौलिक घोड़ा है। इस घोड़े की खूबी यह है कि इस घोड़े की पूंछ वहां है जहां मुंह होना चाहिए और मुंह वहां है जहां पूंछ होनी चाहिए।

दस रुपये की टिकट रखी थी। हजारों लोग इकट्ठे हो गए। आप भी रहे होंगे उस नगर में तो जरूर गए होंगे। कोई गांव में बचा ही नहीं। सारे लोग गए। ऐसा घोड़ा तो देखना जरूरी था। हॉल खचाखच भर गया है, लोग चिल्ला रहे हैं कि जल्दी करो, घोड़ा निकालो।

वह आदमी कहता है, थोड़ा ठहरिए। यह कोई साधारण घोड़ा नहीं है। लाते-लाते वक्त लगता है। फिर बहुत मुश्किल हो गई। इंच भर जगह नहीं है। फिर वह घोड़ा ले आया, मंच पर से पर्दा उठा दिया। एक क्षण तो लोगों ने देखा। लेकिन घोड़ा तो बिल्कुल साधारण था, जैसे घोड़े होते हैं। तो लोग चिल्लाए कि क्या धोखा दे रहे हो? मजाक कर रहे हो? यह घोड़ा तो बिल्कुल साधारण है।

उस आदमी ने कहाः चुप, ठीक से समझ लो तर्क मेरा। मैंने घोषणा की थी कि घोड़े का मुंह वहां है जहां पूंछ होनी चाहिए, पूंछ वहां है जहां मुंह होना चाहिए। गौर से देखो।

लोगों ने फिर गौर से देखा। साधारण घोड़ा था, जहां पूंछ थी वहां पूंछ थी, जहां मुंह था वहां मुंह था। लेकिन तब ख्याल आया लोगों को और हंसी छूट गई। जो तोबड़ा घोड़े के मुंह में बांधते हैं वह उसने उसकी पूंछ में बांधा हुआ था।

उसने कहाः जो मैंने कहा था वह देख लो। मुंह वहां है जहां पूंछ होनी चाहिए और पूंछ वहां है जहां मुंह होना चाहिए। तोबड़ा पूंछ में बंधा है। दिखता है कि नहीं?

अब कुछ कहने का उपाय न था। तर्क तो ठीक ही था। लोग चुपचाप वापस निकल गए। लेकिन तर्क से इतना ही खेल हो सकता है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। तर्क ज्यादा से ज्यादा पूंछ वहां कर सकता है जहां मुंह हो, मुंह वहां कर सकता है जहां पूंछ हो। इससे ज्यादा तर्क कुछ भी नहीं कर सकता। चीजें जैसी हैं वे वैसी ही रहती हैं, तर्क से कोई फर्क नहीं पड़ता। और तर्क इसलिए दोहरी धार की चीज है। चाहे पक्ष में उपयोग करो, चाहे विपक्ष में उपयोग करो। उससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

मेरे एक बहुत निकट मित्र थे। एक बड़े वकील थे। ज्यादा काम होता था उनके ऊपर। बहुत भार था। हिंदुस्तान में भी वकालत थी और लंदन में भी थी। बहुत मुश्किल में रहते थे। कई बार तैयारी का मौका भी नहीं मिलता था।

एक दिन अदालत में गए हैं। कोई मुकदमा लड़ रहे हैं। और उन्हें पक्का ख्याल नहीं रहा कि वे किसकी तरफ से हैं--पक्ष में हैं कि विपक्ष में हैं। तो वे अपने ही ग्राहक के खिलाफ बोलने लगे। वह आदमी बहुत घबड़ाया कि यह आदमी क्या कह रहा है? और आधे घंटे तक जोर से उन्होंने पैरवी की। उनका जो ग्राहक था, उसके तो प्राण निकल गए कि मर गए। हमारा ही वकील हमारे खिलाफ सिद्ध कर रहा है। और इतने जोर से उन्होंने सिद्ध किया। विरोधी वकील भी बहुत हैरान था कि मैं क्या सिद्ध करूं? और यह क्या हो रहा है? तब उनके मुंशी ने आकर पास में उनके कहा कि क्या कर रहे हैं आप? आप तो अपने ही आदमी के खिलाफ बोल रहे हैं।

उन्होंने कहाः ऐसा क्या? तो ठहरो। और तब उन्होंने कहा कि मजिस्ट्रेट महोदय, अभी मैंने वे बातें कहीं जो मेरा विरोधी वकील कहेगा, अब मैं इनका खंडन शुरू करता हूं।

तर्क का कोई मतलब थोड़े ही है। सिर्फ खेल है। सिर्फ खेल है। पंडित भी वही कर रहे हैं, वकील भी वही कर रहे हैं, नेता भी वही कर रहे हैं। तर्क सिर्फ खेल है। और जब तक दुनिया तर्क के खेल में पड़ी रहेगी, तब तक सत्य का कोई निर्णय नहीं हो सकता।

उसे कोई मतलब ही नहीं है। तर्क इस तरफ भी बोलता है, उस तरफ भी बोल सकता है। जो दलील ईश्वर को सिद्ध करती है, वही दलील ईश्वर को असिद्ध कर देती है।

ईश्वर को सिद्ध करने वाला कहता है कि ईश्वर के बिना दुनिया हो ही कैसे सकती है। दुनिया है तो ईश्वर होना चाहिए। क्योंकि हर चीज को कोई बनाने वाला है। दुनिया है तो बनाई गई है। तो बनाने वाला चाहिए। आस्तिक कहता है, यह मेरी दलील है, ईश्वर को सिद्ध करता हूं मैं, दुनिया है, उसका बनाने वाला होगा। बनाने वाला ईश्वर है। नास्तिक कहता है, मानते हैं तुम्हारी दलील। लेकिन तुम्हारी दलील ईश्वर को सिद्ध नहीं करती। गलत करती है। क्योंकि हम यह कहते हैं कि ठीक है यह बात। हर चीज को बनाने वाला चाहिए। ईश्वर है, फिर ईश्वर को बनाने वाला कौन है?

अगर तुम कहते हो दुनिया बिना बनाए नहीं बन सकती, हम मानते हैं। ईश्वर ने बनाई दुनिया, अब हम यह पूछते हैं, ईश्वर को किसने बनाया? क्योंकि बिना बनाए ईश्वर भी कैसे बन सकता है?

बिना बनाए कुछ बनता ही नहीं। अब यह खेल चले, अब इस खेल में खेलते रहो। नास्तिक-आस्तिक हजारों साल से खेल रहे हैं।

एक बार तो ऐसा हुआ, एक गांव में एक महा आस्तिक था और एक महा नास्तिक। और गांव बड़ी मुश्किल में था। जहां भी पंडित होते हैं, वहां गांव मुश्किल में हो जाता है। क्योंकि वह आस्तिक समझाता था, ईश्वर है और नास्तिक समझाता था, ईश्वर नहीं है। दिन-रात लोग ऊब गए थे। वे कहते थे, हमें छोड़ो हमारे भरोसे पर। हमें कोई फिकर नहीं है ईश्वर हो या न हो, हमें दूसरे काम करने दो।

लेकिन वे कहां मानने वाले थे। एक समझा कर जाता और पीछे से दूसरा आता। आखिर गांव के लोगों ने कहाः यह बड़ी मुसीबत हो गई। हमें कुछ निर्णय करना चाहिए। सारी दुनिया की यह हालत हो गई है।

मुसलमान, हिंदू, ईसाई, जैन, बौद्ध, सारी दुनिया को परेशान किए हुए हैं। एक का मुनि जाता है, दूसरे का संन्यासी आता है, तीसरे का पंडित आता है; वह कुछ कहता है, वह कुछ कहता है। वे सब गड़बड़ कर जाते हैं।

गांव के लोगों ने कहाः भई तुम दोनों निपटारा कर लो एक रात, जो जीत जाए हम उसके साथ हैं। हम सदा जीतने वाले के साथ हैं। हमें कोई मतलब नहीं कि ईश्र्वर हो या न हो।

विवाद हुआ पूर्णिमा की रात। सारा गांव इकट्ठा हुआ। अदभुत विवाद था। आस्तिक ने ऐसी दलीलें दीं कि सिद्ध कर दिया कि ईश्वर है। और नास्तिक ने ऐसी दलीलें दीं कि सिद्ध कर दिया कि ईश्वर नहीं है। और आखिरी में यह हुआ कि आस्तिक इतना प्रभावित हो गया नास्तिक से कि नास्तिक हो गया और नास्तिक इतना प्रभावित हो गया आस्तिक से कि आस्तिक हो गया। और गांव की मुसीबत कायम रही। क्योंकि फिर गांव में एक आस्तिक रहा और एक नास्तिक रहा। गांव के लोगों ने कहाः हमें क्या फायदा हुआ? हमारी परेशानी वही की वही है।

तर्क का कोई मतलब नहीं है बहुत। तर्क का कोई बहुत अर्थ नहीं है। तर्क जो सिद्ध करता है, उसी को असिद्ध कर देता है। तर्क बिल्कुल खेल है, खिलवाड़ है। इसीलिए तो तर्क के द्वारा आज तक कुछ भी सिद्ध नहीं हो सका। सिद्ध हो सका कि हिंदू सही हैं? अगर सिद्ध हो जाता, सारी दुनिया हिंदू हो गई होती। सिद्ध हो सका कि जैन सही हैं? सिद्ध होता, सारी दुनिया जैन हो गई होती। सिद्ध हो जाता मुसलमान सही हैं, सारी दुनिया मुसलमान हो गई होती। कुछ सिद्ध नहीं होता। कुछ सिद्ध हो ही नहीं सकता। तर्क के रास्ते से जो चला है, वहां कुछ भी कभी सिद्ध नहीं होता। सिर्फ खेल चलता है।

और पंडित जो खेल खेलते हैं, वह हमें समझ में भी नहीं आता। क्योंकि वह बहुत बारीक खेल है। वह इतना बारीक खेल है कि वहां बाल की खाल निकलती रहती है। और जनता को कुछ पता नहीं चलता। जनता कहती है ठीक है।

इसीलिए तो सारे लोगों ने यह तय कर रखा है कि जहां हम पैदा हो गए वही हमारा धर्म है। यह सस्ती तरकीब है। क्योंकि अगर तय करना पड़े तर्क से तो कभी तय ही नहीं होगा। जिंदगी बीत जाएगी, आप तय न कर पाएंगे कि आप हिंदू हैं कि मुसलमान हैं कि ईसाई हैं। इसलिए सस्ता नुस्खा निकाला हमने कि जहां जो पैदा हो जाए। पैदा होने में भी कोई कसूर है? कोई आदमी मुसलमान के घर में पैदा हो गया, उसका बेटा मुसलमान है। क्यों? क्योंकि अगर बेटा तय करने चले विचार करके तो जिंदगी बीत जाएगी, तय न होगा कि क्या होना है? हिंदू होना कि मुसलमान होना। कभी तय नहीं हो सकता। इसलिए हमने एक ऐसी तरकीब निकाली कि जिसमें तय करने की जरूरत ही नहीं है।

अब पैदा होने से क्या संबंध है हिंदू-मुसलमान होने का? यह तो बड़ी पागलपन की बात है। कल कोई कांग्रेसी कहने लगे कि हमारा बेटा कांग्रेसी, क्योंकि कांग्रेसी बाप है उसका। कम्युनिस्ट का बेटा कहे मैं कम्युनिस्ट हूं क्योंकि मेरा बाप कम्युनिस्ट है। अभी इतनी नासमझी नहीं आई, लेकिन आ जाएगी। क्योंकि इतना ही तर्क वहां चलता है। और कुछ जब तय नहीं होगा तो लोग कहेंगे, अब जन्म से ही तय कर लो।

अब जन्म से कहीं सिद्धांत तय हुए हैं? सत्य तय हुए हैं? लेकिन हजारों साल से यह होता रहा है कि हम तर्क के आस-पास घूमते हैं। कुछ लोग विश्वास के आस-पास घूम कर भटक जाते हैं। कुछ लोग तर्क के आस-पास घूम कर भटक जाते हैं। और कभी कुछ निर्णय नहीं हो सकता। क्योंकि अंधेरे में टटोलना है यह, निर्णय क्या होना है।

एक गांव में एक सम्राट ने यह तय किया था कि मैं बहुत जल्दी अपने देश से असत्य का निकाला कर दूंगा, मैं असत्य को रहने नहीं दूंगा अपने देश में। और जो आदमी असत्य बोलेगा, उसे सूली पर लटका दूंगा। रोज एक आदमी नियमित रूप से सूली पर लटकाया जाएगा, ताकि सारा गांव देखे कि क्या हालत होती है असत्य बोलने वाले की।

उसे पता नहीं था। किसी कानूनविद को कभी पता नहीं रहा है कि फांसियों से, कोड़े मारने से, जेलों में बंद करने से कोई चीज बंद नहीं होती। कोई चीज बंद ही नहीं होती। सब चीजें बढ़ती चली जाती हैं। चोरों को बंद करो, चोर बढ़ते हैं। बेईमानों को बंद करो, बेईमानी बढ़ती है। और बेईमानों को बंद करने के लिए जिनको नियुक्त करो, वे दोहरे बेईमान सिद्ध होते हैं। और चोरों को पकड़ने के लिए जिनको पहरे पर रखो, वे चोरों के बाप सिद्ध होते हैं। होने ही वाले हैं।

इंग्लैंड में तो कोड़े मारे जाते थे आज से सौ साल पहले तक चोरी करने वाले को, चौरस्ते पर खड़े करके कोड़े मारते थे। इसलिए ताकि सारा गांव देख ले कि क्या हालत होती है चोरों की।

लेकिन फिर बंद करने पड़े। और बंद क्यों करने पड़े, पता है आपको? गांव में जब कभी चोर को कोड़े लगते लंदन में, हजारों लोग देखने इकट्ठे होते। और पता यह चला कि जब हजारों लोग कोड़े मारते हुए देखते हैं, तब कइयों के जेब कट जाते हैं।

अब एक चोर को कोड़े पड़ रहे हैं। और भीड़ आई है देखने। और जनता मुग्ध होकर देख रही है। यहां जेब कट गए। वहीं जेब कट रहे हैं जहां कोड़े पड़ रहे हैं।

तो फिर लोगों ने सोचा कि फिजूल का पागलपन है। इसमें कोई मतलब ही नहीं है। यह तो और जेबकटों के लिए सुविधा बनाना है। भीड़ इकट्ठी होती है, जेबकट जेब काट लेते हैं।

उस गांव के राजा ने कहाः मैं असत्य को बंद कर दूंगा। लेकिन गांव के बूढ़े लोगों ने कहाः असत्य का पता लगाना ही आज तक मुश्किल हुआ, तुम बंद कैसे करोगे? तुम कैसे तय करोगे, क्या असत्य है, क्या सत्य है?

उसने कहाः सब तय हो जाएगा।

फिर उसे फिकर हुई कि सच में तय कैसे करेंगे?

तो गांव में एक बूढ़ा फकीर है। उसने कहाः उसे बुला कर पूछ लें, वह सत्य की बहुत बातें करता है।

उसे बुलाया और कहा कि हमने यह तय किया है कि कल सुबह वर्ष का पहला दिन है, एक झूठ बोलने वाले को हम दरवाजे पर सूली पर लटकाएंगे, ताकि सारा गांव देखे।

फकीर ने कहाः सत्य-असत्य का निर्णय कैसे करोगे?

उस राजा ने कहाः क्या कोई तर्क नहीं है जिससे तय हो सके कि क्या सत्य है और क्या असत्य है? मैं अपने देश के सारे पंडितों को लगा दूंगा।

उस फकीर ने कहाः तब ठीक है। कल सुबह दरवाजे पर मैं मिलूंगा।

राजा ने कहाः मतलब?

उसने कहाः दरवाजे पर पहला प्रवेश होने वाला मैं रहूंगा। तुम अपने सारे पंडितों को लेकर मौजूद रहना। मैं असत्य बोलूंगा। अगर सूली लगानी है तो पहली सूली पर मैं चढ़ूंगा।

राजा ने कहाः हम पूछने बुलाए हैं। आप कैसी बातें करते हैं?

उसने कहाः बात वहीं कल होगी। अपने पंडितों को लेकर हाजिर रहना।

राजा अपने पंडितों को लेकर दरवाजे पर हाजिर हुआ। दरवाजा खुला गांव का। वह फकीर अपने गधे पर बैठ कर अंदर प्रवेश कर रहा है।

राजा ने कहाः गधे पर और आप जा कहां रहे हैं?

उसने कहाः मैं सूली पर चढ़ने जा रहा हूं।

राजा ने कहाः पंडितो, तो तय करो कि यह आदमी सत्य बोलता है कि झूठ?

पंडितों ने कहाः हम हाथ जोड़ते हैं। यह बहुत झंझट का आदमी है। इसमें कुछ तय ही नहीं हो सकता। अगर हम कहें कि यह सच बोलता है, तो फांसी लगानी पड़ेगी। और सच बोलने वाले को फांसी नहीं लगानी है। और हम कहें, यह झूठ बोलता है, तो फांसी लगानी पड़ेगी। और फांसी लग गई तो यह जो बोलता था वह सच हो जाएगा।

उस फकीर ने कहाः बोलो सत्य क्या है, असत्य क्या है? तर्क से निर्णय करो। और अगर निर्णय नहीं कर सकते, जब निर्णय कर लो तब मेरे पास आना, उसके बाद फिर नियम बनाना।

फिर वह नियम कभी नहीं बना। क्योंकि वह निर्णय होना ही मुश्किल है कि क्या सच है। तर्क से निर्णय होना मुश्किल है। तर्क से, क्योंकि तर्क कुछ निर्णय करता ही नहीं, सिर्फ खेल है। और जब दो तर्कों में कोई एक तर्क जीतता है, तो उसका यह मतलब नहीं होता है कि जो जीत गया वह सत्य है। उसका केवल इतना मतलब होता है कि जो जीत गया वह खेल में ज्यादा कुशल है। और कोई मतलब नहीं होता। जब दो तर्कों में एक तर्क जीतता है, तो जीत जाने वाला सत्य नहीं होता। जीत जाने वाला उस खेल खेलने में कुशल होता है, बस।

जो आदमी शतरंज खेल रहे हैं, तो जो शतरंज में जीत जाता है, वह कोई सत्य होता है? नहीं, वह ज्यादा कुशल होता है। जो हार गया वह असत्य होता है? नहीं, वह कम कुशल होता है। हार-जीत से सत्य-असत्य तय नहीं होता। सिर्फ कम कुशलता, ज्यादा कुशलता सिद्ध होती है। और ज्यादा कुशल जो जीत जाता है वह कहता है, जो मैं हूं वह सत्य है। तर्क भी शब्दों और विचारों का शतरंज है, इससे ज्यादा नहीं है।

इसलिए कोई यह न सोचे कि जब मैं कहता हूं, विश्वास से नहीं मिलेगा, तो तर्क करने से मिलेगा?

मैं कहता हूं, तर्क करने से भी नहीं मिलेगा, विचार करने से भी नहीं मिलेगा।

तो आप मुझसे कहेंगे, विश्वास करने से नहीं मिलेगा और विश्वास न करना हो तो विचार करना पड़ेगा? फिर आप कहते हैं विचार से भी नहीं मिलेगा?

निश्चित ही यही मैं कहता हूं।

यह ऐसा ही है जैसे किसी आदमी के पैर में कांटा लग गया हो और हम कहें कि दूसरा कांटा ले आओ ताकि हम इसका यह कांटा निकाल दें। वह आदमी कहे कि क्या कर रहे हैं आप? मैं एक ही कांटे से मरा जा रहा हूं और आप दूसरा कांटा लाते हैं? तो हम उससे कहेंगे कि तुम घबड़ाओ मत, दूसरा कांटा हम पहले कांटे को निकालने को लाते हैं। अगर पहला कांटा न लगा होता तो हम दूसरा कांटा कभी भी न लाते। लेकिन पहला लगा है इसलिए दूसरा लाते हैं। फिर हम दूसरे कांटे से उसके कांटे को निकाल कर बाहर कर देते हैं। वह आदमी दूसरे कांटे को नमस्कार करता है और कहता है, अब इसे मेरे घाव में रख दो। क्योंकि इसने बड़ी कृपा की। पहले कांटे को निकालने का काम किया। तो हम उससे कहेंगे, तुम पागल हो। इसने पहले कांटे को निकाल कर यह बेकार हो गया, अब इसको भी फेंक दो।

तर्क का एक उपयोग है सिर्फ कि वह आपको विश्वास से मुक्त कर दे। इससे ज्यादा कोई उपयोग नहीं है। विचार का एक उपयोग है कि वह आपको विश्वास से मुक्त कर दे। विश्वास के कांटे को निकाल दे अगर विचार का कांटा, काम पूरा हो गया। फिर दोनों कांटे एक ही बराबर हैं। फिर दोनों फेंक देने हैं।

फिर कहां? फिर कहां जाना है? फिर जाना है निर्विचार में। फिर जाना है वहां जहां कोई विचार भी नहीं है। चित्त परिपूर्ण मौन और शांत है। जहां कोई सोचना भी नहीं है। जहां हम सोच नहीं रहे कि सत्य क्या है? जहां हमने सब सोचना भी छोड़ दिया। जहां हम चुप होकर, बस हैं। अगर सत्य है तो दिख जाए, अगर नहीं है

तो यह दिख जाए। जो भी है, दिख जाए। हम इतने मौन हैं कि हम सिर्फ देख रहे हैं। हम एक दर्पण की तरह हैं और देख रहे हैं जो है।

हम सोच नहीं रहे। दर्पण सोचता नहीं, जब आप दर्पण के सामने जाते हैं तो वह यह नहीं सोचता कि यह आदमी सुंदर है कि असुंदर, यह आदमी अच्छा है या बुरा, यह आदमी काला है कि गोरा। दर्पण सोचता नहीं। दर्पण में सिर्फ वही दिखाई पड़ता है जो है। क्योंकि दर्पण सिर्फ प्रतिफलन करता है। लेकिन कुछ ऐसे दर्पण भी होते हैं जो वही नहीं दिखलाते जो आप हैं, वे दिखला देते हैं जो आप नहीं हैं।

आपने ऐसे दर्पण देखे होंगे कि आप लंबे होकर दिखाई पड़ रहे हैं, मोटे होकर दिखाई पड़ रहे हैं, तिरछे होकर दिखाई पड़ रहे हैं। इस तरह के दर्पण हैं। वे दर्पण यह बताते हैं कि उनका धरातल सीधा और साफ नहीं है। इरछा-तिरछा है, गोलाई लिए हुए है, उलटा-सीधा है। उनके धरातल पर जितनी भी इरछी-तिरछी स्थिति है उतना ही जो दिखाई पड़ता है वह विकृत हो जाता है।

सत्य की खोज के दो सूत्र हैं। एक तो सोचना नहीं और दूसरा चित्त सरल और सीधा हो, धरातल साफ हो, नीचा-ऊंचा न हो, बस। ऐसा चित्त हो तो सत्य प्रतिफलित हो जाता है। हम उसे जान लेते हैं जो वस्तुतः है और उससे मुक्त हो जाते हैं जो नहीं है। सोचना चित्त के ऊपर धूल का काम करता है। क्योंकि विचार चिपक जाते हैं। बहुत जोर से चिपकते हैं। और विचारों का इतना पर्दा बन जाता है कि उनके आर-पार जब आप देखते हैं, तो आप वही नहीं देखते जो है, वह बीच में जो पर्दा होता है, वह काम करता है।

एक आदमी है, वह तय किए हुए है कि ईश्वर नहीं है। यह एक विचार है। वह तय किए हुए है कि ईश्वर नहीं है। अब वह जहां भी देखेगा, वहीं उसको ईश्वर का न होना दिखाई पड़ेगा।

अगर रास्ते पर एक आदमी मर रहा है तो वह कहेगा कि देखो, जिस दुनिया में आदमी मरते हैं, वहां ईश्वर हो सकता है? एक आदमी गरीब है, तो वह कहेगा, देखो, जिस दुनिया में गरीबी है, वहां ईश्वर हो सकता है? वह आदमी जाएगा फूलों के पौधे के पास और कहेगा कि गिनो कांटे। एक फूल निकला है, हजार कांटे हैं। जहां हजार कांटे में मुश्किल से एक फूल निकलता है, वहां ईश्वर हो सकता है? वह तय किए हुए है कि ईश्वर नहीं है। वह हर जगह ईश्वर नहीं है इसके उपाय खोज लेगा, मार्ग खोज लेगा, तर्क खोज लेगा, विचार खोज लेगा। वह प्रिज्युडिस्ड है, वह पक्षपात से भरा है। और पक्षपात चित्त के दर्पण को ऊंचा-नीचा कर देते हैं।

एक दूसरा आदमी है, जो कहता है, ईश्वर है। वह हर जगह खोज लेगा कि ईश्वर है। अगर उनकी दुकान ठीक चल रही है, वह कहेगा कि देखो, ईश्वर के होने की वजह से दुकान ठीक चल रही है। अब बड़ा मजा है, ईश्वर को बेचारे को तुम्हारी दुकान से कोई भी सरोकार नहीं। नहीं तो तुम्हारे साथ वह भी सजा काटे।

लेकिन वह कहेगा कि ईश्वर की खुशी से सब चल रहा है। घर में कोई बीमार है और ठीक हो गया, वह कहेगा, देखो, ईश्वर की कृपा। जैसे और सब जो बीमार ठीक नहीं हुए ईश्वर उनका कोई दुश्मन है। आपके बीमार पर कृपा है उनकी। आप कुछ बड़े विशिष्ट हैं।

एक पैसा गुम जाएगा किसी का और मिल जाएगा, वह कहेगा, ईश्वर की कृपा, देखो, ईश्वर है, गुमी हुई चीज वापस मिल गई। अब जैसे ईश्वर कोई यह धंधा करता हो कि जिसका एक पैसा गुम गया वह खोजे। कोई आपकी चाकरी में हो कि आपका पैसा न गुम जाए, कि आपका हिसाब-किताब रखे।

वह जो आदमी, जो तय किए है, जो भी चारों तरफ हो रहा है, उसमें से वही अर्थ निकाल लेगा। और तब वह नहीं देखेगा जो है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक गरीब आदमी ने एक गाय खरीद ली। और गाय खरीद ली गांव के राजा की। सोचा कि राजा के पास अच्छी गाय होगी। थी भी। राजा की गाय खरीद ली। लेकिन गरीब आदमी यह भूल गया कि राजा की गाय खरीद लेना तो बहुत आसान है लेकिन उसको रखना बहुत मुश्किल है। कई लोग इस मुसीबत में पड़ जाते हैं, राजा की गायें खरीद कर।

कई तरह की राजा की गायें होती हैं, फिर पीछे बहुत महंगी पड़ जाती हैं। अब ले आए राजा की गाय। उसके सामने रखा भूसा। सूखा भूसा था। गरीब के पास हरा घास कहां? और गाय जो थी, वह कश्मीर की दूब ही चरती रही होगी। उसने जब भूसा देखा, उसने एकदम अनशन कर दिया। वह जब से गांधीजी अनशन चला गए हैं--गाय-बैल हों, आदमी, गधे, घोड़े हों, सब अनशन करते हैं। एकदम अनशन कर दिया। उसने कहा कि नहीं खाएंगे। आंख बंद करके एकदम ध्यानमग्न होकर खड़ी हो गई। आंख ही न खोले।

गरीब आदमी ने बहुत कहा कि हम तुझे माता समझते हैं। हम वह पूरी के जगतगुरु शंकराचार्य के शिष्य हैं। हम तुझे बिल्कुल माता मानते हैं। हे माता, हम पर कृपा कर, हम गरीब बेटे हैं तो भी क्या हुआ। अमीर भी बेटा होता है, गरीब भी बेटा होता है। माता सबको बराबर मानती है।

लेकिन गाय काहे को माने। गाय ने तो कभी किसी आदमी को अपना बेटा कहा नहीं। अभी तक कोई गाय ने ऐसी गलती नहीं की कि कहा हो कि आदमी हमारा बेटा है। आदमी खुद ही चिल्लाए चला जाता है, गऊ हमारी माता है। और किसी गऊ ने अब तक कोई गवाही नहीं दी कि यह बात सच है। क्योंकि कोई गाय आदमी को बेटा मानने योग्य स्थिति में नहीं मानती होगी। आदमी की योग्यता क्या कि वह गाय का बेटा हो सके।

नहीं मानी गाय। बहुत गुस्सा आया। लेकिन कर भी क्या सकता था। गांव में पूछने गया कुछ पुराने बुजुर्गों से कि क्या करें? एक बूढ़े ने कहाः कुछ करने की ज्यादा जरूरत नहीं है, तू एक हरा चश्मा खरीद ला और गाय की आंख पर चढ़ा दे।

वह एक हरा चश्मा खरीद लाया और गाय की आंख पर चढ़ा दिया। गाय ने नीचे देखा, घास हरी दिखाई पड़ने लगी, गाय उसे चरने लगी। घास तो सूखी थी, लेकिन चश्मा हरा था। गाय धोखे में आ गई। हम सब भी धोखे में आ जाते हैं। जो चश्मा है वही हमें दिखाई पड़ता है। और जिसके पास भी पक्षपात का चश्मा है वह आदमी कभी उसे नहीं जान सकता जो है।

और हम सबकी आंखों पर चश्मा है। किसी की आंख पर हिंदू का चश्मा है, किसी की मुसलमान का, किसी की आंख पर कम्युनिस्ट का, किसी की नास्तिक का, किसी का कोई, हजारों तरह के चश्मे बाजार में उपलब्ध हैं। और एक आदमी ऐसा न मिलेगा जो बिना चश्मे के जा रहा हो। सबके पास चश्मे हैं और चश्मे से देखते हैं। बस तब सब गड़बड़ हो जाता है। वह नहीं दिखाई पड़ता जो है, वह दिखाई पड़ता है जो हमारा चश्मा कहता है कि है। वही दिखाई पड़ता है।

रूस में उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति हुई। एक गांव था, एक छोटा स्कूल था। उस स्कूल में एक मास्टर था और एक विद्यार्थी था। छोटा गांव था, छोटा स्कूल था। क्रांति के बाद उसमें दो विद्यार्थी हो गए। मास्टर तो एक ही रहा। रूस के अखबारों ने खबर छापी कि हमारे गांव-गांव में शिक्षा में इतनी प्रगति हुई है कि शिक्षा करीब-करीब दुगुनी हो गई है। जहां शत-प्रतिशत विकास हुआ है। एक गांव के स्कूल में जितने विद्यार्थी थे, आज उससे ठीक दुगुने हो गए हैं।

एक अमरीकन पत्रकार वहां देखने गया, उसने कहा कि हद हो गई, झूठ की भी कोई हद होती है, इस स्कूल में केवल एक विद्यार्थी था, अब दो हो गए हैं। मास्टर तो अब भी एक ही है।

उसने प्रचार किया कि रूस में कोई शिक्षा का विकास नहीं हो रहा। दो-दो विद्यार्थियों वाले स्कूल हैं। एक-एक मास्टर वाला स्कूल है। और रूस के अखबार छाप रहे थे कि दुगुनी प्रगति हो रही है, एकदम दुगुनी। जहां जितने विद्यार्थी थे, उससे दुगुने हो गए। झूठ तो कोई नहीं बोल रहा है। अपना चश्मा है। उससे देखने का ढंग है।

जीवन के संबंध में यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि जब तक हम पक्षपात से भरे हैं, चित्त का दर्पण स्वच्छ नहीं हो सकता है।

इसलिए सब पक्षपात से छुटकारा चाहिए। मुक्ति चाहिए। पक्षपात से मुक्त हुए बिना कोई भी उस अधिकार को उपलब्ध नहीं होता जहां सत्य का प्रतिबिंब बने जैसा सत्य है। वह तो सदा बन रहा है, लेकिन हम अपने चित्त में कुछ भाव लिए हुए हैं, वे भाव विकृत करते हैं, वे भाव एकदम विकृत करते हैं। हमारे भाव ही आरोपण करते हैं। हमें वही दिखाई पड़ने लगता है जो हम देखना चाहते हैं।

निकलें, आप एक मुसलमान की मस्जिद के पास से निकलें, आपको कुछ नहीं दिखाई पड़ता कि इसमें हाथ जोड़ने योग्य है। एक मुसलमान बिना हाथ जोड़े निकल जाए, तो ऐसा लगता है कि भारी भूल हो गई, पछतावा होता है।

हनुमान जी की मढिया के पास से आप निकलते हैं, हाथ एकदम जुड़ जाते हैं। कोई दूसरा आकर हनुमानजी की मढिया के पास आकर खड़ा होता है, देखता है, बड़े अजीब लोग हैं, एक पत्थर पर लाल रंग पोता हुआ है और उसको हाथ जोड़ कर नमस्कार कर रहे हैं।

है क्या यहां? हमें वही दिखता है जो हम देखने की तैयारी लिए हुए हैं। और वही दिखता चला जाता है। और यह सारे तलों पर सही है। इस बात को कि हम पक्षपात से भरे हैं, जो आदमी ठीक से समझ लेगा, उसे पक्षपात से मुक्त होने में जरा भी कठिनाई नहीं है। जरा भी कठिनाई नहीं है कि वह अपने पक्षपात को छोड़ दे और चीजों को सीधा देखे। और साथ ही विचार करने के भ्रम को छोड़ दे कि मैं विचार करके जान लूंगा उसे जो है। विचार करके हम कभी भी नहीं जान सकेंगे। विचार करके अगर हम जान सकते होते, तो हमने बहुत विचार किया है। जन्मों-जन्मों से विचार किया है। विचार का अंबार लगा दिया है। हमने जिंदगी भर सोचा है, सब सोच रहे हैं। लेकिन कहां कोई सोचने से कभी पहुंचता है। सोचते चले जाते हैं, सोचते चले जाते हैं। न मालूम कितना ढेर लग जाता है तर्कों का, शब्दों का, विचारों का। पांडित्य इकट्ठा हो जाता है, फिर भी हम वहीं के वहीं खड़े होते हैं।

पूछें किसी पंडित से कि क्या जान लिया है? उपनिषद दोहरा देगा, गीता दोहरा देगा, ब्रह्मसूत्र दोहरा देगा, सब दोहरा देगा। लेकिन उससे पूछें कि नहीं, तुमने जो सीखा वह हम नहीं पूछते, हम पूछते हैं तुमने जो जाना है। तुमने जाना क्या है? हम वह नहीं पूछते जो तुमने विचारा है। हम वह पूछते हैं जो तुमने देखा है। तुम्हारा दर्शन क्या है? फिलासफी नहीं पूछते।

और ध्यान रहे, फिलासफी और दर्शन का एक ही मतलब नहीं होता। जैसे इस वक्त चलता है सारे मुल्क में कि एक ही मतलब होता है। और राधाकृष्णन जैसे लोग लिखते हैं, इंडियन फिलासफी। इससे गलत कोई बात नहीं हो सकती। दर्शन का मतलब फिलासफी होता ही नहीं। फिलासफी का मतलब होता हैः सोचना और दर्शन का मतलब होता हैः देखना। देखने और सोचने में जमीन-आसमान का फर्क है।

एक अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में सोचता है, देखता नहीं। इसलिए अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में जो कुछ कहे, वह उसकी फिलासफी है। एक आंख वाला आदमी प्रकाश को देखता है, तो वह प्रकाश के संबंध में जो कुछ कहे, वह उसका दर्शन है, फिलासफी नहीं है।

इंडियन फिलासफी जैसी कोई चीज ही नहीं होती। यह सरासर झूठ है। इंडियन दर्शन हो सकता है। पश्चिम के एक विचारक ने एक नया शब्द गढ़ा है दर्शन के लिए, फिलोसिया। कहता है, देखने की बात है, सोचने की बात नहीं है।

हम अगर अंधे हैं तो क्या प्रकाश को सोच सकते हैं? एक अंधा कोशिश करे, कोशिश करे, कोशिश करे, पढ़े... अंधों की किताबें होती हैं और सच तो यह है कि अंधों की ही किताबें होती हैं। उन किताबों में पढ़ रहे हैं। निकाल रहे हैं। समझ रहे हैं। और मजा यह है कि प्रकाश चारों तरफ बरस रहा है।

एक अंधा आदमी अपनी किताब में पढ़ेगाः प्रकाश क्या है? प्रकाश का क्या अर्थ है? परिभाषा क्या है? प्रकाश कैसा होता है? कैसा नहीं होता है? कौन लोग प्रकाश को देखते हैं? कौन लोग नहीं देखते हैं?

प्रकाश के संबंध में अंधा आदमी पढ़ेगा। आंख वाला देखेगा। और देखने से जाना जा सकता है। पढ़ने से क्या जाना जा सकता है? हां, लेकिन कुछ जाना जा सकता है। पढ़-पढ़ कर अंधे आदमी को भी परिभाषा याद हो सकती है। और अगर कोई पूछे कि बोलो प्रकाश क्या है? तो बता सकता है कि मैंने यह-यह पढ़ा। प्रकाश यह-यह है। उपनिषद में ऐसा लिखा है। गीता में ऐसा लिखा है। बाइबिल में ऐसा लिखा है। महावीर ने ऐसा लिखा। बुद्ध ने ऐसा लिखा। सबका लिखा मैं जानता हूं। प्रकाश ऐसा है। लेकिन थोड़ी देर बाद वह अंधा आदमी पूछता है, बाहर जाने का रास्ता कहां है? मुझे जरा बाहर जाना है। उससे कहो, तू तो प्रकाश को जानता है, चला जा बाहर। वह कहेगा कि नहीं, मेरे पास आंखें नहीं हैं, प्रकाश को मैं कहां जानता हूं, प्रकाश के संबंध में जानता हूं। संबंध में जानना एक बात है, प्रकाश को जानना बिल्कुल दूसरी बात है।

मैंने सुना है, रामकृष्ण कहते थे कि एक आदमी था, अंधा। कुछ मित्रों ने उसे भोजन पर बुलाया है। खीर बनाई है। वह खीर खाकर पूछने लगा, कैसी है यह खीर? कैसा है इसका रंग? कैसा है इसका रूप? मुझे बहुत स्वादिष्ट लगती है। मित्रों ने कहाः समझाएं बेचारे को। मित्र समझाने लगे--शुभ्र है, बिल्कुल शुभ्र है, सफेद है। दूध की बनी है। दूध देखा है कभी?

अब पागल रहे होंगे मित्र। अंधे आदमी को अगर खीर दिखती तो दूध भी दिख सकता था। वे उससे पूछते हैं, दूध देखा है कभी?

वह आदमी कहता है, दूध! दूध क्या होता है? कैसा होता है? बताओ मुझे? समझाओ मुझे? और उलझाओ मत। क्योंकि मुझे खीर का ही पता नहीं। अब तुमने एक नया सवाल खड़ा कर दिया कि दूध क्या होता है?

वे कहने लगे, दूध से ही बनती है खीर।

उन्होंने कहाः तब ठीक है, पहले दूध समझाओ, फिर खीर समझ लेंगे।

मित्रों ने कहाः दूध? कभी बगुला देखा है आकाश में उड़ता है, नदियों के किनारे मछलियां मारता है, सफेदझक बगुला होता है, देखा है कभी बगुला?

उस आदमी ने कहाः क्या बातें करते हो? और मुश्किल खड़ी कर दी। यह बगुला क्या है? अब पहले बगुला समझाओ, तब मैं दूध समझूं, तब खीर समझूं। तुम और पहेली बढ़ा रहे हो। कुछ ऐसी बात बताओ जो मैं समझ सकूं। कुछ बगुले के संबंध में ऐसा समझाओ जो मुझ अंधे को समझ में आ सके।

एक मित्र आगे आया। ज्यादा होशियार होगा। ज्यादा होशियार लोग हमेशा खतरनाक होते हैं। आगे बढ़ कर उसने, वह अपना हाथ अंधे के पास ले गया और कहाः मेरे हाथ पर हाथ फेरो।

अंधे ने हाथ पर हाथ फेरा और कहाः क्या मतलब है?

उस आदमी ने कहाः बगुले की गर्दन इसी तरह सुडौल होती है। जैसा तुमने मेरे हाथ पर हाथ फेरा, ऐसी ही लंबी, सुडौल।

वह अंधा बोला, समझ गया, समझ गया, समझ गया कि खीर हाथ की तरह सुडौल होती है। दूध हाथ की तरह सुडौल होता है। समझ गया, बिल्कुल समझ गया।

मित्रों ने कहाः खाक नहीं समझे, और मुश्किल हो गई। इससे तो नहीं समझते थे अच्छा था। कम से कम इतना तो था जो नहीं समझते थे, पता था। और एक झंझट हो गई। अब किसी को जाकर बता मत देना कि दूध और हाथ की तरह सुडौल होता है। तुम तो नासमझ बनोगे ही और हम भी नासमझ बनेंगे।

उस अंधे ने कहाः लेकिन तुम ही बताते हो।

अंधे को कुछ भी समझाएं प्रकाश के संबंध में, समझेगा कैसे? चाहिए आंख। हम भी सोचते हैं सत्य के संबंध में। सोचेंगे क्या? और जितना सोचेंगे उतनी मुश्किल हो जाएगी। उतनी ऐसी परिभाषाएं हमें पकड़ जाएंगी कि वही सुडौल हाथ वाली बात हो जाएगी।

पूछो किसी से ईश्वर क्या है? तो वह कुछ न कुछ बताएगा। कोई आदमी इतनी हिम्मत का नहीं मिलेगा कि कहे कि मुझे पता नहीं, मेरे पास आंख ही नहीं है ईश्वर को देखने की, मैं कैसे बताऊं? मुझे पता नहीं वह है या नहीं है। मुझे कुछ भी पता नहीं है।

नहीं, वह कहेगा कि है; चार हाथ हैं उसके, पद्म रखे हुए हैं, शंख रखे हुए हैं, गदा रखे हुए हैं। कोई नाटक है, यह क्या कर रहे हैं परमात्मा, यह पद्म, शंख, गदा रखे हुए? कहीं से सीख लिया है बेचारे ने। वही सुडौल हाथ वाला मामला है। कमल पर खड़े हुए हैं। अब तक थक गए होंगे खड़े-खड़े। और कमल की तो जान निकल गई होगी। या नकली प्लास्टिक का कमल हो तो बात अलग है। मगर काहे के लिए कमल पर खड़े हुए हैं? किसी चित्रकार ने चित्र बना दिया है, वह अंधे ने उसी को पकड़ लिया। वह कह रहा है, कमल पर भगवान खड़े हुए हैं।

क्या हम जो पकड़ लेंगे, वह ऐसा ही होगा। वह ऐसा ही हो सकता है। क्योंकि हम पकड़ेंगे कहां से? कोई हमने देखा नहीं है। हमने सोचा है, पढ़ा है, समझा है, हमने जाना तो नहीं, नोइंग तो हमारी नहीं है, जानना तो हमें नहीं है। जानने से हमारा कोई संबंध नहीं हुआ कभी। बस हम इसी तरह की बातें पकड़ लेंगे। फिर अंधे-अंधे लड़ेंगे।

किसी का कोई ढंग का भगवान है। किसी का कोई ढंग का है। मुसलमान का और है, हिंदू का और है, किसी का और है। और वे सब आपस में लड़ रहे हैं कि तुम्हारा गलत है हमारा सही है। अंधों की लड़ाई चल रही है। और अंधे ऐसी लड़ाई चलवा रहे हैं कि आदमी आदमी को कटवा देते हैं। देश देश को कटवा देते हैं। जमीन को टुकड़ों-टुकड़ों में करवा दिया है। अभी हमारे ही मुल्क में दो तरह के अंधों ने मुल्क बंटवा दिया--हिंदू और मुसलमान।

मैंने सुना है कि जब हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटता था, तो जिस सीमा-रेखा पर सीमा खींची जाने वाली थी, वहां एक पागलखाना था। अब पागलखाना कहां जाए? हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में? तो लोगों ने सोचा कि चलो पागलों से ही पूछ लो कि तुम कहां जाना चाहते हो। तो पागलों से उन्होंने पूछा कि तुम कहां जाना चाहते हो, हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में?

पागलों ने कहाः हम यहीं रहना चाहते हैं। क्योंकि हिंदुस्तान-पाकिस्तान के नाम पर जो पागलपन हो रहा है, उससे हमको शक होता है कि हम ठीक हो गए हैं और सब पागल हो गए हैं। हम पर कृपा करो। हम यहीं रहना चाहते हैं, हम कहीं नहीं जाना चाहते। क्योंकि जो हो रहा है उससे हमको पक्का भरोसा आ गया कि भगवान की हम पर कृपा है और दीवाल के भीतर हम हैं, बाहर होते तो बड़ी मुश्किल हो जाती। बाहर तो सब पागल हो गए हैं।

पर अधिकारियों ने कहाः इस तरह नहीं चलेगा। तुम साफ-साफ कहो, तुम्हें कहां जाना है? हालांकि रहोगे तुम इसी पागलखाने में, लेकिन तुम जो निर्णय करो, चाहे हिंदुस्तान में चले जाओ, चाहे पाकिस्तान में।

पागलों ने कहाः बड़ी अदभुत बातें कर रहे हैं। रहेंगे हम यहीं और चाहें तो हिंदुस्तान में चले जाएं, चाहें पाकिस्तान में। यह हो कैसे सकता है? जब हम रहेंगे यहीं तो हिंदुस्तान में कैसे जा सकते हैं, पाकिस्तान में कैसे जा सकते हैं?

फिर उन्होंने कहा कि ऐसे नहीं मामला हल होता तो फिर ऐसा करो, जो हिंदू हैं वे हिंदुस्तान में चले जाएं, जो मुसलमान हैं वे पाकिस्तान में चले जाएं।

उन्होंने कहाः हम तो सिर्फ पागल हैं, हमें पता ही नहीं कि हम हिंदू हैं कि मुसलमान हैं। ज्यादा से ज्यादा इतना समझ में आता है कि हम आदमी हैं। बाकी हमें यह पता नहीं चलता कि हम हिंदू हैं कि मुसलमान।

तब कोई रास्ता न रहा। तब कोई रास्ता न रहा कि क्या करो। तो फिर यही तय हुआ कि आधे पागलखाने को हिंदुस्तान में भेज दो, आधे पागलखाने को पाकिस्तान में भेज दो। बांट दो। पागलखाना आधा-आधा बांट दो। और क्या करोगे?

बीच से दीवाल उठा दी। पागलखाना बांट दिया। आधे पागल हिंदुस्तान में चले गए, आधे पागल पाकिस्तान में चले गए। बीच में दीवाल खड़ी हो गई।

अब वे पागल कभी-कभी एक-दूसरे की दीवाल पर चढ़ जाते हैं। और चिल्लाते हैं पाकिस्तान लेकर रहेंगे, कोई चिल्लाता है हिंदुस्तान लेकर रहेंगे। अब वे पागल दीवाल पर चढ़ जाते हैं। कुछ समझदार पागल भी हैं। वे एक-दूसरे की दीवाल के पार से कहते हैं मामला क्या है? यह हो क्या गया? हम हैं तो वहीं के वहीं, और तुम हिंदुस्तान में चले गए और हम पाकिस्तान में आ गए।

यह जो बांटने वाला विचार है, मान्यता है, पक्षपात है, उसने सारी दुनिया को टुकड़ों-टुकड़ों में बांट दिया। सारी आदमी को, सारी आदमी की आत्मा को।

विचार हमेशा बांटेगा। विचार कभी भी जोड़ता नहीं, तोड़ता है। इसलिए जहां किसी आदमी ने एक विचार पकड़ा कि वह दूसरे विचार का दुश्मन हुआ। जहां एक विचार पकड़ा कि हम दूसरे के दुश्मन हुए, झगड़ा शुरू हुआ, सारी दुनिया में झगड़ा विचार का है।

फिर विचार बदल जाते हैं। फिर कभी इस्लाम, कभी हिंदू लड़ते हैं। फिर कभी पूंजीवाद और साम्यवाद लड़ता है। शक्लें बदल जाती हैं लेकिन आइडियालॉजी लड़ती चली जाती हैं, विचार लड़ते चले जाते हैं।

सत्य से विचार का कोई भी संबंध नहीं है। विचार से मत बन सकता है। ओपिनियन बन सकता है। सत्य, ट्रूथ उससे उदघाटित नहीं होता। वह तो वही उदघाटित कर पाता है जो सब मत छोड़ देता है। मताग्रह छोड़ देता है। जो कहता है न मैं हिंदू हूं, न मैं मुसलमान हूं, न मैं यह हूं, न मैं वह हूं, न आस्तिक हूं, न नास्तिक हूं। मेरा कोई पक्ष नहीं है। मैं निष्पक्ष भाव से जानना चाहता हूं, क्या है? जो सब पक्ष छोड़ कर, सब विचार छोड़

कर मौन में झांकता है, उसे सत्य उपलब्ध हो जाता है। सत्य वहां सदा है। हम अपने पक्षों से घिरे हैं और बंद हैं, और सत्य का हमें कोई अनुभव नहीं है।

लेकिन दो तरह के लोग ही हैं दुनिया में, या तो विश्वास करने वाले लोग हैं और या विचार करने वाले लोग हैं। लेकिन निर्विचार करने वाले लोग नहीं हैं। और वह निर्विचार करने वाला आदमी जब भी होता है। चाहे कोई कृष्ण, चाहे कोई बुद्ध, चाहे कोई महावीर, चाहे कोई क्राइस्ट, चाहे कोई मोहम्मद, चाहे कोई मूसा, कोई भी। जब भी कोई आदमी निर्विचार में उतर जाता है, निष्पक्षता में, तभी सत्य उसके द्वार पर खड़ा हो जाता है। वह तो खड़ा ही है। लेकिन हम खाली हों तो वह आ जाए। हमारा द्वार खुले तो वह आ जाए। हमारा द्वार है बंद। विश्वास से नहीं, विचार से नहीं, निर्विचार से उसकी उपलब्धि है। उसका द्वार हैः निर्विचार चेतना। इसे ही मैं ध्यान कहता हूं। पूरी तरह शांत, निर्विचार हो जाने का नाम ही ध्यान है।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

एक दस मिनट के लिए, इस निर्विचार में जाएं--जहां सब पक्ष छोड़ दें, सब विचार छोड़ दें।

कोई जाएगा नहीं, क्योंकि किसी के जाने से दूसरे को बाधा न हो। जिसको न भी बैठना हो, वह भी चुपचाप दस मिनट बैठा रहे। सिर्फ दूसरों का ध्यान करके। और प्रकाश हम बुझा देंगे। उसके पहले आप थोड़े-थोड़े हट जाएं। कोई किसी को छूता हुआ न हो। सब अकेले हो सकें।

फिर शांत होकर बैठ जाएं। यह प्रकाश बुझा दें। सबसे पहले तो बिल्कुल आराम से शरीर को शिथिल छोड़ कर बैठ जाएं। कोई तनाव न हो शरीर पर। बातचीत नहीं कोई करेगा।

शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें। अब मैं सुझाव देता हूं, मेरे साथ अनुभव करें। सबसे पहले शरीर शिथिल हो रहा है, ऐसा भाव करें। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... ऐसा भाव करें कि शरीर बिल्कुल ढीला और शिथिल हो गया है; ताकि हम शरीर से पीछे हट सकें। शरीर को ढीला छोड़ देना है ताकि हम पीछे चले जाएं। शरीर को जोर से जो पकडे हैं वह शरीर के पीछे कैसे जाएगा, वह शरीर पर ही रुक जाएगा। जिसे हम पकड़ते हैं उसी पर रुक जाते हैं।

छोड़ दें... मन से शरीर को छोड़ दें... पीछे हट जाएं। शरीर बिल्कुल ढीला हो गया है। शरीर एकदम शिथिल हो गया है जैसे हो ही नहीं।

श्वास शांत हो रही है। भाव करें, श्वास शांत हो रही है। श्वास बिल्कुल शांत होती जा रही है। शरीर शिथिल हो रहा है। श्वास शांत हो रही है।

श्वास शांत हो रही है... शरीर शिथिल हो रहा है... श्वास शांत हो रही है... शरीर को ढीला छोड़ दें, श्वास को भी ढीला छोड़ दें, अपने आप आए जाए, बिल्कुल ढीला छोड़ दें। और दस मिनट के लिए अब एक भाव करें कि मैं सिर्फ साक्षी हूं, मैं सिर्फ जानने वाला हूं, मैं सिर्फ ज्ञाता हूं। हवाएं बह रही हैं, मैं सिर्फ जान रहा हूं। हवाएं छू रही हैं, मैं जान रहा हूं। शीतलता छा गई है, मैं जान रहा हूं। कोई आवाज उठेगी, मैं जानूंगा। जो भी हो रहा है, मैं जान रहा हूं।

पैर में दर्द होगा, मैं जानूंगा। शरीर शिथिल हो रहा है, मैं जान रहा हूं। श्वास धीमी पड़ गई है, मैं जान रहा हूं। मन में कोई विचार चलता है, मैं जान रहा हूं। मन शांत हो रहा है, मैं जान रहा हूं। भीतर कोई आनंद फूट पड़ेगा, तो भी मैं जानूंगा। मैं सिर्फ जानने वाला हूं, मैं सिर्फ साक्षीमात्र हूं।

इसी भाव को, मैं साक्षी हूं, मैं बस साक्षी हूं, मैं सिर्फ जान रहा हूं, मैं जानने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हूं, मैं जानने की शक्तिमात्र हूं। मैं साक्षी हूं... मैं साक्षी हूं...

जैसे-जैसे यह भाव गहरा होगा, वैसे-वैसे शांति और शून्य छा जाएगा। जैसे-जैसे भाव गहरा होगा, वैसे-वैसे एक आनंद शीतलता छा जाएगी। जैसे-जैसे भाव गहरा होगा, वैसे-वैसे भीतर प्रवेश हो जाता है।

करें भाव, मैं साक्षी हूं, मैं बस साक्षी हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं... । दस मिनट के लिए अब मैं चुप हो जाता हूं। दस मिनट तक भाव करते रहें--मैं साक्षी हूं... मैं साक्षी हूं... मैं साक्षी हूं... मैं साक्षी हूं...

आठवां प्रवचन

प्रार्थना का रहस्य

तीन दिन की चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि यदि आत्मा सब सुख-दुख के पार है, तो दूसरों की आत्माओं की शांति के लिए जो प्रार्थनाएं की जाती हैं, उनका क्या उपयोग है?

यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। और समझना उपयोगी होगा। पहली तो बात यह है कि आत्मा निश्चय ही सब सुख-दुखों, सब शांतियों-अशांतियों, सब राग-द्वेषों, मूलतः सभी तरह के द्वंद्व और द्वैत के अतीत है। न तो आत्मा अशांत होती है और न शांत। क्योंकि शांत वही हो सकता है जो अशांत हो सकता हो। मन ही शांत होता है, मन ही अशांत होता है। और ठीक से समझें तो मन का होना ही अशांति है, मन का न हो जाना शांति है। लेकिन आत्मा अपने में न कभी शांत है, न कभी अशांत है; न सुख में है, न दुख में है। आत्मा एक तीसरी ही अवस्था में है जिसका नाम आनंद है।

आनंद का अर्थ हैः जहां न दुख है, न सुख है। आनंद का अर्थ सुख नहीं है। दुख भी एक तनाव है और सुख भी एक तनाव है। दुख में भी आदमी मर सकता है, सुख में भी आदमी मर सकता है। दुख में भी चिंता होती है, सुख भी चिंता बन जाता है। दुख भी एक उत्तेजना है, सुख भी एक उत्तेजना है। आत्मा उत्तेजना मुक्त है--वहां न सुख की उत्तेजना है, न दुख की।

यह हम जानते हैं कि दुख भी पीड़ित करता है। जैसे भारत जैसे देशों में जहां गरीबी है, भुखमरी है, भूख है, सब तरह के दुख हैं, वहां भी आदमी अत्यंत तनावग्रस्त है। अमरीका जैसे मुल्क में जहां सब सुख हैं, सब सुविधाएं हैं, सब व्यवस्था है--धन है, संपत्ति है, संपन्नता है, एफ्लुएंस है, वहां भी आदमी तनावग्रस्त है।

गरीब देश भी तनाव से भरे हैं, अमीर देश भी तनाव से भरे हैं। इसका मतलब क्या? इसका मतलबः दुख भी एक तरह का तनाव है और सुख भी एक तरह का तनाव है।

गरीब आदमी भी पीड़ित है और धनी आदमी भी। दोनों की पीड़ा अलग है। जैसे कोई आदमी भूख से पीड़ित हो सकता है, कोई आदमी ज्यादा खाना खाकर पीड़ित हो सकता है। आत्मा न तो इस तनाव को मानती है, न उस तनाव को; आत्मा तनाव-मुक्त, टेंशनलेसनेस है, वहां कोई तनाव नहीं है।

मैंने सुना है, एक आदमी को एक लाख रुपये की लाटरी मिल गई थी। उसकी पत्नी को रेडियो पर समाचार मिला। वह घबड़ा गई कि काश उसके पति को खबर न मिली कि एक लाख रुपये मिल गए हैं इकट्ठे, े तो इस सुख में प्राण भी निकल सकते हैं। क्योंकि उसके पति को दस रुपये भी कभी इकट्ठे मिले हों, इसका भी उसे पता नहीं था।

वह डरी। और पड़ोस में ही जिस चर्च में वह जाती थी, उस चर्च के पादरी के पास गई। क्योंकि चर्च के पादरी से उसने सदा ही धन में कुछ भी सार नहीं है, ज्ञान की और शांति की बातें सुनी थीं। उस पादरी के पास गई और उसने कहाः मैं मुश्किल में पड़ गई हूं। एक लाख रुपये की लाटरी मेरे पति के नाम खुली है। कहीं ऐसा न हो कि इतने सुख का आघात उनके लिए खतरनाक हो जाए। आप कुछ उपाय करें कि यह आघात न पड़े।

पादरी ने कहाः घबड़ाओ मत। मैं आता हूं और मैं धीरे-धीरे इस खबर को तुम्हारे पति पर प्रकट करूंगा।

वह पादरी आया, उसने आकर कहाः सुना तुमने कुछ? तुम्हारे नाम पच्चीस हजार रुपये लाटरी में मिले हैं। सोचा उसने, पच्चीस हजार का धक्का सह ले, फिर और पच्चीस हजार का बताऊं, फिर और पच्चीस हजार का।

उस आदमी ने कहाः पच्चीस हजार! अगर पच्चीस हजार मुझे मिले तो साढ़े बारह हजार मैं तुम्हें देता हूं।

पादरी वहीं गिरा और उसका हार्ट-फेल हो गया।

साढ़े बारह हजार! आघात लग गया सुख का। वह तो पादरी, साधु-संन्यासी दूसरों को समझाते हैं, इससे बड़ी सुविधा है, अगर मुसीबतें उन पर आ जाएं, तब उन्हें पता चले कि जिनको वे समझा रहे हैं, क्या समझा रहे हैं।

सुख का भी एक आघात है, एक चोट है। दुख का भी एक आघात है, एक चोट है। और इसीलिए तो ऐसा होता है कि अगर दुख का आघात पड़ता ही रहे, तो आदमी दुख के आघात के लिए भी राजी हो जाता है, आदी हो जाता है, हैबिच्युअल हो जाता है। फिर दुख का आघात नहीं पड़ता है। फिर उतना तनाव सहने की उसकी क्षमता हो जाती है।

इसीलिए एक ही दुख में बहुत दिन रहने पर वह दुख दुख नहीं रह जाता। इससे उलटा भी सच है, सुख का आघात पड़ता है पहली बार, तो पता चलता है कि कुछ हुआ। फिर वही आघात रोज पड़ता रहे, तो फिर पता चलना बंद हो जाता है। फिर आदमी सुख का भी आदी हो जाता है, फिर उसमें उसे सुख भी नहीं मिलता। निरंतर दुख में रहने वाले को दुख नहीं मिलता, निरंतर सुख में रहने वाले को सुख नहीं मिलता। क्योंकि तनाव की आदत हो जाए तो तनाव का जो डंस है, जो चोट है, वह विलीन हो जाती है।

मैंने सुना है, एक मछुआ राजधानी में मछलियां बेचने आया। उसने मछलियां बेच दी हैं और मछलियां बेच कर वापस लौटता है, तो सोचा, राजधानी घूम लूं। राजधानी घूमने गया तो उस गली में पहुंच गया, जहां परफ्यूम की दुकानें थीं, सुगंधियों की दुकानें थीं। सारी दुनिया की सुगंधियां उस राजधानी में बिकती थीं। वह मछुआ तो एक ही तरह की सुगंध जानता था, मछली की। और किसी सुगंध को न जानता था, न पहचानता था। मछली ही उसे सुगंधित मालूम पड़ती थी।

सुगंधियों के बाजार में भीतर घुसा तो उसने नाक पर रूमाल रख लिया। उसने कहाः कैसे पागल लोग हैं। कितनी दुर्गंध फैला रखी है। जैसे-जैसे भीतर घुसा उसके प्राण तड़फने लगे। क्योंकि अपरिचित सुगंधियां उसके प्राणों को छेदने लगीं, बहुत आघात करने लगीं। आखिर वह घबड़ा गया, भागा। लेकिन जितना भागा, अंदर और बड़ी दुकानें थीं। उसे क्या पता, वह सोचा, बाजार के बाहर निकल जाऊंगा। वह और बाजार के मध्य पहुंच गया। वहां तो वे दुकानें थीं जहां दुनिया के सम्राट सुगंधियां खरीदते थे। वहां सुगंधियों की चोट से वह बेहोश होकर गिर पड़ा। दुकानदार दौड़े। और दुकानदारों को पता था कि कोई आदमी बेहोश हो तो तीव्र सुगंध सुंघाने से होश में आ सकता है।

तो वे बेचारे अपनी तिजोरियां खोल कर, जो सुगंधियां सम्राटों को नहीं मिलतीं वह निकाल कर लाए कि यह गरीब आदमी होश में आ जाए। वे सुगंधियां उसे सुंघाते हैं। वह बेहोशी में हाथ-पैर पटकता है, सिर पटकता है। उसके तो और प्राण निकलने लगे।

भीड़ इकट्ठी हो गई। एक आदमी जो कभी मछुआ रह चुका था। उसने लोगों से कहाः मित्रो, तुम उसकी जान ले लोगे। तुम सेवा कर रहे हो, सोचते हो, तुम उसके हत्यारे हो। अक्सर सेवक हत्यारे सिद्ध होते हैं। मौका भर मिल जाए सेवकों को। हटो, तुम उसकी जान ले लोगे। मैं जहां तक समझता हूं, तुम्हारी सुगंधियों से ही वह बेहोश है।

उन सुगंधियों के व्यापारियों ने कहाः पागल हो गए हो, सुगंधियों से कभी किसी को बेहोश होते सुना है? आदमी दुर्गंध से बेहोश हो सकता है। सुगंध से?

उस मछुए ने कहाः तुम्हें पता नहीं, ऐसी सुगंधें भी हैं जिनको तुम दुर्गंध कहोगे और ऐसी दुर्गंधें भी हैं जिनको कोई सुगंध कहने वाला मिल सकता है। यह सिर्फ आदत की बात है।

लोगों को हटाया। वह मछुआ जो गिरा पड़ा है, उसकी टोकरी भी गिरी पड़ी है, कपड़ा गिरा पड़ा है। गंदा कपड़ा, गंदी टोकरी, जिसमें वह मछलियां बेचने लाया था। उनमें अब भी मछली की बास आ रही है। उस दूसरे आदमी ने पानी छिड़का और वह गंदे कपड़े और टोकरी को बेहोश मछुए की नाक पर रख दिया। उसने गहरी श्वास ली जैसे प्राण आ गए। आंख खोली और उसने कहाः दिस इ.ज रियल परफ्यूम। यह है असली सुगंध। ये दुष्ट मेरी जान लिए लेते थे।

क्या हो गया उस आदमी को?

दुर्गंध की आदत हो जाए तो वही सुगंध हो जाती है। इसीलिए तो भंगी और चमार थोड़े ही विद्रोह कर रहे थे अपनी स्थिति से छूटने का। वे कभी न करते। वे आदी हो गए थे। उसका ही हिंदुस्तान में सूत्र कितने दिनों से है। हजारों वर्षों से करोड़ों लोगों के साथ हिंदुस्तान हद्द दुष्टता का व्यवहार कर रहा है। और धार्मिक भी बना हुआ है। पुण्य भूमि भी बनी हुई है। और करोड़ों लोगों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो रहा है जैसा पृथ्वी पर कहीं भी, कभी भी नहीं हुआ।

लेकिन शूद्रों ने कोई बगावत नहीं की। क्यों? क्योंकि शूद्र आदी हो गए, वह दुख ही उनके लिए आदत का हिस्सा हो गया। बगावत आई है तो उन घरों से आई है जो शूद्र नहीं थे। क्योंकि उनको यह दिखाई पड़ा कि एक आदमी पाखाना ढो रहा है सुबह से सांझ तक। उनको पीड़ा मालूम पड़ी। क्योंकि अगर उनको दिन भर पाखाना ढोना पड़े तो कल्पना के बाहर है। वे मर जाना पसंद करेंगे, बजाय पाखाना ढोने के।

लेकिन उनको पता नहीं है कि जो ढो रहा है उसे कुछ भी पता नहीं है। इसलिए शूद्रों के भीतर से बगावत न आई। बगावत आई तो ब्राह्मण और वैश्यों और क्षत्रियों के बेटों से आई। उनको यह बात दिखी कि यह नहीं होना चाहिए।

यह जान कर आप हैरान होंगे कि दुनिया में दीन-दलित कभी भी विद्रोह नहीं करते हैं। विद्रोह का सवाल ही नहीं उठता, वे उसी दुख के आदी हो जाते हैं। हिंदुस्तान में इतनी गरीबी है, हमें कुछ भी नहीं सालता। अमरीका से एक आदमी आता है और उसे देख कर समझ में नहीं आता कि ये लोग चुप क्यों बैठे हैं? इतनी गरीबी सही नहीं जा सकती। उसको दिखता है, क्योंकि उसकी यह आदत नहीं है। आदत आदमी को कुछ भी, कुछ भी करने के योग्य बना देती है।

तनाव दो तरह के हैं--सुख के, दुख के। दोनों तनाव हैं। और इन दोनों से जो ऊपर उठ जाए, वह आत्मा को अनुभव कर पाता है।

इसे थोड़ा समझ लें, फिर दूसरी बात हम समझें।

बुद्ध का एक गांव में आगमन हुआ, और बुद्ध जब उस गांव में वे आए तो सारा गांव चकित होकर बुद्ध से पूछने लगा कि हमने सुना है, हमारे गांव का राजकुमार भी दीक्षित होकर भिक्षु हो गया?

गांव का जो राजकुमार था उसने दीक्षा ले ली। सारा गांव चकित है क्योंकि वह राजकुमार तो कभी महलों से नीचे नहीं उतरा, वह तो कभी मखमलों और कालीनों से नीचे नहीं चला, वह भिक्षु होकर भिक्षापात्र लेकर गांव-गांव भीख मांगेगा, नंगे पैर चलेगा, यह तो कल्पना के बाहर है।

बुद्ध से वे कहने लगे कि हमारे राजकुमार ने दीक्षा ली यह तो बड़ा चमत्कार है।

बुद्ध ने कहाः कोई चमत्कार नहीं है। आदमी का मन जब एक, एक चीज का आदी हो जाता है तो कभी-कभी बदलने के लिए भी आतुर होता है। उसने सुख के तनाव बहुत देख लिए, अब वह दुख के तनाव देखने के लिए उत्सुक हुआ है। हो गई बात वह। वह अनुभव हो गया। अब वह दूसरे अनुभव भी लेना चाहता है।

और मैं तुमसे कहता हूं कि जिस तरह वह सुख में अति पर था, एक्सट्रीम पर, उसी तरह वह दुख में भी अति पर चला जाएगा।

और यही हुआ। छह महीने के भीतर वह राजकुमार सभी भिक्षुओं से आगे निकल गया, अपने को दुख देने में। दूसरे भिक्षु राजपथ पर चलते, तो वह पगडंडियों पर चलता, जिन पर कांटे होते। दूसरे भिक्षु दिन में एक बार भोजन करते, तो वह दो दिन में एक बार भोजन करता। दूसरे भिक्षु छाया में बैठते, तो वह भरी दोपहरी में धूप में खड़ा रहता। उसके पैर छिद गए कांटों से, उसका शरीर सूख कर काला पड़ गया। उसे छह महीने बाद पहचानना मुश्किल था। उसकी बड़ी सुंदर देह थी, बड़ी कंचन काया थी। दूर-दूर से लोग उसकी देह को देखने भी आते थे। उस देह को अब कोई देख कर विश्वास भी न करता कि यह वही राजकुमार है।

छह महीने बाद बुद्ध उसके पास गए। वह कांटे बिछाए, पत्थर डाले उन पर लेटा हुआ था। यह उसका विश्राम करने का ढंग था। बुद्ध ने उससे कहा कि श्रोण! उसका नाम था, श्रोण। मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूं। मैंने सुना है, तू जब राजकुमार था तो तू वीणा बजाने में बहुत कुशल था। क्या मैं तुझसे कुछ पूछूं, तू उत्तर देगा?

उसने कहा कि हां, निश्चित ही लोग कहते थे कि मुझसे अच्छा वीणा बजाने वाला कोई भी नहीं है।

तो बुद्ध ने कहा कि मैं यह पूछता हूं कि अगर वीणा के तार बहुत ढीले हों, तो उन तारों से संगीत पैदा होता है?

उस श्रोण ने कहाः कैसे होगा प्रभु। तार ढीले होंगे तो उन पर टंकार ही नहीं हो सकती, संगीत कैसे पैदा होगा।

बुद्ध ने कहाः क्या फिर यह हो सकता है कि तार बहुत कसे हों तो संगीत पैदा हो?

उस श्रोण ने कहाः तार बहुत कसे होंगे तो टूट जाएंगे, तब भी संगीत पैदा नहीं होता है।

तो बुद्ध ने कहाः संगीत कब पैदा होता है?

वह श्रोण कहने लगा, शायद आप समझें या न समझें, लेकिन जो जानते हैं संगीत के जन्म को, वे कहेंगे, तारों की एक ऐसी अवस्था भी है, जब उन्हें न तो कहा जा सकता कि वे ढीले हैं और न कहा जा सकता कि वे कसे हैं। कसे होने और ढीले होने के बीच में भी एक बिंदु है। उस समय तार कसे होने, ढीले होने दोनों के पार होता है, दोनों के अतीत होता है। उसी क्षण संगीत का जन्म होता है जब तार न कसा होता, न ढीला होता।

बुद्ध ने कहाः यही मैं पूछने आया था और यही कहने भी कि जो वीणा से संगीत के पैदा होने का नियम है, वही जीवन-वीणा से संगीत पैदा होने का नियम भी है। जीवन-वीणा की भी एक ऐसी अवस्था है, जब न तो उत्तेजना इस तरफ होती, न उस तरफ। न खिंचाव इस तरफ होता, न उस तरफ और तार मध्य में होते हैं, तब न दुख होता, न सुख होता। क्योंकि सुख एक खिंचाव है, दुख एक खिंचाव है। और तार जीवन के मध्य में होते हैं। सुख और दुख दोनों के पार होते हैं। वहीं वह जाना जाता है जो आत्मा है, जो जीवन है, जो आनंद है।

आत्मा तो निश्चित ही दोनों के अतीत है। और जब तक हम दोनों के अतीत आंख को नहीं ले जाते, तब तक आत्मा का हमें कोई अनुभव नहीं होगा।

और उन मित्र ने पूछा है कि फिर दूसरों की आत्मा के लिए प्रार्थना करने का कि उन्हें शांति मिले, क्या प्रयोजन?

प्रयोजन है। लेकिन जो लोग समझते हैं, वह प्रयोजन नहीं है। कोई दूसरा ही प्रयोजन है। जब हम प्रार्थना करते हैं कि दूसरे की आत्मा को शांति मिले, तो हमारी प्रार्थना से दूसरे की आत्मा को शांति नहीं मिल सकती है, लेकिन जब हम प्रार्थनापूर्ण होते हैं कि दूसरे की आत्मा को शांति मिले, तो हमारी आत्मा शांत होती है।

जब मैं किसी दूसरे को कष्ट देने की कामना और विचार करता हूं, तो दूसरे को कष्ट पहुंचेगा, यह जरूरी नहीं है, लेकिन दूसरे को कष्ट देने की कामना करने वाला व्यक्ति अपने भीतर न मालूम कितने कष्टों के बीज बो लेता है। दूसरे को दुख देने की कामना करने वाला व्यक्ति अपने भीतर दुख की संभावना निर्मित कर लेता है। हम दूसरे के लिए जो चाहते हैं, जाने-अनजाने वही हमारे लिए हो जाता है।

तो जब हम कहते हैं, दूसरे के लिए प्रार्थना करो कि शांति मिले, तो इसके कई अर्थ हुए, एक तो जो व्यक्ति दूसरे की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, वह दूसरे की अशांति के लिए उपाय नहीं कर सकता। और अगर करता हो तो बेईमान है। क्योंकि दूसरे की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना और अशांति के लिए उपाय। यह आदमी तो बहुत बेईमान है। ख्याल यह है कि जो आदमी दूसरे की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करेगा, वह धीरे-धीरे दूसरे की अशांति के उपाय करना बंद करेगा। वह धीरे-धीरे उसके भीतर दूसरे को दुखी देखने की कामना कम हो जाएगी।

और ध्यान रहे, हम सबके भीतर दूसरे को दुखी देखने की कामना है और दूसरे को सुखी देखने की कामना बिल्कुल नहीं है। जब आपके पड़ोस में एक बड़ा मकान बन जाता है, तो आप भला उस मकान के मालिक को कहते हों कि बहुत अच्छा मकान बना, बड़ा सुंदर है। लेकिन भीतर कभी झांक कर देखा है कि क्या होता है? भीतर यह होता है कि अच्छा कब यह मकान गिर जाए, भगवान कब इसे गिराए, इस दुष्ट ने यह क्या कर लिया। भीतर यह होता है।

दूसरे के दुख में एक तरह की शांति मिलती है और दूसरे के सुख में एक तरह की अशांति मिलती है। हम जाने-अनजाने दूसरे के दुख के लिए आतुर हैं।

एक आदमी मर रहा था और उसने अपने बेटों को अपने पास बुलाया और उन बेटों से कहा कि मैं मर रहा हूं, मेरी आखिरी इच्छा पूरी करोगे?

बड़े बेटे होशियार थे, वे चुपचाप बैठे रह गए। छोटा बेटा नासमझ था, उसने कहाः आप कहिए मैं करूंगा। उसने उसे पास बुलाया और कहा कि मेरे सब बड़े बेटे नालायक हैं। देखो मरते आदमी की इच्छा पूरी नहीं करते। तुम बड़े अच्छे हो। तुमसे मैं कान में कहता हूं कि जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फेंक देना और पुलिस में रिपोर्ट कर देना।

उस लड़के ने कहाः लेकिन इसका मतलब क्या?

उसने कहाः बेटा तुझे पता नहीं, पड़ोसियों को दुख में देख कर मुझे सदा शांति मिलती रही। और जब मेरी आत्मा स्वर्ग की तरफ जा रही होगी और पड़ोसी बंधे हुए हथकड़ियों में अदालत की तरफ जा रहे होंगे, तब मुझे बड़ा आनंद... अंतिम समय को आनंद लेने की व्यवस्था कर दे। मरते हुए बाप की तो आनंद की व्यवस्था कर दे।

एक जर्मन कवि हुआ है, हेनरिक हेन। उसने लिखा है कि मैंने एक रात सपना देखा कि भगवान मेरे सामने खड़े हैं और कहते हैं, मैं तेरी कविताओं से बड़ा प्रसन्न हुआ। तू मांग ले, तुझे क्या वरदान मांगना है। तुझे कौन सी खुशी चाहिए, मैं दूंगा। सब खुशी दूंगा, जो तुझे चाहिए।

हेनरिक हेन ने कहाः बड़ा अदभुत हुआ सपने में, क्योंकि जब भगवान ने कहाः मांग ले तुझे जो खुशी चाहिए मैं दूंगा। तो मेरे मन में हुआ, अपनी खुशी लेने में उतना मजा थोड़े ही आएगा। मैंने भगवान से कहाः मेरी खुशी की फिकर छोड़िए। पड़ोसियों को क्या दुख दे सकते हैं, उसका वरदान दीजिए।

जाग कर उसने कहाः मैं बहुत घबड़ा गया कि मैंने सपने में यह क्या बात कही। लेकिन सपने में अक्सर सच्ची बातें निकल जाती हैं। जागते में तो आदमी झूठी बातें करता रहता है।

सपने में बेटा बाप की गर्दन दबाता है, जागते में पैर छूता है। सपने में आदमी पड़ोसी की स्त्री को भगा कर ले जाता है, जाग कर कहता है सब मेरी मां-बहनें हैं। सपने में ज्यादा असली आदमी प्रकट होता है, वह जो भीतर है।

हम सब दूसरे के दुख के लिए आतुर हैं। इसलिए दूसरे की शांति और आनंद के लिए प्रार्थना करने से दूसरे को शांति और आनंद मिल जाएगी ऐसा नहीं है, लेकिन हम निरंतर ऊंचे उठते चले जाएंगे। क्योंकि जिसने दूसरे के सुख की कामना की उसके जीवन से दूसरे के दुख के उपाय बंद हो गए। जिसने दूसरे के सुख की कामना की, उसके जीवन में एक क्रांति हो गई। इससे बड़ी कोई भी क्रांति नहीं है कि मैं दूसरे के सुख में सुख अनुभव कर सकूं। दूसरे के दुख में भी दुख अनुभव करना बहुत आसान है, दूसरे के सुख में सुख अनुभव करना बहुत कठिन है। क्योंकि दूसरे के दुख में तो दुखी हो जाने में बहुत कठिनाई नहीं है, बल्कि एक तरह का रस आता है, एक तरह का मजा भी आता है।

देखें, जब किसी के घर कोई मर जाए, तो जो लोग इकट्ठे होते हैं सहानुभूति प्रकट करने, जरा उनका चेहरा देखें, उनकी बातें देखें। वे दुख की बातें करते हैं, आंसू भी गिराते हैं। लेकिन अगर उनका पूरा भाव देखें तो ऐसा लगता है वे बड़ा आनंद अनुभव कर रहे हैं। और अगर आप किसी के घर दुख मनाने जाएं--कोई का बाप मर गया है और आप उसके घर जाकर आंसू बहाने लगें, और वह कहे, क्या फिजूल की बातें कर रहे हो, क्या फायदा, जो मर गया वह मर गया। तो आप बड़े अतृप्त लौटेंगे।

मैं एक घर में रहता था, उनके घर में जो गृहिणी थीं, उनका नियमित कार्य यह था कि किसी के घर कोई मरे तो वह दुख प्रकट करने जाएं।

मैंने उनसे पूछा कि तुम मुझे सच बताओ, जब तुम दुख प्रकट करने जाती हो और अगर उस घर में तुम पाओ कि कोई तुम्हारे दुख का कोई मूल्य नहीं कर रहा है तो तुम्हें कुछ अच्छा लगता है कि बुरा?

उन्होंने कहाः बुरा लगता है। बड़ी हैरानी होती है कि हम तो इतना दुख प्रकट करने आए हैं और घर के लोग कोई फिकर ही नहीं कर रहे हैं?

अगर आप भी कभी किसी के दुख में दुख प्रकट करने गए हों तो अपने भीतर झांकना कि उस दुख में भी तो कोई रस नहीं आ रहा?

दो आदमी रास्ते पर लड़ रहे हैं और भीड़ इकट्ठी है--अदालत जाने वाले खड़े हो गए हैं, दफ्तर जाने वाले खड़े हो गए हैं, कालेज पढ़ने जाने वाले खड़े हो गए हैं। सब हजार काम छोड़ कर खड़े हो गए हैं। दो आदमी लड़ रहे हैं, उनको देख रहे हैं। आप क्या देख रहे हैं वहां? और कुछ लोग उन दोनों को कह भी रहे हैं कि भाई मत

लड़ो। लेकिन भीतर उनके मन में यह हो रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि ये न ही लड़ें। अन्यथा सब मजा किरकिरा हो जाएगा।

और अगर कहीं आप लड़ाई देखने खड़े हो गए हैं और लड़ाई ऐसे ही छूट जाए ऊपर-ऊपर, तो आप दुखी लौटते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ, बेकार समय खराब हुआ।

हमारे चित्त के भीतर, ऊपर से नहीं दिखाई पड़ती हैं ये सारी बातें, लेकिन हमारा चित्त ऐसा है।

पहले महायुद्ध में कोई साढ़े तीन करोड़ आदमी मरे। और जब युद्ध चलता था, तो एक अजीब घटना अनुभव हुई। कि जितने दिन युद्ध चला उतने दिन यूरोप में बीमारियां कम हो गईं। मानसिक रोग कम हो गए, हत्याएं कम हो गईं, कम लोग पागल हुए, सब औसत नीचे गिर गया। डाके कम पड़े, आत्महत्याएं कम हुईं। मनोवैज्ञानिक हैरान हो गए कि युद्ध से इन चीजों के कम होने का क्या संबंध है? कुछ संबंध नहीं सूझा।

युद्ध चलता रहे; जिसको आत्महत्या करनी है करनी चाहिए, जिसको हत्या करनी है हत्या करनी चाहिए। लेकिन सब अपराधों का औसत नीचे गिर गया।

फिर दूसरे महायुद्ध में तो और भी औसत नीचे गिरा। कोई साढ़े सात करोड़ लोगों की हत्या हुई। और इतना औसत नीचे गिर गया कि मनोवैज्ञानिक--एकदम सूझ-बूझ के बाहर हो गई यह बात कि यह क्यों होता है? फिर धीरे-धीरे समझ में आया कि युद्ध के समय लोग इतने आनंदित हो जाते हैं, युद्ध में इतना रस आता है लोगों को। इतने लोगों की हत्याएं हो रही हों, जब तक कोई अपनी अलग से हत्या करने नहीं जाता। इतनी हत्याओं में ही रस ले लेता है और तृप्त हो जाता है।

जहां इतना विनाश हो रहा हो, वहां कोई छोटा-मोटा विनाश क्यों करे। इसी विनाश में संयुक्त हो जाता है और तृप्त हो जाता है। जहां पूरा समाज ही पागल हो गया हो, होलसेल मैडनेस जहां हो, वहां कोई प्राइवेट मैडनेस की फिक्र क्यों करे। तो अपने पागलपन की कोई जरूरत नहीं है, जब सभी पागल हैं, तो फिर ठीक है।

आपने भी देखा होगा, हिंदुस्तान-चीन का झगड़ा चलता था, या पाकिस्तान का, तो आपने देखा, लोगों के चेहरे की रौनक बदल गई थी। आदमी के चेहरे पर चमक मालूम पड़ती थी, जो कभी नहीं मालूम पड़ती हिंदुस्तान में। आदमी पांच बजे उठ आता था, ब्रह्ममुहूर्त में, अखबार देखने को, रेडियो सुनने को कि क्या हो रहा है? जो आदमी सात बजे तक कभी नहीं उठा, वह आदमी पांच बजे उठ कर पूछने लगता था कि और क्या खबर है? और हर आदमी में एक गति दिखाई पड़ती थी, चमक दिखाई पड़ती थी, कोई खुशी दिखाई पड़ती थी।

हैरानी की बात है! युद्ध हो रहा हो, लोग कट रहे हों, मर रहे हों, आग लग रही हो, बम गिर रहे हों, और इतनी खुशी?

हमारे भीतर वह जो सैडिस्ट बैठा हुआ है, वह जो दूसरे को दुख देने वाला बैठा हुआ है, वह बड़ा तृप्त होता है। वह कहता है, बड़ा आनंद आ रहा है। हालांकि ऊपर से दूसरी बातें करता है। वह कहता है, देश-भक्ति, राष्ट्र, धर्म, फलां-ढिकां। यह सब बकवास है। भीतर असली मतलब दूसरा है। असली मतलब यह है कि हम दूसरे को दुख देना चाहते हैं। और दुख देने में तृप्ति मिलती है।

तो वह जो प्रार्थना है दूसरे के मंगल के लिए, दूसरे की शांति के लिए, उससे दूसरे को शांति मिलेगी या नहीं मिलेगी, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है कि वह प्रार्थना करने में, वह भाव करने में हम रूपांतरित होते हैं। और वह जो हमारे भीतर दूसरे को दुख देने वाला बैठा है, वह विसर्जित होता है। वही मूल्यवान है। ये अर्थ मूल्यवान हैं।

किसी और ने पूछा है कि भारत के चेहरे पर, भारत के युवकों के चेहरे पर न तेज है, न रौनक है, न चमक है, न ओज है, तो इसका कारण निश्चित यह है कि भारत में ब्रह्मचर्य खंडित हुआ है। तो आप ब्रह्मचर्य के लिए कुछ समझाइए।

मैं दो-तीन बातें कहना चाहूंगा। पहली तो बात यह, अमरीका के लड़के की आंख पर ज्यादा रौनक है, ब्रह्मचर्य ज्यादा है आपसे? इंग्लैंड के बच्चों की आंखों में तेज ज्यादा है, ओज ज्यादा है? रूस के बच्चों में जो ताजगी दिखाई पड़ती है वह कहीं दुनिया में दिखाई नहीं पड़ती, आपसे ज्यादा ब्रह्मचर्य है वहां?

ब्रह्मचर्य का कोई सवाल नहीं है, पहली बात। और मजे की बात है कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा जितनी दी गई है इस मुल्क में उसका उतना ही दुष्परिणाम हुआ। उसका फायदा नहीं हुआ, नुकसान हुआ।

सच्चाई यह है कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा से जितना ओज नष्ट होता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन इस देश में हजारों साल से हम गलत तरह की बातें कर रहे हैं। अवैज्ञानिक बातें कर रहे हैं। अस्वाभाविक बातें कर रहे हैं। और उन पर निर्भर होना चाहते हैं। न खाने को है लोगों के पास, न पीने को है। और लोग शिक्षा देना चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य नहीं है इसीलिए ओज नहीं है, चमक नहीं है।

आदमी भूखे मर रहे हैं। सारा देश भूखा मर रहा है। कहां से ओज होगी? कहां से चमक होगी? असली मुद्दे नहीं पकड़ेंगे। इस मुल्क में बहुत अजीब हालत है।

इस मुल्क के साधु-संन्यासी जितनी बेईमानी की बातें करते हैं, उतना कोई भी नहीं करता। असली बात यह है कि देश भूखा मर रहा है--नसों में खून नहीं है, खाने को भोजन नहीं है, दूध नहीं है, पानी नहीं है, कुछ भी नहीं है, और बातें, बातें होशियार लोग करेंगे कि ब्रह्मचर्य गड़बड़ हो गया है, इसलिए लोगों का ओज चला गया है। ब्रह्मचर्य की शिक्षा दो।

ब्रह्मचर्य की शिक्षा रोटी नहीं बन सकती, और न ब्रह्मचर्य की शिक्षा दूध बन सकती है, और न ब्रह्मचर्य की शिक्षा भोजन बन सकती है। और यह जान कर आप हैरान होंगे, जितना कमजोर शरीर होगा उतना अब्रह्मचारी होगा, जितना अस्वस्थ शरीर होगा उतना कामुक, उतना सेक्सुअल होगा। जितना स्वस्थ शरीर होगा, उतनी कामुकता कम होती है। इसलिए तो गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं और अमीर कम बच्चे पैदा करते हैं। अक्सर तो यह होता है कि अमीरों को बच्चे उधार लेने पड़ते हैं और गरीब कतार लगाए चले जाते हैं।

आप जानते हैं उसका कारण क्या है? जो मुल्क जितना अमीर हो जाएगा उस मुल्क में बच्चों की संख्या उतनी ही नीचे गिर जाती है। जैसे फ्रांस है, सुख में रह रहे हैं लोग। सुखी लोग बहुत कामुक नहीं होते। दुखी लोग बहुत कामुक हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि दुखी आदमी को कामुकता एक मात्र सुख रह जाती है। वही एक मात्र रस रह जाता है। अमीर आदमी वीणा भी सुन लेता है, अमीर आदमी संगीत भी सुन लेता है, अमीर आदमी तैर भी लेता है, अमीर आदमी जंगल में घूम भी आता है, हिल-स्टेशन पर भी हो आता है। गरीब आदमी के लिए न कोई हिल-स्टेशन है, न कोई वीणा है, न कोई संगीत है, न कोई काव्य है, न कोई साहित्य है, न कोई धर्म है। गरीब आदमी का तो सब कुछ उसका सेक्स है। बस वही उसका हिल-स्टेशन है, वही उसकी वीणा है, वही उसका सुख है। वह दिन भर कुटा-पिटा लौटता है, थका-मांदा लौटता है, उसके लिए एक ही विश्राम है, सेक्स। और कोई विश्राम नहीं है। वह बच्चे पैदा करता चला जाता है। और जितना शरीर भीतर उत्तेजित होता है, और ध्यान रहे, अस्वस्थ शरीर उत्तेजित होता है, तनाव से भरा होता है। उतना उत्तेजना को निकालने के लिए जो रिलीज है, वह सेक्स है।

सेक्स असल में उत्तेजित शरीर की चेष्टा है। शरीर उत्तेजित है, उत्तप्त है, तो शरीर कुछ अपनी ऊर्जा को बाहर फेंक देता है ताकि वह शांत हो जाए, शिथिल हो जाए। जितना शरीर स्वस्थ है, विश्राम में है, आनंद में है, शांत है, उतनी ही सेक्स की जरूरत कम पड़ती है।

और गरीब कौम कभी भी सेक्स से मुक्त नहीं हो सकती। लेकिन साधु-संन्यासी समझाते हैं कि ब्रह्मचर्य की कमी हो गई, इसलिए यह सब गड़बड़ हो रही है।

ब्रह्मचर्य की कमी नहीं हो गई। और दूसरी बात भी ध्यान रखना, ब्रह्मचर्य की शिक्षा अगर दमन बन जाए तो फायदा कम पहुंचाती है, नुकसान ज्यादा पहुंचाती है। सप्रेशन अगर बन जाए। और हिंदुस्तान में ब्रह्मचर्य की शिक्षा का क्या मतलब है? हिंदुस्तान में ब्रह्मचर्य की शिक्षा का मतलब, स्त्री-पुरुष को दूर-दूर रखो। और स्त्री-पुरुष जितने दूर-दूर होंगे, स्त्री-पुरुष उतने ही एक-दूसरे के बाबत ज्यादा चिंतन करते हैं। जितने निकट हों, उतना कम चिंतन होता है। और जितना ज्यादा चिंतन हो उतनी कामुकता बढ़ती है और जितनी कामुकता हो उतना ब्रह्मचर्य असंभव हो जाता है।

मेरे एक मित्र दिल्ली के डाक्टर हैं। इंग्लैंड गए हुए थे एक मेडिकल कांफ्रेंस में भाग लेने। पांच सौ डाक्टर सारी दुनिया से इकट्ठे थे और हाइड पार्क में उनकी बैठक चल रही थी, कुछ खाना-पीना, भोजन, कुछ मिलना-जुलना। मेरे मित्र सरदार हैं पंजाब के, वे भी वहां हैं। ठीक जहां ये पांच सौ डाक्टर खाना-पीना, गपशप कर रहे हैं, एक-दूसरे से मिल रहे हैं, वहीं पास की एक बेंच पर एक युवक और युवती एक-दूसरे के गले लगे किसी दूसरे लोक में खो गए हैं। डाक्टर तो बेचैन हैं, दूसरों से बातें करते हैं, लेकिन इनकी नजर वहीं लगी हुई है, और दिल यह हो रहा है कि कोई पुलिसवाला आकर इनको पकड़ कर क्यों नहीं ले जाता। यह क्या अशिष्टता हो रही है? हमारे देश में ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह क्या हो रहा है? यह कैसी संस्कृति है? कैसी असभ्यता है? बार-बार देख रहे हैं वहीं। दिल अब और कहीं नहीं लगता है उनका। अब दिल पूरा वहीं लगा हुआ है।

पड़ोस का एक आस्ट्रेलियन डाक्टर है, उसने कंधे पर हाथ रखा और कहाः महानुभाव, बार-बार वहां मत देखिए, नहीं तो पुलिसवाला आकर आपको ले जाएगा। उन्होंने कहाः क्या कहते हैं? उस आदमी ने कहाः वह उन दोनों की बात है, उसमें तीसरे का कोई संबंध नहीं। आप बार-बार देखते हैं, यह आपके भीतर के रुग्ण-चित्त का सबूत है। आप बार-बार वहां क्यों देखते हैं?

ये मेरे मित्र डाक्टर कहने लगे, लेकिन यह अशिष्टता है, जहां पांच सौ लोग मौजूद हैं वहां दो लोग गले मिले बैठे हुए हैं, यह अशिष्टता है।

लेकिन उसने कहाः पांच सौ में से किसने देखा है सिवाय आपको छोड़ कर? कौन फिकर कर रहा है? और वे दोनों जानते हैं कि यहां पांच सौ शिक्षित डाक्टर इकट्ठे होने वाले हैं, उनसे अभद्रता की उन्हें कोई आशा नहीं है, े इसलिए वे शांति से बैठे हुए हैं। यहां अकेले बैठे हों या पांच सौ मौजूद हों, कोई फर्क नहीं पड़ रहा। लेकिन आप क्यों परेशान हैं?

वे डाक्टर मित्र मेरे, बोले लौट कर कि मैं बहुत घबड़ा गया। और जब मैंने भीतर खोज की, तो मैंने पाया, बात सच थी, मेरे ही भीतर का कोई रोग मुझे वहां दिखाई पड़ रहा था। अन्यथा मुझे क्या प्रयोजन था।

जिस मुल्क में स्त्रियों को, पुरुषों को दूर-दूर रखा जाएगा, वहां यह उपद्रव होगा। वहां लोग गीता की किताब पढ़ेंगे और अंदर कोकशास्त्र रख कर पढ़ेंगे। अंदर गंदी किताब रखेंगे और ऊपर गीता होगी, कवर गीता का होगा। जहां स्त्री-पुरुष को बहुत दूर रखा जाएगा, दमन सिखाया जाएगा, वहां इस तरह के उपद्रव होने शुरू होंगे।

अभी मैंने परसों अखबार में पढ़ा कि सिडनी शहर में, जहां की आबादी बीस लाख होगी, एक युरोपियन अभिनेत्री को बुलाया नग्न-प्रदर्शन के लिए। इस आशा से कि नग्न-प्रदर्शन देखने बहुत लोग इकट्ठे होंगे। लेकिन बीस लाख की आबादी में थियेटर में केवल दो आदमी देखने आए।

दो आदमी! नंगी औरत को! और उस नंगी औरत को ठंड लग गई, नंगे होने की वजह से। सर्दी ज्यादा थी। और वह बहुत नाराज हुई कि यह कैसी बस्ती है?

हिंदुस्तान में अगर एक नंगी औरत को हम खड़ा कर दें उदयपुर में, तो कितने लोग देखने आएंगे? दो आदमी?

सब आ जाएंगे। हां, फर्क होगा, जो जरा हिम्मतवर हैं सामने के दरवाजे से आएंगे। साधु-संन्यासी, महंत इत्यादि, नेतागण पीछे के दरवाजे से आएंगे। लेकिन आएंगे सब। कोई चूक नहीं।

यह भी हो सकता है कि कोई यह कहता हुआ आए कि मैं अध्ययन करने जा रहा हूं कि कौन-कौन वहां जाता है। यह भी हो सकता है। मैं तो सिर्फ आब्जर्वेशन करने जा रहा हूं कि कौन-कौन वहां जाता है। यह भी हो सकता है।

इस देश में यह दुर्भाग्य कैसे फलित हो गया है? यह इस देश में दुर्भाग्य इसलिए फलित हो गया है कि हमने ब्रह्मचर्य को जबरदस्ती थोपने की कोशिश की। सहज विकास नहीं। ब्रह्मचर्य का सहज विकास और बात है। और ब्रह्मचर्य का अगर सहज विकास करना हो तो सेक्स की पूरी शिक्षा दी जानी जरूरी है। ब्रह्मचर्य की नहीं, सेक्स की पूरी शिक्षा एक-एक बच्चे को, एक-एक बच्ची को दी जानी जरूरी है, ताकि प्रत्येक बच्चा जान सके कि सेक्स क्या है।

और लड़के और लड़कियों को इतने पास रखने की जरूरत है कि लड़के और लड़कियों में ऐसा भाव न पैदा हो जाए कि ये दो जाति के अलग-अलग तरह के जानवर हैं। ये एक ही जानवर नहीं हैं, एक ही जाति के नहीं हैं।

यहां हजार आदमी बैठे हैं और एक स्त्री आ जाए, तो हजार आदमी फौरन कांशस हो जाते हैं, चेतन हो जाते हैं कि एक स्त्री आ रही है। यह नहीं होना चाहिए। स्त्रियां अलग बैठती हैं, पुरुष अलग बैठते हैं, बीच में फासला छोड़ते हैं। यह क्या पागलपन है?

यह पूरे वक्त स्त्री-पुरुष का बोध क्यों है? यह इतनी दीवाल क्यों है? हमें निकट होना चाहिए। हमें पास होना चाहिए। बच्चे साथ खेलें, साथ बड़े हों, एक-दूसरे को जाने-पहचाने, तो इतना पागलपन नहीं होगा।

आज क्या हालत है? एक लड़की का आज बाजार से निकलना मुश्किल है। एक लड़की का कालेज जाना मुश्किल है। असंभव है कि वह निकले और दो-चार गालियां उसे रास्ते में देने वाले न मिल जाएं। दो-चार धक्के देने वाले न मिलें, कोई कंकर न मारे, कोई फिल्मी गाना न फेंके। कुछ न कुछ होगा रास्ते में। क्यों? यह ऋषि-मुनियों की संतान बड़ी अदभुत व्यवहार कर रही है।

लेकिन कारण है। और कारण ऋषि-मुनियों की शिक्षा ही है। वह जो निरंतर हम स्त्री-पुरुष को दुश्मन बना रहे हैं, उससे यह नुकसान पैदा हो रहा है। जिस चीज का जितना निषेध किया जाएगा, वह उतनी आकर्षण बन जाती है। जिस चीज का जितना इनकार किया जाएगा, वह उतना बुलावा बन जाती है। जिस चीज को आप कहेंगे कि इसकी बात नहीं होनी चाहिए, उसकी उतनी ही बात होगी, छुप-छुप कर होगी। जिस बात को आप रोकना चाहेंगे, लोगों के मन में आकर्षण, जिज्ञासा पैदा होगी, क्या बात है?

स्वस्थ नहीं रह जाता चित्त फिर, अस्वस्थ हो जाता है। आप देखें, स्त्री अगर एक सड़क से निकलती हो घूंघट डाल कर, तो जितने लोग उसमें आकर्षित होंगे उतने बिना घूंघट वाली स्त्री में आकर्षित नहीं होंगे।

अगर एक घूंघट वाली स्त्री जा रही है, तो हर आदमी यह चाहेगा कि देख लें घूंघट के भीतर क्या है? बिना घूंघट की स्त्री को देखने का क्या है? दिख जाती है, बात समाप्त हो जाती है। हम जितना छिपाते हैं, उतनी कठिनाई शुरू होती है। जितनी कठिनाई शुरू होती है, उतने गलत रास्ते शुरू होते हैं। और सारी चीजें विकृत हो जाती हैं।

ब्रह्मचर्य अदभुत है। ब्रह्मचर्य की शक्ति की कोई सीमा नहीं है। ब्रह्मचर्य का आनंद अदभुत है। लेकिन ब्रह्मचर्य उन्हें उपलब्ध होता है जो चित्त की सारी स्थितियों को समझते हैं, जानते हैं, पहचानते हैं। और पहचानने के कारण उनसे मुक्त होते हैं। ब्रह्मचर्य उनको उपलब्ध नहीं होता जो कुछ भी नहीं समझते और चित्त को दबाते हैं, और दबाने के कारण भीतर बहुत भाप इकट्ठी हो जाती है। फिर वह भाप उलटे रास्तों से निकलनी शुरू होती है। वह निकलती है, वह बच नहीं सकती। ब्रह्मचर्य तो अदभुत है। लेकिन जो प्रयोग इस देश में किया गया, उसने इस देश को ब्रह्मचारी नहीं बनाया, अति कामुक बनाया। इस समय पृथ्वी पर हमसे ज्यादा कामुक कौम खोजना मुश्किल है। एकदम असंभव है। लेकिन हम ब्रह्मचर्य की बातें दोहराए चले जाएंगे। और सारा चित्त रोगग्रस्त होता चला जा रहा है।

मैं एक कालेज में कुछ दिन तक था। एक दिन निकल रहा था और कालेज के प्रिंसिपल किसी लड़के को जोर से डांट रहे थे। मैं भीतर गया, मैंने पूछा क्या बात है?

तो प्रिंसिपल खुश हुए, उन्होंने कहाः आप बैठिए, इसे थोड़ा समझाएं। इसने एक लड़की को प्रेम-पत्र लिखा है। उस लड़के ने कहाः मैंने कभी लिखा ही नहीं, किसी और ने मेरे नाम से लिख दिया होगा।

प्रिंसिपल ने कहाः झूठ बोल रहे हो तुम। यह पत्र तुमने लिखा है, पहले और भी रिपोर्ट आ चुकी हैं। तुमने पत्थर भी किन्हीं लड़कियों को मारा है। वह भी सब पता है। हर लड़की को अपनी मां-बहन समझना चाहिए।

वह लड़का बोलाः मैं तो समझता ही हूं, आप कैसी बातें कर रहे हैं। मैंने कभी इससे अन्यथा कुछ समझा ही नहीं। हर लड़की को मां-बहन समझता ही हूं। जितना वह इनकार करने लगा, उतना प्रिंसिपल उस पर चिल्लाने लगे।

मैंने उनसे कहाः एक मिनट रुक जाइए। मैं कुछ सवाल पूछूं?

प्रिंसिपल ने कहाः खुशी से।

वे समझे कि मैं लड़के से पूछने को हूं।

मैंने कहाः लड़के से नहीं, कुछ आपसे मुझे पूछना है।

आपकी उम्र कितनी है? उनकी उम्र बावन वर्ष। मैंने पूछा, आप छाती पर हाथ रख कर यह बात कह सकते हैं कि हर लड़की को आप मां-बहन समझने की हालत में आ गए हैं? अगर आ गए हों, तो फिर इस लड़के से कुछ कहने का हक है। अगर न आ गए हों, तो बात भी करने के हकदार आप नहीं हैं।

उन्होंने उस लड़के से कहाः तुम बाहर जाओ।

मैंने कहाः वह बाहर नहीं जाएगा। उसके सामने ही यह बात होगी।

और मैंने उस लड़के को कहाः पागल है तू। अगर तू ठीक कह रहा है कि तू सब लड़कियों को मां-बहन समझता है, तो चिंता की बात है, तू रुग्ण है, बीमार है, कुछ गड़बड़ है। और अगर तुमने प्रेम-पत्र लिखा है तो कुछ बुरा नहीं किया। अगर बीस और चौबीस वर्ष के लड़के और लड़कियां प्रेम करना बंद कर देंगे, उस दिन यह दुनिया नरक हो जाएगी। प्रेम करना चाहिए। लेकिन प्रेम-पत्र में तूने गाली लिखी है, यह बेवकूफी की बात है। प्रेम-पत्रों में कहीं गालियां लिखनी पड़ती हैं। अगर मेरा बस चले तो मैं तुझे सिखाऊंगा कि कैसे प्रेम-पत्र लिख।

यह प्रेम-पत्र गलत है। प्रेम-पत्र लिखना गलत नहीं है। एकदम स्वाभाविक है। लेकिन जब स्वाभाविक बात पर अस्वाभाविक थोपा जाएगा और कहा जाएगा, लड़कियों को मां-बहन समझो। तो फिर इसका परिणाम उलटा होगा। लड़का ऊपर से कहेगा, हम मां-बहन समझते हैं। और उसकी पूरी प्रकृति किसी लड़की को प्रेम करना चाहेगी। फिर वह एसिड फेंकेगा, पत्थर मारेगा, गालियां लिखेगा, बाथरूम में श्लोक लिखेगा। वह यह करेगा। फिर यह सब होगा। और समाज गंदा होगा, श्रेष्ठ नहीं होगा।

प्रेम की अपनी पवित्रता है। प्रेम से ज्यादा पवित्र और क्या है? लेकिन हमने स्त्री-पुरुष को दूर करके प्रेम की पवित्रता भी नष्ट कर दी, उसको भी गंदगी बना दिया है। और धीरे-धीरे हर स्वाभाविक चीज पर बाधा डाल कर, हर चीज को अस्वाभाविक, अननेचुरल बना दिया है। और तब जो परिणाम होने चाहिए, वे हो रहे हैं।

हिंदुस्तान तब तक ब्रह्मचर्य की दिशा में अग्रसर नहीं हो सकता जब तक काम और सेक्स को समझने की स्वस्थ और वैज्ञानिक दृष्टि पैदा नहीं होती।

यह पागलपन बंद होना चाहिए, जो हो रहा है। इस पर रुकावट लगनी चाहिए। और गलत बातें सिखानी बंद करनी चाहिए, उनसे जो नुकसान हो रहा है उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि हम कितना नुकसान अपने बच्चों को पहुंचा रहे हैं।

सारे दुनिया के चिकित्सक कहते हैं कि सेक्स मैच्योरिटी के बाद, चौदह और पंद्रह साल के बाद--बच्चे की, लड़के की उत्सुकता लड़की में, लड़की की उत्सुकता लड़के में होनी स्वाभाविक है। अगर न हो, तो खतरा है। बिल्कुल स्वाभाविक है। अब इस उत्सुकता को हम कितने अच्छे सुसंस्कृत मार्ग पर ले जाएं, यह हमारे हाथ में है। और जितने सुसंस्कृत मार्ग पर हम ले जाएंगे, उतना ही इस बच्चे को जीवन में वीर्य की ऊर्जा को सम्हालने में, शक्ति को संचित करने में, ब्रह्मचर्य की दिशा में बढ़ने में सहारा मिलेगा।

लेकिन हम क्या कर रहे हैं? हम बीच में एकदम पत्थर की दीवाल खड़ी कर देते हैं और चोरी के सब रास्ते खोल देते हैं। और बड़े मजे की बात है, एक तरफ ब्रह्मचर्य की शिक्षा दिए चले जाते हैं और दूसरी तरफ पूरा समाज कामुकता का प्रचार करता चला जाता है। बच्चे चौबीस घंटे कामुकता के प्रचार से पीड़ित हैं और इधर से ब्रह्मचर्य की शिक्षा से भी पीड़ित हैं। ये दोनों विरोधी शिक्षाएं मिल कर उनके जीवन को बहुत संघातक स्थिति में डाल देती हैं।

हिंदुस्तान के बच्चों में उतना ही ओज है जितना दुनिया के किसी कौम के बच्चों में। लेकिन उस ओज के कम होने में बड़ा कारण तो गरीबी, भोजन की कमी। और उससे भी बड़ा कारण, हमारी अवैज्ञानिक दृष्टि है सेक्स के संबंध में। यह दृष्टि अगर वैज्ञानिक हो, तो हमारे बच्चे किसी भी कौम के बच्चों से ज्यादा ओजस्वी और तेजस्वी हो सकते हैं।

लेकिन अत्यंत मंद-बुद्धि साधु जो कुछ भी कहे चले जा रहे हैं, न जिन्हें बायोलॉजी का कुछ पता है, न फिजियोलॉजी का कुछ पता है, न जिन्हें शरीर का कुछ पता है, न जिन्हें वीर्य के निर्माण का कोई पता है, न जिन्हें कुछ संबंध है, जो न मालूम क्या-क्या फिजूल बातें समझाए चले जा रहे हैं।

हिंदुस्तान के समझाने वाले समझाते हैं कि जैसे वीर्य का कोई संचित-कोश शरीर में रखा हुआ है कि अगर वह खर्च हो गया तो तुम मर जाओगे।

वीर्य का कोई संचित-कोश नहीं है। वीर्य जितना खर्च होता है उतना पैदा होता है। इसलिए वीर्य के खर्च से कभी भी घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। कोई जरूरत ही नहीं है। विज्ञान तो यह कहता है। लेकिन इसका

यह मतलब नहीं है कि कोई वीर्य को ऐसे ही खर्च करता रहे। वीर्य तो रोज निर्मित होता है। और जो यह कहा जाता है कि एक बूंद वीर्य की खो गई तो सारा जीवन नष्ट हो गया। ऐसी बातें कहने वालों पर जुर्म लगने चाहिए और मुकदमे चलने चाहिए। क्योंकि ऐसी बात जो बच्चा पढ़े लेगा, वह उसका अगर एक बूंद वीर्य खो गया तो वह सदा के लिए घबड़ा गया कि मैं मर गया।

कोई नहीं मरता और न जीवन नष्ट होता है। और बड़े मजे की बात है, वीर्य तो शरीर का हिस्सा है। और आत्मवादी जब शरीर के हिस्सों को इतना महत्व देते हों, तो समझ में आता है, वे कितने शरीरवादी होंगे। इतना मूल्य नहीं है कुछ। और ध्यान रहे, वीर्य के खर्च से नुकसान नहीं होता। नुकसान इस बात से होता है कि वीर्य खर्च हो गया तो नुकसान हो जाएगा। यह मानसिक भाव विकृत करता है और नुकसान पहुंचाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि कोई पागलों की तरह वीर्य के खर्च करने में लग जाए।

जो बहुत गहरे जानने वाले हैं वे तो यह कहते हैं कि प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि आप ज्यादा वीर्य खर्च कर ही नहीं सकते। प्रकृति की पूरी की पूरी ऑटोमेटिक व्यवस्था है शरीर पर। आप ज्यादा खर्च कर ही नहीं सकते हैं। लेकिन आप चाहें तो बिल्कुल खर्च न करें, यह हो सकता है। ये दोनों बातों को समझ लें आप। आप ज्यादा खर्च नहीं कर सकते हैं। आपके खर्च करने पर सीमा है। उस सीमा से ज्यादा कोई खर्च कर नहीं सकता। क्योंकि शरीर इनकार कर देता है। ऑटोमेटिक है, शरीर फौरन इनकार कर देता है। जितना शरीर खर्च कर सकता है उससे ज्यादा खर्च करने से फौरन इनकार कर देता है।

लेकिन आप चाहें तो बिल्कुल खर्च न करें, यह हो सकता है। बिल्कुल खर्च न करें, यह दो तरह से हो सकता है। या तो जबरदस्ती; जबरदस्ती वाला आदमी पागल हो जाएगा। जैसे केतली के भीतर भाप बंद कर दो, दरवाजे सब बंद कर दो केतली के, और केतली फूट जाए, यह होगा।

जबरदस्ती जो रोकेगा, वह विक्षिप्त हो जाएगा। दुनिया में सौ पागलों में से अस्सी पागल सेक्स के कारण होते हैं। एक दूसरा रास्ता भी है, सारा ध्यान मनुष्य का नीचे न जाकर ऊपर की तरफ चला जाए, ध्यान। ध्यान ऊपर की तरफ चला जाए। ध्यान परमात्मा की खोज में, सत्य की खोज में संलग्न हो जाए। ध्यान वहां चला जाए जहां सेक्स में मिलने वाले सुख से करोड़-करोड़ गुना आनंद मिलना शुरू हो जाता है। अगर ध्यान वहां चला जाए तो सेक्स की सारी शक्ति का ऊर्ध्वगमन शुरू हो जाता है। उस आदमी को पता ही नहीं चलता कि सेक्स जैसी कोई चीज भी खींचती है। पता ही नहीं चलता। सेक्स उसके रास्ते पर खड़ा ही नहीं होता।

अगर आपका ध्यान, जैसे एक बच्चा कंकड़-पत्थर बीन रहा है, खेल रहा है, और कोई उस बच्चे को खबर दे दे कि पास में हीरे-जवाहरातों की खदान है, और वह बच्चा भाग कर वहां जाए, और हीरे-जवाहरात मिल जाएं, क्या उस बच्चे का ध्यान अब कंकड़-पत्थरों की तरफ जाएगा? गई वह बात। उसकी सारी शक्ति अब हीरे-जवाहरात बीनेगी। आदमी जब तक परमात्मा की दिशा में गतिमान न हो जाए, तब तक अनिवार्यरूपेण सेक्स की दिशा में उसका आकर्षण होता है। वह जैसे ही परमात्मा की तरफ गतिमान हो जाए, वैसे ही सारी शक्तियां एक नई यात्रा पर निकल जाती हैं।

ब्रह्मचर्य का मतलब आप समझते हैं, क्या होता है? ब्रह्मचर्य का अर्थ हैः ईश्वर जैसा जीवन। ब्रह्मचर्य का अर्थ सेक्स से तो कुछ जुड़ा ही हुआ नहीं है। उसका अर्थ है ईश्वर जैसा जीवन, ब्रह्म जैसी चर्या। उससे कोई संबंध ही नहीं है वीर्य वगैरह से। ईश्वर जैसी चर्या कैसे होगी? जब ईश्वर की तरफ बहती हुई चेतना होगी, तब चर्या धीरे-धीरे ईश्वर जैसी होती चली जाएगी।

और जब चित्त ऊपर जाता है तो नीचे की तरफ नहीं जाता है। फिर नीचे की तरफ जाना बंद हो जाता है। अगर मैं यहां बोल रहा हूं और पास में ही कोई वीणा बजाने लगे, तो आपके सारे चित्त अचानक वीणा की तरफ चले जाएंगे। आपको ले जाना नहीं पड़ेगा, वे चले जाएंगे। आप एक क्षण में पाएंगे कि मुझे सुनना भूल गए हैं और वीणा सुन रहे हैं।

जब भीतर आत्मा की वीणा बजने लगती है, तो ध्यान शरीर से हट कर आत्मा की तरफ चला जाता है। और तब जो फलित होता है, वह ब्रह्मचर्य है। उस ब्रह्मचर्य का अदभुत आनंद है। उस ब्रह्मचर्य की अदभुत शांति है। उस ब्रह्मचर्य का रहस्य बहुत अदभुत है।

लेकिन वह सप्रेस करने वाले और दमन करने वाले लोगों को उपलब्ध नहीं होता। इसलिए आप कहते तो हैं, हम सारे लोग कि हमारे युवकों के चेहरे कमजोर हैं, आंखों में ज्योति नहीं। पर हमारे साधुओं की कतार खड़ी करके देख लो, तो उन पर तो ज्योति होनी चाहिए। तो वे हमसे ज्यादा बीमार और ज्वरग्रस्त मालूम होते हैं। उनकी हालत हमसे बुरी है। लेकिन हम कहेंगे, वे त्याग-तपश्चर्या कर रहे हैं, इसलिए यह हालत है।

यह जो हालत है बेरौनकी की, इसके पीछे दरिद्रता, दीनता, भुखमरी कारण है। और यह जो अश्लीलता और कामुकता की स्थिति है, इसके पीछे ब्रह्मचर्य की गलत दिशा और शिक्षा है--दमन की शिक्षा।

कुछ और प्रश्न रह गए, वे संध्या की चर्चा में मैं आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नौवां प्रवचन

क्रांति एक विस्फोट है, ध्यान एक विकास है

पूछ रहे हैं कि मैंने कहा है कि क्रांति तो एक विस्फोट है, सडन एक्सप्लोजन है। और फिर मैं ध्यान की प्रक्रिया और अभ्यास के लिए कहता हूं, तो इन दोनों में विरोध नहीं है? रात्रि

नहीं, इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। यदि मैं कहूं कि पानी जब भाप बनता है, तो एक विस्फोट है, सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। और फिर मैं किसी से कहूं कि पानी को धीरे-धीरे गरम करो, ताकि वह भाप बन जाए। वह आदमी मुझसे कहे कि आप कहते हैं, पानी तो एकदम से भाप बन जाता है, फिर हम धीरे-धीरे गरम करने का अभ्यास क्यों करें? इन दोनों में विरोध नहीं है? तो उस समय कहूंगा, विरोध नहीं है।

पानी को जब हम गरम करते हैं तो एक डिग्री गरम पानी भी भाप नहीं है और निन्यानबे डिग्री पानी भी भाप नहीं है। एक डिग्री पानी गरम जो है वह भी पानी ही है और निन्यानबे डिग्री गरम पानी भी पानी ही है। सौ डिग्री पर एकदम से पानी भाप बन जाता है। लेकिन सौ डिग्री तक की जो गरमी है वह क्रमशः आती है। वह गरमी एकदम से नहीं आ जाती।

तो जब मैं कहता हूं, पानी एकदम से भाप बनता है, तो मेरा मतलब है कि पानी ऐसा नहीं होता कि पहले थोड़ा सा भाप बनता है, फिर थोड़ा सा भाप बनता है, फिर थोड़ा सा भाप बनता है। पानी सौ डिग्री पर एकदम से भाप बनता है, एक्सप्लोजन हो जाता है, विस्फोट हो जाता है। पानी की जगह भाप हो जाती है, पानी नहीं होता। लेकिन जब मैं कहता हूं, गरम करें, तो उसका मतलब है कि सौ डिग्री तक गरमी तो धीरे-धीरे आती है। जब मैं कहता हूं, क्रांति तो विस्फोट है, लेकिन क्रांति के पूर्व की जो अनिवार्य गरमी है चित्त की, वह धीरे-धीरे ही आती है, वह एकदम से नहीं आ जाती। नहीं तो ध्यान के अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। फिर तो मैंने कहा कि विस्फोट हो जाए, और विस्फोट हो जाए।

लेकिन आपका चित्त उस जगह नहीं है जहां विस्फोट होता है। विस्फोट का तो एक, जिसको कहें बॉयलिंग पॉइंट है। विस्फोट का तो एक बिंदु है, जहां जाकर विस्फोट होता है। पर आप वहां नहीं हैं। अगर आप वहां हो तो विस्फोट इसी वक्त हो जाएगा। विस्फोट के होने में समय नहीं लगता। लेकिन विस्फोट के बिंदु तक पहुंचने में समय लगता है।

एक बीज हमने डाला। बीज तो जब अंकुर बनता है, तो एकदम से फूट कर अंकुर हो जाता है। लेकिन अंकुर बनने के पहले महीनों पड़ा रहता है जमीन में। सड़ता है, टूटता है, फूटता है, फिर अंकुर होता है। अंकुर तो एक विस्फोट की भांति ही होता है। एक मां के पेट से बच्चे का जन्म होता है। जन्म तो एक विस्फोट है, एक्सप्लोजन है। ऐसा नहीं होता कि बच्चा थोड़ा जन्म गया है, अभी थोड़ा और बाद में जन्मेगा, फिर थोड़ा और बाद में जन्मेगा। जन्म कोई क्रमिक बात नहीं है, ग्रेजुअल बात नहीं है। जन्म तो हो गया एक क्षण में। लेकिन जन्म के पहले नौ महीने वह बच्चा बड़ा हो रहा है, बड़ा हो रहा है। वह जन्मने की तैयारी कर रहा है, तैयारी कर रहा है। फिर जन्म तो एक ही क्षण में हो जाएगा। लेकिन वह जो तैयारी है नौ महीने की वह चलेगी, चलेगी, वह पीछे की नौ महीने की तैयारी होगी।

अगर वह तैयारी न हो तो जन्म एक क्षण में नहीं हो जाएगा। जन्म के बिंदु तक आने में एक विकास है, लेकिन जन्म एक विस्फोट है। क्रांति एक विस्फोट है। ध्यान एक विकास है। और ध्यान उस जीवन-क्रांति की प्राथमिक तैयारी है। उस तैयारी के लिए मैं कह रहा हूं। जिस दिन तैयारी पूरी हो जाएगी, उस दिन विस्फोट हो जाएगा। फिर ऐसा नहीं होगा कि आप कहें कि अभी मैं थोड़ा ज्ञानी हुआ, थोड़ा ज्ञानी और हो जाऊंगा, फिर थोड़ा ज्ञानी। ऐसा नहीं होगा। ज्ञान जिस दिन आएगा तो सडन एक्सप्लोजन की तरह। सब टूट जाएंगे द्वार। लेकिन उसके आने तक एक-एक कदम, एक-एक कदम, एक-एक कदम उसकी तैयारी जो प्राथमिक है वह चलती रहेगी। दोनों में कोई विरोध नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जैसे कोई आदमी किसी बगीचे की तरफ घूमने निकला हो। बगीचा बहुत दूर है, दिखाई भी नहीं पड़ता है। लेकिन जैसे-जैसे बगीचे के पास पहुंचने लगता है, बगीचे में नहीं पहुंच गया, अभी बगीचा दिखाई भी नहीं पड़ता, लेकिन हवाएं ठंडी आनी शुरू हो गई हैं, फूलों की कोई उड़ती हुई सुगंध आने लगी है। अब वह आदमी कहता है, मालूम होता है बगीचा अब करीब है। वह कहता है, बगीचा अब करीब है। बगीचा दिखाई नहीं पड़ता, न फूल दिखाई पड़ते हैं, लेकिन हवाएं ठंडी हो गई हैं, हवाओं में थोड़ी सुगंध आने लगी है। फिर वह जैसे-जैसे आगे बढ़ता है--सुगंध बढ़ती जाती है, ठंडक बढ़ती जाती है, शीतलता बढ़ती जाती है। वह आदमी कहता है, निश्चित ही मैं बगीचे के करीब पहुंच रहा हूं।

समाधि के करीब, क्रांति के करीब पहुंचने के पहले जरूर ही ध्यान में भी कुछ झलकें आनी शुरू हो जाती हैं। जैसे कल तक जैसी अशांति थी, वह कम होने लगेगी। कल तक जैसा क्रोध था, वह कम होने लगेगा। कल तक जैसी घृणा थी, वह कम होने लगेगी। कल तक जैसा अहंकार था, वह कम होने लगेगा। कल तक मन में जो एक बेचैनी थी, वह कम होने लगेगी। कल तक जो वासना थी, वह कम होने लगेगी।

ये सब बातें बताएंगी कि हम करीब पहुंचने लगे उस जगह के जहां वह क्रांति हो जाती, जहां हम मिट जाते हैं और परमात्मा प्रकट हो जाता है। उसके पहले इन सबमें फर्क आने लगे, अगर ये बढ़ती जाती हों, तो समझना चाहिए हम समाधि से दूर जा रहे हैं।

क्रोध बढ़ता जाता हो रोज, बेचैनी बढ़ती जाती हो, घृणा बढ़ती जाती हो, दुष्टता बढ़ती जाती हो, तो जानना चाहिए कि हम कहीं उलटे जा रहे हैं। अगर ये कम होते जाते हों, तो जानना चाहिए कि हम जा रहे हैं ध्यान की तरफ। लक्षण ही हो सकते हैं। और हर आदमी को अपने ही सोचने पड़ेंगे। क्योंकि हर आदमी की मौलिक कमजोरी जो है वही उसके लिए माप-दंड बनेगी कि उसका ध्यान विकसित हो रहा है कि नहीं। हर आदमी की मौलिक कमजोरी में थोड़ा फर्क हो सकता है।

एक आदमी की मौलिक कमजोरी क्रोध हो सकती है। कि उसका सारा व्यक्तित्व क्रोध के आस-पास ही निर्मित हुआ हो। यानी घूम-फिर कर वह क्रोध पर ही आ जाता हो। तो उस आदमी को जांच रखनी पड़ेगी कि मेरा क्रोध कम हो रहा है क्या? अगर क्रोध कम हो रहा है तो उसका मतलब हुआ कि उसके मौलिक व्यक्तित्व में परिवर्तन शुरू हो गया है। किसी आदमी की कोई और कमजोरी हो सकती है। किसी आदमी की कोई और कमजोरी हो सकती है। तो हर आदमी को अपना मौलिक केंद्र खोजना चाहिए कि यह मेरा खास व्यक्तित्व है, इसको मैं देखूं कि इसमें क्या फर्क पड़ रहा है? और फर्क पड़ता चला जाएगा। और फर्क दिखाई पड़ने लगेगा।

फर्क आपको ही दिखाई पड़ेगा पहले तो। धीरे-धीरे दूसरों को भी दिखाई पड़ेगा। जो आपके निकट हैं उनको भी दिखाई पड़ेगा। लेकिन मूलतः तो आपको दिखाई पड़ेगा।

इतना भर ध्यान रहे कि जिन चीजों को आज तक पाप कहा गया है, अगर वे चित्त में कम होने लगें, तो समझना कि ध्यान में गति हो रही है। और जिनको आज तक पुण्य कहा गया है, अगर वे बढ़ने लगें, तो समझना कि ध्यान में गति हो रही है।

मैं तो, मेरा तो कहना ही यही है कि पाप वही है जो व्यक्ति को स्वयं के विपरीत ले जाए और पुण्य वही है जो व्यक्ति को स्वयं के निकट लाए। पाप और पुण्य का और कोई अर्थ नहीं है, एक। एक तो यह ध्यान रखें। दूसरी बात और ध्यान रखें कि आपके चित्त की जागरूकता क्रमशः बढ़ती चली जाएगी। आप जो भी काम करेंगे, ज्यादा होशपूर्वक करेंगे। कल भी किया था, परसों भी किया था, लेकिन इतने होशपूर्वक नहीं किया था। अगर आप भोजन भी खाएंगे तो भी होशपूर्वक खाएंगे। अगर आप बोलेंगे भी तो भी होशपूर्वक बोलेंगे। रास्ते पर चलेंगे तो भी होशपूर्वक चलेंगे। एक अवेयरनेस, एक होश बढ़ता चला जाएगा। और इसीलिए वह पहला फर्क पड़ेगा। जितना होश बढ़ता है उतनी भूलें होनी मुश्किल हो जाती हैं। होश से भरा हुआ आदमी क्रोध कैसे करे? होश से भरा हुआ आदमी कैसे झगड़े? होश से भरा हुआ आदमी कैसे चोरी करे? होश से भरे हुए आदमी के व्यक्तित्व में फर्क होने शुरू हो जाएंगे।

तो दो बातें ध्यान रखना। चित्त की अशांति के बढ़ाने वाले जितने भी रूप हैं, वे कम होने लगें और जागरूकता, होश बढ़ने लगे, तो समझना कि ध्यान क्रमशः विकसित होता जा रहा है। यह लेकिन बगीचे की सुगंध है, बगीचा नहीं है। और यही साधु और संत में फर्क है। साधु का मतलब हैः जो बगीचे के पास आ रहा है। अभी पहुंच नहीं गया। अच्छा आदमी होता जा रहा है, साधु होता जा रहा है, लेकिन अभी बगीचे के बाहर है। अभी सुगंध, हवा आने लगी है; लेकिन अभी बगीचे में पहुंच नहीं गया। और संत का मतलब हैः जो बगीचे में पहुंच गया। अब अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं है वह। अब तो वह पहुंच गया वहां, जहां न अच्छा है, न बुरा है। वह अच्छा और बुरा तो बाहर का ही हिसाब था। अब उस बगीचे में उसका कोई हिसाब नहीं है।

तो साधुता बढ़ती चली जाए, तो समझना कि ध्यान बढ़ रहा है। और साधुता का मतलब समझ लेना। साधुता का मतलब यह नहीं कि आप कोई रंगे कपड़े पहनने लगेंगे और चंदन-तिलक लगाने लगेंगे और कोई राम-राम की चदरिया ओढ़ लेंगे। इनसे साधुता का कोई संबंध नहीं है। अगर गौर से देखेंगे तो जो आदमी इस तरह के काम करता है--रंगीन चादर पहन लेता, गेरुआ कपड़े पहन लेता, मुंह-पट्टी बांध लेता, राम की चदरिया ओढ़ लेता या और कोई कर लेता। यह आदमी, इस आदमी की मौलिक कमजोरी एक्झिबिशनिज्म है, इस आदमी की मौलिक कमजोरी प्रदर्शन है। और वह प्रदर्शन की कमजोरी इसको यह सब धंधा करवा रही है। वह जो प्रदर्शन है कि दूसरे मुझे देखें और दूसरे मुझे जाने और दूसरे मुझे पहचाने कि मैं यह हूं। वह इसकी मौलिक कमजोरी है। यह आदमी फिल्म ऐक्टर भी हो सकता था तो ठीक था। यह किसी नाटक में काम करता तो ठीक था। वह इसकी उचित भूमि होती। वह इसकी जो कमजोरी है, उसके अनुकूल जगत होता। लेकिन यह साधु बन गया है। साधु का प्रदर्शन से क्या प्रयोजन? लेकिन यह अपनी उसी कमजोरी को प्रकट करता चला जाएगा।

अगर किसी की यह कमजोरी हो कि उसे प्रदर्शन में बहुत रस आता हो, तो ध्यान बढ़ने से यह रस कम हो जाएगा। जो भी हमारी कमजोरी हो, हमें खोजनी चाहिए। और सबकी कमजोरियां सबको पता हैं। किसी से पूछने जाने की कोई जरूरत नहीं है। हम जानते हैं कि किस बिंदु पर मेरा व्यक्तित्व पागल है।

कोई आदमी धन को पकड़े चला जा रहा है, वह उसकी कमजोरी है। तो ध्यान बढ़ेगा, तो धन पर पकड़ कम हो जाएगी। जो भी हो, इस तरह के दो परिणाम होंगे। और इनका अगर हिसाब रखेंगे, तो आप बराबर साल-छह महीने में निर्णय कर सकेंगे कि कहां फर्क हुआ, नहीं हुआ, क्या हुआ, क्या नहीं हुआ। फर्क सुनिश्चित हैं। ध्यान होगा, फर्क होंगे। फर्क को नहीं रोका जा सकता। समस्त आचरण और व्यक्तित्व बदल जाएगा। लेकिन फिर भी ध्यान रहे, ये बगीचे के बाहर की बातें हैं। बगीचे के भीतर फिर तो कोई हिसाब रखने का उपाय नहीं होता। हिसाब रखने की जरूरत भी नहीं होती। उसके पहले यह जरूरत है। फिर कोई पूछता भी नहीं है कि अब मैं कैसे जानूं कि विस्फोट हो गया।

अब जिसके घर में आग लग गई हो, वह पूछता है बाहर आकर कि मैं कैसे जानूं कि मेरे घर में आग लग गई? जब विस्फोट होता है, इतनी बड़ी क्रांति हो जाती है, सब पुराना जल जाता है, सब नया आ जाता है। वह किसी से पूछना नहीं पड़ता, वह तो सिर्फ पता ही चलता है।

लेकिन जब तक विस्फोट नहीं हुआ, तब तो जरूर पूछने का ख्याल रहता है क्या-क्या फर्क पड़ेंगे। इसलिए बगीचे के बाहर तो थोड़े-बहुत लक्षण काम देते हैं, बगीचे के भीतर कोई लक्षण काम नहीं देते। वहां तो दिख ही जाता है, पता ही चल जाता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

सवाल समय का नहीं है। सवाल यह नहीं है कि आप कितनी देर करें। सवाल यह है कि कैसे करें? वह चाहे दस मिनट हो, चाहे पंद्रह मिनट हो, चाहे आधा घंटा हो। क्वालिटी का, उसके गुण का सवाल ज्यादा महत्वपूर्ण है, परिमाण का और मात्रा का उतना नहीं है। लेकिन फिर भी उस पर भी विचार करना चाहिए। कम से कम आधा घंटा सुबह, आधा घंटा रात। कम से कम इतना।

लेकिन यह कोई बिल्कुल रेखाबद्ध नियम नहीं है। ऐसा न कोई सोचे कि आधा घंटा नहीं कर सकते, तो फिर करना ही नहीं चाहिए। जितना भी किया हो, उतना भी सार्थक है। लेकिन आधा घंटा अगर सुबह और आधा घंटा रात किया गया तो परिणाम तीव्रता से होंगे।

लेकिन उसमें भी ध्यान समय की लंबाई का कम, ध्यान की गहराई का ज्यादा हो। चाहे पांच मिनट ही हो। लेकिन पूरे प्राण लग कर होना चाहिए। नहीं तो आधा घंटा भी आदमी बैठा रह सकता है आंख बंद करके। कई लोग मंदिरों में बैठे ही हुए हैं। जिंदगी भर से बैठते चले जा रहे हैं, कहीं कुछ नहीं हुआ। तो सिर्फ समय पूरा कर देते हैं। घड़ी देख कर आधा घंटा पूरा कर दिया। वापस उठ कर आ गए।

मात्रा पर बहुत ध्यान न हो। उसका उपयोग तो है ही। क्योंकि समय के बिना क्या होगा? आधा घंटा और आधा घंटा; एक घंटा चौबीस घंटे में ध्यान के लिए खोज लेना। तेईस घंटे बाकी दुनिया चल रही है। आखिर में आप पाएंगे कि तेईस घंटे में जो कमाया था वह खो चुका है और एक घंटे में जो कमाया था वह सदा के लिए साथ है।

आज लगेगा कि एक घंटा! क्योंकि हमें पता नहीं कि ध्यान से कौन सी संपत्ति मिलेगी। एक घंटा कम से कम। और समय भी अपने लिए चुन लेना चाहिए। ऐसे सामान्यतया सुबह जागने के बाद, जितने जल्दी हो सके उतने जल्दी स्नान वगैरह करके बैठ जाएं, तो फायदे का है। क्यों? क्योंकि रात भर चेतना विश्राम कर लेती है। सुबह ज्यादा ताजी होती है, ज्यादा प्रफुल्ल होती है और जल्दी से शांत हो सकती है।

अभी दिन का काम शुरू नहीं हुआ, उसके पहले ही ध्यान कर लें। फिर इस ध्यान का परिणाम दिन के काम पर भी पड़ेगा। क्योंकि जो आदमी सुबह उठ कर आधा घंटे ध्यान से होकर गुजरा है, वह अपनी दुकान पर वही आदमी नहीं हो सकता जो बिना ध्यान के दुकान पर आ गया। इन दोनों आदमियों में फर्क होगा। इनके भीतर की झलक में फर्क होगा। इनके व्यवहार में फर्क होगा। तो दिन का जगत शुरू हो उसके पहले आधा घंटे, जैसे हम स्नान करके आते हैं, एक ताजगी लेकर, ऐसे ही भीतर के स्नान को करके भी आएं, तो एक भीतरी ताजगी लेकर आएंगे। तो वह दिन भर के काम को प्रभावित करेगी।

तो सुबह का, जागने के बाद, जितनी जल्दी हो सके और रात्रि में सोने के समय। बस आखिरी समय, जब सोने लगें तब ध्यान और फिर बिल्कुल सो जाएं। ये दो संध्या-काल हैं। जब सुबह हम जागते हैं सोकर तब और जब रात्रि हम जाग कर पुनः सोते हैं। इन दोनों स्थितियों में चेतना की अवस्था बदलती है। जागने से जब नींद में चेतना जाती है, तब पूरी स्थिति बदलती है मस्तिष्क की। और सुबह भी जब नींद से हम जागते हैं, तब भी पूरी स्थिति बदलती है। ये जो संक्रमण काल हैं, इनमें ही अगर ध्यान का बीज बो दिया जाए, तो वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि उस वक्त चेतना संक्रमण में होती है और उन जगहों पर पहुंचती है जहां सामान्यतः नहीं पहुंचती।

जैसे रात आप सोने गए हैं। जब आप सोते हैं तो धीरे-धीरे-धीरे जागरण खोता है, निद्रा उतरती है। और एक क्षण होता है, जो आपने अगर गौर किया होगा तो आपको पता पड़ जाएगा। एक क्षण होता है, उसके पहले आप जागे हुए थे, उसके बाद आप सो गए। एक बारीक क्षण आएगा बीच में जहां से दरवाजा है--जागरण नींद में प्रवेश करता है, होश बेहोशी बनता है। उसी द्वार पर अगर ध्यान की वृत्ति रही तो वह वृत्ति नींद के साथ ही सरक जाती है अंदर। और पूरी रात की निद्रा में ध्यान की अंतर-धारा बहने लगती है। वह द्वार खुलता है उसी वक्त। जैसे यह द्वार बंद है और कोई इसके भीतर जा रहा है, द्वार खुला, उसी के साथ आप निकल गए तो आप द्वार के भीतर हो गए, फिर वह द्वार बंद हो जाता है।

तो चेतना का द्वार निद्रा के लिए खुलता है। कांशस-माइंड, चेतन-मन सोता है, अचेतन जागता है, उस क्षण चेतना में एक नई स्थिति, एक नया द्वार खुलता है। उस द्वार पर आप जो भी भाव लेकर जाएंगे, वह रात्रि भर आपकी चेतना की संपत्ति बना रहेगा।

इसलिए विद्यार्थी जब परीक्षा देता है, तो रात भर नींद में परीक्षा देता रहता है। उसका कोई और कारण नहीं है। वह पढ़ते ही पढ़ते सोता है। परीक्षा ही परीक्षा सोचते सोता है। वह परीक्षा ही नींद में प्रविष्ट हो जाती है। वह रात भर परीक्षा दे रहा है, वह रात भर उसका परीक्षा का काम चल रहा है।

दुकानदार दिन-रात रुपये गिनते-गिनते सोता है, वह रात भी सपने में वही गिनता रहता है। सुना ही होगा न कि एक कपड़े वाला है, तो वह रात चादर भी फाड़ देता है, नींद में कपड़ा फाड़ देता है। किसी को बेच रहा है।

नींद में हम वही कर रहे हैं, जो अंतिम क्षण में हम कर रहे हैं। आपने अगर ख्याल न किया हो तो करना। सोते समय जो अंतिम विचार होगा, जागते समय वह प्रथम विचार होगा। सोते समय जो अंतिम विचार होगा, आखिरी, जागते समय सदा वह प्रथम विचार होगा। वह रात भर चेतना में मौजूद रहता है और सुबह पहला विचार वही बनता है। आप प्रयोग करके देख लें। प्रयोग करके देखेंगे तो पता चल जाएगा।

इसलिए रात्रि का अंतिम विचार जितना शांत, मौन, आनंद का हो, उतना ही अच्छा है। और रात की अंतर्धारा उससे जुड़ी रहेगी। इसलिए रात को जो ध्यान करके सोता है, वह एक अर्थों में धीरे-धीरे अपनी पूरी निद्रा को ध्यान में परिवर्तित कर लेता है। अब इतना समय किसी के पास नहीं कि छह घंटा ध्यान कर सके।

लेकिन छह घंटे हम सोते तो हैं। और अगर सोने की पूरी स्थिति ध्यान बन जाए, तो हम छह घंटे ध्यान के लाभ को उपलब्ध हो जाते हैं। तो रात के आखिरी क्षण ध्यान और सुबह के प्रथम क्षण ध्यान। बस ये दो समय खोज लें, तो बहुत अच्छा है। किसी के पास और समय हो, और कभी भी खोज सके तो दस-पांच मिनट के लिए कभी भी खोज ले। एक बात स्मरण रखना, ध्यान में अति कभी नहीं हो सकती। आप कितना ही करो, वह ज्यादा कभी नहीं होता। आप ज्यादा कितना ही करो, वह ज्यादा नहीं हो सकता।

शांति में कोई अति हो सकती है? क्या हम कह सकते हैं कि एक आदमी अति शांत है। ऐसा नहीं कह सकते। शांति में कोई अति की सीमा नहीं है। ध्यान में भी अति की कोई सीमा नहीं है। तो अति की चिंता ही मत करना, जितना समय जब मिल जाए।

और जब कला पूरी ख्याल में आ जाती है ध्यान की, तो आप बस में बैठे हैं आंख बंद कर लें। क्या फिजूल लोगों की बातें सुन रहे हैं और बाहर का रास्ता देख रहे हैं। क्या फायदा है? आंख बंद कर लें। बस में दो घंटे बैठे हैं, उन दो घंटों को ध्यान में विलीन करने की कोशिश करें।

दफ्तर में बैठे हैं, कोई काम नहीं है; वेटिंगरूम में बैठे हुए हैं बाहर, कोई काम नहीं है; तो फिजूल कुछ करने की बजाए उचित है आंख बंद कर लें। तो अकारण व्यर्थ देखने से बच जाएंगे, व्यर्थ सोचने से बच जाएंगे, व्यर्थ सुनने से बच जाएंगे। और उतने समय को उस काम में लगा देंगे जो कि अंतिम रूप से अर्थपूर्ण है।

और अगर एक आदमी सिर्फ बेकार खोने वाले क्षणों को भी ध्यान के लिए दे दे तो पर्याप्त है। एकदम पर्याप्त है। एक आदमी ट्रेन में बैठा हुआ है, दिन भर ट्रेन में बैठा रहता है। वह एक ही अखबार को बार-बार पढ़ता रहता है। मैं रोज देखता हूं ट्रेन में, वह आदमी उस अखबार को कई दफे पढ़ चुका है लेकिन अब क्या करे, वह फिर उसको ही पढ़ रहा है। उन्हीं गीतों को कितनी बार सुन चुके हैं, फिर रेडियो खोल कर उन्हीं को सुन रहे हैं।

उन्हीं बातों को कितनी बार कर चुके हैं, फिर उन्हीं बातों को कर रहे हैं। अगर एक आदमी दिन भर में ख्याल रखे कि जो बातें मैं कर रहा हूं, यह कितनी बार कर चुका हूं। और अगर यह ख्याल रखे कि जो बातें मैं कर रहा हूं, इसमें से कितनी है जो बिना किए काम चल जाएगा। तो मुश्किल में पड़ जाएगा। हैरान होगा कि मैं सौ में से अट्ठानबे बातें तो व्यर्थ ही बोल रहा हूं।

आप टेलीग्राम देते हैं, तब कैसा एक-एक शब्द काटते हैं। इतने से काम चल जाएगा, इतने से काम चल जाएगा। आठ या दस शब्द पर्याप्त हैं। दस शब्द में आप उतनी बात कह देते हैं; अगर आपको चिट्ठी लिखवाई जाए, तो आप दो पन्ने लिखेंगे। और दस शब्दों में वह बात हो जाती है। और चिट्ठी से ज्यादा तेजी से हो जाती है।

क्योंकि दस शब्दों में सारी शक्ति सिकुड़ जाती है। इसलिए टेलीग्राम उतना प्रभावी है। और चिट्ठी लंबी होकर, वही बात तो फैल जानी है। वह दो पन्नों में फैल जाएगी, उसका प्रभाव भी कम हो जाने वाला है। आदमी को बोलने में, सुनने में, चलने में, फिरने में, सब में टेलिग्रेफिक होना चाहिए, ताकि जो समय बच जाए वह ध्यान में लगा दे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जहां तक बने सोते-सोते ही करना चाहिए। अगर सोते-सोते एकदम नींद आ जाती हो, तो बैठ कर करना चाहिए। रात्रि का ध्यान सोकर ही करना चाहिए, ताकि ध्यान करते-करते ही नींद आ जाए। यानी कब ध्यान बंद हुआ कब नींद आई यह आपको पता ही न पड़े। वह ध्यान होते-होते-होते ही नींद में प्रवेश पा जाए। तो लेट कर ही करना चाहिए। बैठ कर करिएगा तो फिर लेटना पड़ेगा। वह लेटने से बाधा पड़ेगी, उतना व्याघात हो जाएगा, उतनी दूरी हो जाएगी। ध्यान खतम हुआ और फिर सोएंगे आप। इसलिए लेट कर ही करना चाहिए। सिर्फ एक हालत में भर, अगर किसी को ऐसा लगता हो कि लेटते ही नींद आ जाती हो, कर ही न पाता हो, तो दो-तीन महीने बैठ कर करना चाहिए, फिर धीरे-धीरे लेट कर करना चाहिए।

प्रश्नः सब लोग बातचीत करते हों?

उससे कोई झंझट नहीं है। आपका दिमाग बातचीत नहीं करना चाहिए। सब लोग बातचीत करते हों इससे तो कोई संबंध नहीं है। ध्यान आपको करना है, उनको तो करना नहीं है।

प्रश्नः नहीं-नहीं, अभी जो बच्चे बोल रहे थे न, तो आपका ध्यान उधर गया न?

न-न, मेरा ध्यान वहां... मैं कोई ध्यान थोड़े ही कर रहा हूं यहां। मैं यहां बोल रहा हूं और मेरे बोलते वक्त यहां दस आदमी और बोलने लगें, तो मुझे कोई एतराज नहीं, मैं बोल सकता हूं, लेकिन उसका कोई प्रयोजन ही नहीं होगा। मैं यहां ध्यान नहीं कर रहा हूं। अगर ध्यान कर रहा होता तो आप अपने सब बच्चे ले आएं तो कोई हर्जा नहीं है। समझे न? मैं यहां बोल रहा हूं और मेरे बोलते वक्त अगर यहां दो-चार बच्चे रो रहे हैं और बोल रहे हैं, तो जो प्रयोजन, जिससे मैं बोल रहा हूं, वह हल नहीं होता। आप तक मेरी बात ही नहीं पहुंच पाएगी।

बोलने में बाधा पड़ सकती है दूसरे के बोलने से। अब यहीं आप दो-चार माइक और लगा लें और बोलने लगें, तो मुझे कोई हर्जा नहीं है। लेकिन फिर मैं नहीं बोलूंगा क्योंकि उसका कोई मतलब नहीं बोलने का।

ध्यान का मतलब तो है, आपको ध्यान में जाना है। अब किसी के बच्चे पर आपका हक थोड़े ही है कि आप ध्यान में जा रहे हैं इसलिए दुनिया भर के बच्चे चुप हो जाएं। क्या मतलब? तो आप जा रहे हैं ध्यान में, जाइए मजे से। उन बच्चों को तो ध्यान में जाना नहीं है इसलिए वे क्यों करें चुप्पी।

प्रश्नः तो वह थोड़ा अपना ख्याल नहीं जाएगा?

वह ख्याल जाता ही इसलिए है कि आप ध्यान में नहीं जा पा रहे हैं। ध्यान में जाने का मतलब समझे आप? मैंने कहाः साक्षीभाव। अगर बच्चा रो रहा है, तो साक्षी हो जाइए उसके कि बच्चा रो रहा है, हम साक्षी हैं। लेकिन आप साक्षी नहीं होते, कर्ता हो जाते हैं। आप कहते हैं, गर्दन दबा देंगे इस बच्चे की, बहुत गड़बड़ कर रहा है। तो गड़बड़ हो जाती है शुरू। आप साक्षी नहीं रहे, आप कर्ता हो गए। आप कहते हैं, हटाओ इस बच्चे को, इसको हमें नहीं सुनना।

आप साक्षी ही रहें--बच्चा रो रहा है, रो रहा है; हंस रहा है, हंस रहा है; नहीं रो रहा है, नहीं रो रहा है। आप अगर साक्षी रहे, तो बच्चा रोए कि कोई बात करे, कि हार्न बजे कि कुछ और हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि प्रक्रिया जो मैं समझा रहा हूं, वह साक्षी की है।

हां, दूसरे तरह के ध्यान में फर्क पड़ता है। एक आदमी राम-राम-राम जप रहा है और अगर कोई दूसरा जोर-जोर से कुछ और कहने लगे, तो बाधा पड़ती है। क्योंकि वह भी बोल रहा है और यह भी बोल रहा है, और बोलने से बोलने में बाधा पड़ती है।

लेकिन मैं तो बोलने की बात ही नहीं कर रहा। मैं नहीं कह रहा कि ओम जपो या कुछ करो। मैं तो यह कह रहा हूं, साक्षी बनो। जो भी है उसके साक्षी बनो। अगर तुम्हारे भीतर अशांति आ जाए, तो उसके भी साक्षी बनो। साक्षी ही बनते चले जाओ। जो भी हो उसके साक्षी बनते चले जाओ। इसका अंतिम परिणाम ध्यान होगा। इसे दुकान पर बैठ कर कर सकते हो, बस में कर सकते हो। कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। सड़क पर बैठ कर कर सकते हो। बल्कि बड़ा मजा आएगा, सड़क पर बैठ कर अगर करोगे। तो पता चलेगा कि अपना मन कितना अजीब है, जरा भी साक्षी नहीं होता। फौरन कहता है इसकी गर्दन दबाओ, उसको रोको, इसको नहीं बोलने देंगे। हमारा मन वह कहता है।

प्रश्नः किसी दफे हो सकती है?

बिल्कुल हो सकती है। अभी हो सकती है। थोड़ा प्रयास करने की बात है।

मैं एक गांव में एक रेस्ट-हाउस में ठहरा हुआ था। और मेरे साथ उस प्रदेश के एक मिनिस्टर भी ठहरे हुए थे। रात हम दोनों लौटे सोने के लिए। तो मैं तो अपना सोने के लिए चला गया। वे कोई पंद्रह मिनट के बाद उठ कर आए, मुझे हिलाया, कि आप तो सो गए, मुझे नींद नहीं आती। बड़ी मुसीबत में पड़ गया हूं।

वह रेस्ट-हाउस के आस-पास सब कुत्ते इकट्ठे हैं गांव के। वे बहुत शोरगुल मचा रहे हैं। वह उनकी आदत होगी, रोज इकट्ठा होने की।

तो वे दो-चार दफे जाकर उनको भगा भी आए हैं बाहर। क्योंकि उनको भगा आए तो वे और दो-चार को बुला कर लौट आए हैं।

तो कुत्ता कहीं भगाने से भग सकता है। आदमी ही नहीं भगता, तो कुत्ता कैसे भगेगा। वे सब वापस आ जाते हैं। अब उनकी बेचैनी हो गई। वे कहते हैं, मैं सो नहीं पाऊंगा, ये कुत्ते इतने भौंक रहे हैं, शोरगुल कर रहे हैं।

मैंने उनसे कहाः कुत्तों को क्या पता कि आप यहां ठहरे हुए हैं? और क्या संबंध? आपसे क्या लेना-देना कुत्तों का? आप मजे से सोइए। कुत्तों से आपका क्या संबंध है?

उन्होंने कहाः संबंध का मामला नहीं है। वे शोरगुल करते हैं, मैं नहीं सो पाता।

मैंने कहाः कुत्तों के शोरगुल से बाधा नहीं पड़ती। बाधा पड़ती है इस बात से कि कुत्ते नहीं भौंकने चाहिए। यह जो हमारा ख्याल है, इस ख्याल को बाधा पड़ती है। कुत्ते हैं, भौंकेंगे। कुत्तों का भौंकना काम है। आपको सोना है आप सो जाइए।

तो बोले, मैं क्या करूं?

मैंने उनसे कहाः आप इतना ही करें कि कुत्ते भौंक रहे हैं, इसको आप साक्षीभाव से सुनें। आप सिर्फ सुनते रहें कि कुत्ते भौंक रहे हैं, मैं सुन रहा हूं। फिर सुबह बात करेंगे।

वे कोई पंद्रह मिनट बाद सो गए होंगे। सुबह उठ कर उन्होंने मुझसे कहाः आश्चर्य! जब मैंने यह भाव किया कि कुत्ते भौंक रहे हैं, मैं सुन रहा हूं। तो उनका भौंकना भी मेरे ऊपर ऐसा असर करने लगा। जैसे कोई निद्रा लाने वाला संगीत है। करेगा ही। मैं रात भर सोया रहा, पता नहीं उन्होंने कब भौंकना बंद किया।

मैंने कहाः वे क्यों बंद करेंगे। उनसे आपका कोई संबंध ही नहीं है कि आप कब सो गए कि नहीं सो गए। वे अपना भौंकते रहे होंगे। लेकिन आपके चित्त ने रेसिस्टेंस छोड़ दिया। विरोध था कि नहीं भौंकने देंगे। तब दिक्कत थी। अब भौंकना है तो भौंके।

हमारे चारों तरफ जो हो रहा है, उसके साक्षीभाव को ही मैं ध्यान कह रहा हूं। इसलिए उसमें कोई बाधा नहीं है।

प्रश्नः आंखें बंद करना आवश्यक है?

नहीं, बिल्कुल आवश्यक नहीं है। लेकिन शुरू में आमतौर से यह होता है कि अगर आप आंख बंद करके ही प्रयोग करें तो सुविधा पड़ेगी। क्योंकि सिर्फ कान के ही द्वार पर आपको साक्षी होना पड़ेगा। और अगर आंख भी खुली रखी, तो दो जगह साक्षी होना पड़ेगा--कान के द्वार पर भी और आंख के द्वार पर भी। और आंख के द्वार पर साक्षी होना थोड़ा कठिन है कान के द्वार की बजाय।

क्योंकि आंख पर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे और गहरे पड़ते हैं। मगर अगर रख सकते हों तो बहुत ही अच्छा है। धीरे से मैं कहता हूं कि जब कान का अभ्यास ठीक हो जाए, फिर आंख भी खोल कर रखें। लेकिन अगर आंख बंद करने में तकलीफ पड़ती हो तो शुरू से वैसा करें। किसी को तकलीफ पड़ती है, किसी को आंख बंद करने से ही परेशानी होती है, तो वह आंख खुली रखे। लेकिन फिर दो जगह आपको साक्षीभाव रखना पड़ेगा। जो दिखाई पड़े उसके भी हम साक्षी हैं। उसके भी हम साक्षी हैं, कौन जा रहा है। फिर इसका भी हमें हिसाब नहीं रखना कि यह जो आदमी जा रहा है अपना दोस्त है, कि यह आदमी जो जा रहा है अपना दुश्मन है, कि यह अपनी पत्नी जा रही है। यह हिसाब नहीं रखना फिर। क्योंकि यह हिसाब रखा कि साक्षीभाव गया। हम सिर्फ साक्षी हैं, तो हम जान रहे हैं कि कोई जा रहा है। हम कोई निर्णय नहीं लेते। हम सब जान रहे हैं, हम देख रहे हैं।

तो दोहरा काम न हो जाए, इसलिए आंख बंद करने को कहता हूं। वैसे तो अच्छा तो यही है कि दोनों खुले रखें। पर अगर कठिनाई पड़ती हो तो पहले कान को साध लें, फिर आंख को साध लेना। और दोनों सध जाते हैं तब तो बड़ा आनंद हो जाता है। फिर खुली आंख से रास्ते पर चलते हुए आदमी साक्षी होता है। फिर बैठने की जरूरत नहीं रह जाती। फिर सब काम करते हुए साक्षी होता है। क्योंकि फिर आंख बंद करने का सवाल नहीं रह गया है। लेकिन शुरू में कठिनाई न हो, इसलिए मैंने कहा एक ही द्वार पर मेहनत करें। अगर बन सके तो दोनों पर कर सकते हैं। उससे कोई बाधा नहीं है।

प्रश्नः ऐसा होता है, एक दिन किया और दूसरे दिन नहीं हुआ तो दुख बन जाता है, पश्चात्ताप होता है।

वह तुम बनाओगे तो बन जाएगा। एक दिन किया और दूसरे दिन नहीं किया, तो अगर इसे दुख बनाओगे तो बन जाएगा। अन्यथा दुख बनाने की कोई जरूरत नहीं है। जितना हो सका, उसके लिए धन्यवाद देना

चाहिए। जितना नहीं हो सका, तो उसके लिए कोई पश्चात्ताप की जरूरत नहीं है। क्यों? क्योंकि पश्चात्ताप आने वाले ध्यान में बाधा बनेगा और धन्यवाद आने वाले ध्यान में सहयोगी होगा।

अगर आज मैं ध्यान के लिए बैठा और ध्यान कर सका, तो इसके लिए परमात्मा के प्रति अनुगृहीत होना चाहिए कि आज मैं ध्यान कर सका, भगवान की बड़ी कृपा है। यह जो भाव अगर मन में रहा, तो कल ध्यान में जाने में यह भाव सहयोगी होगा। क्योंकि अनुग्रह का भाव चित्त को शांत करता है। और अगर एक दिन ध्यान नहीं कर सके और हम पछताए कि आज बड़ा बुरा हो गया और यह तो बड़ी गड़बड़ हो गई, यह बड़ा नुकसान हो गया, बड़ी भारी हानि हो गई और चित्त को दुखी किया, तो आज तो नहीं ही किया है, यह दुख की भाव-दशा कल भी ध्यान में गहरे प्रवेश नहीं होने देगी।

ऐसी स्थिति में जब हम यह समझ जाएं कि पश्चात्ताप ध्यान में बाधा बनता है, तो पश्चात्ताप करना बेमानी है। और फिर दूसरी बात यह है कि हर चीज का साक्षी रखना चाहिए। इस बात के साक्षी हम रहे कि आज किया, इस बात के साक्षी हम रहे कि आज नहीं किया। इसमें झगड़ा क्या लेना है? दो फैक्ट्स थे, हमने देखे कि कल किया था आज नहीं किया।

स्वामी राम थे, वे तो अपने बाबत थर्ड परसन में ही बोलते थे। वे यह नहीं कहते थे कि मैं। वे यह नहीं कहते थे मुझे प्यास लगी। वे कहते, राम को प्यास लगी। वे कहते, आज राम एक रास्ते पर जा रहे थे, कुछ लोग मिल गए और राम को गालियां देने लगे। हम खड़े होकर हंसते हैं कि राम को अच्छी गालियां पड़ रही हैं।

जब अमरीका पहली दफा गए तो लोगों ने पूछा, यह क्या गोरखधंधा, हम समझे नहीं, आपका मतलब क्या है, आप ही राम हैं न?

उन्होंने कहाः मैं कहां राम। लोग इसको राम कहते हैं। हम तो इससे पीछे और दूर हैं।

एक जगह गए थे, राम फंस गए, कुछ लोग अच्छा झगड़ा करने लगे, हम खड़े होकर हंसने लगे। अच्छा, अच्छा फंसा राम। अब दिक्कत में पड़े हैं बेटा। अब निकलते नहीं बन रहा है।

साक्षीभाव का मतलब यह है कि वह धीरे-धीरे ऐसा गहरा हो जाए कि आज ध्यान करने बैठे यह जाना या आज ध्यान करने नहीं बैठे यह जाना। तब हमने ध्यान करने के प्रति भी साक्षी का भाव ग्रहण किया। और तब ध्यान से जो फायदा होता, उससे भी ज्यादा फायदा होगा, क्योंकि यह साक्षीभाव और भी आंतरिक हो गया। अब हमने इसमें भी कर्ता-भाव नहीं लिया कि मैंने ध्यान किया, मैंने ध्यान नहीं किया। यह कर्ता-भाव हो गया। इसमें फिर मैं जुड़ गया, फिर मैं ने काम पकड़ लिया।

नहीं, आज देखा कि ध्यान हुआ, आज देखा कि ध्यान नहीं हुआ। और हम सिर्फ देखने वाले हैं, हम करने वाले नहीं हैं। तो फिर जो गति आनी शुरू होगी, वह बहुत गहरी होगी। और उस तल पर कोई पश्चात्ताप नहीं है, कोई दुख नहीं है, कोई प्रश्न नहीं है। जो हुआ है वह हमने देखा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

धन्यवाद का मतलब हैः समस्त के प्रति धन्यवाद। क्योंकि यह सारा समस्त जो फैलाव है, इसके बिना कुछ भी नहीं हो सकेगा। श्वास भी हम नहीं ले सकेंगे। मैं श्वास ले रहा हूं, तो यह सारी हवाओं के प्रति धन्यवाद है। वृक्षों के प्रति धन्यवाद है जिनसे आक्सीजन बन रही है। आकाश के प्रति धन्यवाद है, तारों के प्रति, सूरज के प्रति, आप सबके प्रति। भगवान से मतलबःे समस्त। न राम, न कृष्ण, न बुद्ध, कोई नहीं।

जो समस्त फैलाव है, यह जो विस्तार है जीवन का, इसके बिना हम एक क्षण नहीं हो सकते। हम जो भी हैं, इसी के द्वारा हैं। तो जो भी हमसे हो रहा है, इसी के सहयोग से हो रहा है। अन्यथा नहीं होगा। तो इसके प्रति धन्यवाद।

और धन्यवाद के भाव में जोर किसको, हमने धन्यवाद दिया इस पर नहीं है, उससे कोई मतलब नहीं है। हमने धन्यवाद का भाव रखा, उसका फायदा है। वह कोई है वहां कि नहीं है, यह मूल्यवान नहीं है। यह मूल्यवान नहीं है।

साक्षीभाव दोहराने की बात नहीं है, रखने की बात है। मैं चूंकि समझाता हूं आपको, इसलिए मैं कहता हूं कि यह भाव कि मैं साक्षी हूं। इसमें दो बातें हैं।

यह ठीक सवाल पूछा है। आप अपने मन में दोहराते रहें कि मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं, तो यह तो मंत्र का काम बन जाएगा। यह तो धीरे-धीरे वैसे हो जाएगा, जैसे राम-राम, राम-राम, राम-राम।

आपको यह शब्दों में नहीं दोहराना है कि मैं साक्षी हूं। आपको यह अनुभव करना है कि मैं साक्षी हूं। इन दोनों में फर्क है। जो भी हो रहा है उसके प्रति आपको यह अनुभव करना है कि मैं कौन हूं इसके प्रति? इससे मेरा क्या संबंध है? तो पता चलेगा कि साक्षी का संबंध है। "साक्षी का भाव" का मतलब साक्षी हूं ऐसे शब्द को नहीं दोहराते रहना है। नहीं तो वह तो एक मंत्र से ज्यादा उसका मूल्य नहीं रह जाएगा। मैं साक्षी हूं, यह मेरी अनुभूति गहरी होनी चाहिए। जैसे अब यह आवाज चल रही है। इस आवाज के प्रति मैं क्या हूं? साक्षी हूं। यह भी मैं आपसे कह रहा हूं, इसलिए शब्द बना रहा हूं। आपको भीतर शब्द बनाने की भी जरूरत नहीं है। सिर्फ जानने की जरूरत है कि यह मेरी स्थिति है। यह मेरी सिचुएशन है। साक्षी होना मेरी सिचुएशन है।

खाना आप खा रहे हैं, तो एक सेकेंड झुक कर भीतर देखना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूं? तो आपको पता चलेगाः खाना शरीर खा रहा है, मैं साक्षी हूं। यह साक्षी होना एक्सपीरिएंसिंग, यह अनुभव बनना चाहिए। यह शब्द का दोहराना नहीं, शब्द का रिपीटीशन किसी काम का नहीं है।

वह तो मैं आपको समझा रहा हूं इसलिए कठिनाई होती है, क्योंकि मैं तो शब्द से ही समझाऊंगा। आपसे बात मुझे करनी है तो शब्द उपयोग लाना पड़ेगा। और तब मैं खतरा भी जानता हूं कि कोई आदमी हो सकता है रोज बैठ कर कहता रहे मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं। कहता ही रहे। और दो-चार दफे के बाद यह डेड रूट्ीन हो जाएगी। उसको पता ही नहीं चलेगा क्या कह रहा है। कहता चला जाएगा कि मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं। घड़ी देख कर आधा घंटा बाद उठ आएगा। कोई फायदा नहीं होगा। वह आदमी वहीं का वहीं रहा। और आधा घंटा खराब हुआ। और आधे घंटे में उसने जो स्टुपिड काम किया कि मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं, इससे दिमाग खराब हुआ सो अलग। शब्द नहीं है सवाल, भाव। जो भी मेरे चारों तरफ हो रहा है, उसके प्रति मेरी भाव-दशा साक्षी की है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

पहली तो बात यह है कि चाहे समाज हो, चाहे राज हो, चाहे अर्थ-तंत्र हो। जब हम कहते हैं, वह असह्य हो गया है, तो हम थोड़ी भूल कर जाते हैं। क्योंकि जिस क्षण वह असह्य हो जाएगा उसी क्षण परिवर्तन शुरू हो जाएगा। वह असह्य नहीं हुआ है, पहली तो यह बात जाननी चाहिए।

वह आप कहते हैं कि राजनैतिक गंदगी, लेकिन वह सहनीय है। नहीं तो चल नहीं सकती। असहनीय कुछ भी नहीं चल सकता।

तो मेरी पहली तो कोशिश यह है कि उसे अगर मिटाना है तो उसे असहनीय बनाना चाहिए। असहनीय बनाना चाहिए का मतलब कि लोगों की चेतना इतनी सजग करनी चाहिए कि वह असहनीय हो जाए। वह असहनीय नहीं है। क्योंकि जो भी हो रहा है, वह हम सहन कर रहे हैं, इसलिए हो रहा है। और जब तक हम सहन करते रहेंगे वह होता रहेगा।

सच बात यह है कि हम जिस योग्य आदमी होते हैं उससे बेहतर हुकूमत कभी नहीं होती। हो ही नहीं सकती। हमें लगता है कि गंदगी है उसमें, बहुत बुरा है, लेकिन वह असह्य नहीं है। नहीं तो एक सेकेंड उसे होने की जरूरत नहीं रहेगी। असल में क्रांति आती कैसे है? जब कोई व्यवस्था असह्य हो जाती है तो क्रांति आती है।

हिंदुस्तान में क्रांति आई ही नहीं पांच हजार वर्षों में। क्योंकि यहां कुछ भी असह्य हो ही नहीं पाता है। और असह्य न होने के लिए कुछ मानसिक कारण हैं इस मुल्क में।

और मैं जो बातें कर रहा हूं, चाहता हूं कि वे मानसिक कारण टूट जाएं ताकि यह असह्य हो जाए। यह असह्य होगा भी नहीं ऐसे।

कुछ मानसिक डिवाइस है हिंदुस्तान की, तरकीब है। जैसे हम कार में स्प्रिंग लगाए रहते हैं, उसकी वजह से सड़क के गड्ढों का पता नहीं चलता। गड्ढे तो हैं, लेकिन कार में नीचे स्प्रिंग लगे हुए हैं। जब गड्ढे पर गाड़ी आती है, स्प्रिंग गड्ढे की चोट पी जाता है, ऊपर बैठे मेहमान को पता ही नहीं चलता कि रास्ते पर गड्ढा था। और वह जब तक स्प्रिंग न निकले गाड़ी से तब तक सड़क के गड्ढे का पता गाड़ी में बैठे आदमी को नहीं चलने वाला है।

रेलगाड़ी में बफर लगाए हुए हैं। वह हर दो डिब्बों के बीच में बफर लगा हुआ है। धक्का लग जाए, े तो बफर में इतनी गुंजाइश है कि दो फीट तक का धक्का अगर लगे तो बफर झेल लेता है। डिब्बे के भीतर के यात्री को पता नहीं चलता कि धक्का लगा। जब तक बफर अलग न हों, तब तक बाहर के धक्के का डिब्बे के भीतर पता नहीं चलेगा।

भारत के दिमाग में जो सबसे खतरनाक बात है, इसने बफर और स्प्रिंग लगा रखे हैं तीन-चार हजार साल से। और उनकी वजह से जिंदगी में जो भी असहनीय होता है, वह बफर पी जाते हैं। हमको पता नहीं चलता कि वह असहनीय हो गया है। और वे बफर बड़ी होशियारी के हैं। वे इतनी तरकीब से लगाए गए हैं। और बड़े सुखद रहे हैं वे, क्योंकि हमको पता ही नहीं चलता। झंझट ही नहीं मिलती।

अब जैसे कि हिंदुस्तान में गरीबी। इतनी गरीबी दुनिया में किसी मुल्क में कभी नहीं रही। अगर दुनिया में कहीं भी इतनी गरीबी हो तो आग लग जाएगी। एक सेकेंड नहीं टिक सकती। एक सेकेंड दुनिया का कोई मुल्क इस तरह गरीब होने को राजी नहीं हो सकता।

लेकिन हिंदुस्तान के पास बफर है। और वह बफर यह है कि हिंदुस्तान में पांच हजार साल से साधु-संन्यासी समझा रहा है कि गरीबी तुम्हारे पिछले जन्मों के कर्म का फल है। वह बफर लगा हुआ है। उस बफर के लिए फिर गरीब आदमी कहता है, अब हम क्या कर सकते हैं। सामने जो अमीर दिखाई पड़ता है उसका थोड़े ही हाथ है हमारी गरीबी में। हमारी गरीबी में तो हमारे पिछले जन्म का हाथ है। और पिछले जन्म के साथ अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्या कर सकते उसके साथ। पिछला जन्म तो जा चुका। अब आप कुछ भी नहीं कर सकते। अब आप अगले जन्म के साथ कुछ कर सकते हो, और अगर गड़बड़ की तो वह भी खराब हो जाएगा।

इसलिए शांति से सहो। सहते रहो, ताकि अगले जन्म में गरीबी न मिले, सुखद संपत्ति हमको भी मिल जाए। इसलिए कुछ गड़बड़ मत करो। अब यह बफर है।

हिंदुस्तान में क्रांति नहीं होगी, जब तक बफर न तोड़ दो। इधर कुछ असहनीय होता ही नहीं है!

तो पहली तो बात यह है कि राज्य की जो व्यवस्था है उसकी गंदगी तो बहुत है, सहन करने से बहुत ज्यादा है, लेकिन चित्त देश का सहन करने में बहुत सक्षम है। वह सब सह लेता है।

तो मेरे सामने जो बड़ा सवाल है वह यह है कि बफर कैसे टूट जाएं। तो जो मैं निरंतर बात कर रहा हूं, सब तरफ से, सब कोणों से, वह बफर तोड़ने की कोशिश है कि वह यहां-यहां से टूट जाए। वहां-वहां असह्य हो जाएगा। और अगर हिंदुस्तान के एक छोटे वर्ग को भी असह्य हो जाए तो हिंदुस्तान में क्रांति हो जाएगी।

क्रांति के लिए कुछ बहुत दिक्कत नहीं है, लेकिन असह्य होना जरूरी है। और यह गंदगी कैसे दूर हो? जब हम यह पूछते हैं तो अक्सर हमारे मन में ख्याल होता है कि क्या-क्या किया जाए, जिससे यह गंदगी दूर हो जाए।

मैं नहीं मानता हूं कि गंदगी ऐसे दूर होने वाली है। गंदगी दो तरह की होती हैं। एक गंदगी ऐसी होती है कि आपके शरीर पर धूल पड़ गई और आप गंदे हो गए। इसको भी हम गंदगी कहते हैं। एक आदमी धूल से भर गया, पसीने से भर गया, गंदा हो गया। उसने स्नान कर लिया, गंदगी दूर हो गई। गंदगी बिल्कुल बाहर थी। लेकिन एक आदमी को कैंसर हो गया, यह भी गंदगी है। लेकिन आपके नहाने से दूर नहीं हो जाएगी। इसका तो आपरेशन चाहिए। कुछ काट-पीट चाहिए। कहीं कुछ तोड़ना-फोड़ना पड़ेगा, तभी दूर होगी। तो जो हिंदुस्तान की राजनीति पर जो गंदगी है वह धूल के जैसी गंदगी नहीं है कि ऊपर से छा गई, कि आप नहला दो नेताओं को और सब ठीक हो जाए। वह ऐसी नहीं है। उसकी गांठें भीतर हैं। और पूरे भारत के तंत्र के भीतर फोड़े हैं उसके। और आपरेशन के बिना कोई रास्ता नहीं है। कुछ हाथ-पैर काटे बिना चलेगा नहीं।

तो यह सुधार-वुधार से होने वाला नहीं है कि कोई ऊपरी सुधार हो जाए और कुछ हो जाए। जड़ें बहुत गहरी हैं और इतनी बुनियादी हैं कि हमें पता भी नहीं चलता। हम सोचते भी नहीं कि इतनी बुनियादी जड़ें हो सकती हैं।

एकाध उदाहरण इसके लिए दूं। फिर और बात होगी तो रात कर लेंगे।

जड़ें इतनी गहरी हैं कि हमें दिखाई ही नहीं पड़ता। और जो हम उपाय करते हैं, वे इतने ऊपरी होते हैं कि उनसे जड़ों तक खबर भी नहीं मिलती कि ऊपर कुछ उपाय हो गए हैं।

जैसे कोई आए किसी झाड़ की पत्तियां काट जाए। जड़ों को पता ही नहीं चलता कि पत्तियां कट गई हैं। जड़ें दूसरी पत्तियां भेज देती हैं फौरन। क्योंकि जड़ों का काम पत्तियां भेजना है। जब आप एक पत्ती काटते हैं, जड़ें दो पत्तियां भेज देती हैं। कलम समझती हैं वे, कि कलम हो रही झाड़ की। जड़ों का काम ही यह है कि पत्तियां सूखने न पाएं। अगर पत्तियां मर जाएं तो नई पत्तियां भेज दो।

जब कोई किसी झाड़ की पत्तियां काटता है तो वह कोई झाड़ को नुकसान नहीं पहुंचाता। झाड़ थोड़े दिन में दुगुना घना हो जाता है।

सब सुधारवादी समाज की बीमारी को दुगुना कर जाते हैं। सब रिफॉर्मिस्ट। क्योंकि वे पत्तियां काटते हैं। क्रांतिकारी जड़ें काटने की बात कर रहे हैं। इसको समझना चाहिए, कैसा?

मैं पिछली बार अहमदाबाद था। तो मुझे दो-तीन दिन रोज चिट्ठियां आईं। हरिजनों ने मुझे लिखा, उनके सेक्रेटरी कोई होंगे, उन्होंने लिखा, उनका कोई पत्र निकलता है, उसके संपादक ने लिखाः कि जैसा गांधीजी हरिजनों के घर ठहरते थे, आप क्यों नहीं ठहरते हैं हरिजनों के घर?

तो मैंने उनको कहा कि तुम सब इकट्ठे होकर आ जाओ, तो मैं तुमसे बात करूं। तो वे दस-पच्चीस लोग रात को मेरे पास आ गए। और मुझसे बोले कि जैसा गांधीजी हरिजनों के घर ठहरते थे, आप भी हम हरिजनों के घर क्यों नहीं ठहरते हैं? आप भी हमारे यहां ठहरिए।

तो मैंने उनसे कहाः पहली तो बात यह कि मैं किसी को हरिजन मानता नहीं हूं। किस हिसाब से पता लगाऊं कि कौन हरिजन है और कौन सा हरिजन का घर है। हरिजन के घर में ठहरने के लिए पहले मुझे हरिजन को मान लेना पड़ेगा।

मैं घर में ठहरता हूं। तुम कहो कि हमारे घर में ठहरो, मैं चलने को राजी हूं। लेकिन तुम अगर कहो कि हरिजन के घर में ठहरो, मैं चलने को राजी नहीं, क्योंकि मैं हरिजन को नहीं मानता हूं।

और तुम अजीब मूढ़ हो कि तुम अपनी तरफ से प्रचार करते हो कि हम हरिजन हैं, हमारे घर में आकर ठहरो। तुम अपने घर में ठहरने की बात करो, हरिजन होने की बात क्यों करते हो। एक तरफ तुम चाहते हो हरिजन होना मिट जाए, दूसरी तरफ तुम हरिजन के लिए रिकग्निशन चाहते हो, सम्मान चाहते हो उसके लिए।

जो आदमी कहता है हरिजन को घर में न घुसने देंगे, यह आदमी भी हरिजन को उतना ही मानता है, उसी आदमी के बराबर जो कहता है हम हरिजन के घर में ही ठहरेंगे। इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। दोनों हरिजन को स्वीकृति देते हैं। और जो गहरी जड़ है उसको सींचते हैं। भेद की जो जड़ है उसको सींचते हैं। ऊपर से दिखाई पड़ता है, हरिजनों का नाम था अछूत, उनका हरिजन नाम हो गया। हरिजनों ने समझा कि बहुत बड़ी अच्छी बात हो गई।

बहुत बुरी बात हो गई। अछूत शब्द में चोट है। और कोई आदमी अपने को अछूत कहलाना पसंद नहीं करता। हरिजन में कोई चोट नहीं है। और आदमी अपने को हरिजन कहने में गौरव अनुभव करता है। यह बड़ी खतरनाक बात है।

जैसे किसी बीमारी को हम अच्छा नाम दे दें। कैंसर न कह कर कहें कि यह श्रीदेवी इनका नाम है। तो आदमी कहे कि हमको श्रीदेवी हो गई। तो वह है तो कैंसर ही, इससे क्या फर्क पड़ता है।

अछूत अछूत है। उसको हरिजन जैसा अच्छा शब्द देना बहुत खतरनाक है। क्योंकि हरिजन के अच्छे शब्द के पीछे बीमारी फिर छिप कर खड़ी हो जाएगी। और वह हरिजन भी अकड़ कर कहने लगेगा, मैं कोई साधारण थोड़े ही हूं, मैं हरिजन हूं।

जड़ें नहीं जाती हैं। पत्ते ऊपर-ऊपर से बदलाहट होती है, सब लौट-लौट कर आ जाते हैं। और कई दफा ऐसा भी हो सकता है कि वृक्ष बिल्कुल उलटा हो जाए, लेकिन बीमारी जारी रहे। यानी यह भी हो सकता है कि ब्राह्मण शूद्रों की हालत में पहुंच जाएं और शूद्र ब्राह्मणों की हालत में, लेकिन बीमारी वही कि वही जारी रहे, उसमें कोई फर्क न पड़े।

तो मेरी पूरी चिंता यह है कि कैसे हम इस समाज, इस राज्य, इस व्यवस्था की जड़ों को पकड़ लें, जहां से सारा जाल पैदा होता है। और उन जड़ों को पैदा करने वाले दिमाग में कौन से बीज हैं, उनको कैसे नष्ट कर दें।

अगर बीस साल हिंदुस्तान के कुछ थोड़े से विचारशील लोग ब्योरों की बातों में न जाएं--कि यहां सड़क बनानी है, यहां अस्पताल खोलना है। यह सब ठीक है, इनसे कुछ होने वाला नहीं है। ब्योरे की बातों में न जाएं

और मौलिक रूप से जो सनातन भारत का मस्तिष्क है उसको तोड़ने में लग जाएं, तो बीस साल में भारत में इतना साफ दिमाग पैदा होगा कि आपको क्रांति के लिए कुछ करना नहीं पड़ेगा। एक झटके में क्रांति हो जाएगी। और नहीं तो वह नहीं हो सकती।

और मेरा यह भी मानना है कि अगर मस्तिष्क तैयार न हो, तो क्रांति में हिंसा की जरूरत पड़ती है। और अगर मुल्क का मस्तिष्क तैयार हो तो क्रांति हमेशा अहिंसा से हो जाती है। अहिंसा से होने का और कोई रास्ता ही नहीं है। अगर हम सब राजी हैं कि इस मकान को गिरा देना है तो हिंसा की कोई जरूरत नहीं है।

और अगर हमारे बीच एक आदमी भर कहता है इसको गिरा देना है, और बाकी राजी नहीं है, तो हिंसा होगी, तो काट-पीट करनी पड़ेगी। जो राजी नहीं है उनको मिटाना पड़ेगा। उपद्रव होगा फिर।

अब तक दुनिया में क्रांतियों में जो हिंसा की जरूरत पड़ती है, वह इसीलिए पड़ती है कि थोड़े से लोगों को समझ में आता है, शेष सारे लोगों को कुछ समझ में नहीं आता। फिर हिंसा की जरूरत पड़ जाती है।

अगर ठीक मानसिक हवा बन जाए, तो क्रांति एकदम अहिंसक हो सकती है। और जो क्रांति अहिंसक नहीं है, वह क्रांति अधूरी है। उसका मतलब है कि उसमें जबरदस्ती है। और कुछ लोग अधिक लोगों पर जबरदस्ती कर रहे हैं। और मैं मानता हूं कि कुछ लोग अधिक लोगों पर हित के लिए भी जबरदस्ती करें तो भी अनुचित है।

तो असहनीय सबके लिए बना देना है पहले। और सबके मन में यह साफ कर देना है कि कहां से ये बातें आ रही हैं जिनकी वजह से हम सह लेते हैं। क्रांति तो हो जाएगी, क्रांति में बहुत कठिनाई नहीं है।

दसवां प्रवचन

नये का आमंतत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!

तीन दिनों की चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों ने भेजे हैं। जितने प्रश्नों के उत्तर संभव हो सकेंगे, मैं देने की कोशिश करूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आप नये विचारों की क्रांति की बात कहते हैं, क्या वह भी कभी हो सकता है जो पहले नहीं हुआ है? इस पृथ्वी पर सभी कुछ पुराना है, नया क्या है?

इस संबंध में जो पहली बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह कि इस पृथ्वी पर सभी कुछ नया है, पुराना क्या है? पुराना एक क्षण नहीं बचता, नया प्रतिक्षण जन्म लेता है। पुराने का जो भ्रम पैदा होता है वह इसलिए पैदा होता है कि हम दो के बीच जो अंतर है उसे नहीं देख पाते।

कल सुबह भी सूरज ऊगा था, कल सुबह भी आकाश में बादल छाए थे, कल सुबह भी हवाएं चली थीं। और आज भी सुबह सूरज ऊगा और बादल छाए और हवाएं चलीं। और हम कहते हैं, वही है। लेकिन जरा भी वही नहीं है।

जैसे बादल कल सुबह बने थे, वैसे अब कभी भी इस पृथ्वी पर दुबारा नहीं बनेंगे। और जैसी हवाएं कल संध्या बही थीं, वैसी ही हवाएं आज नहीं बह रही हैं। कल सांझ आप आए थे, सोचते होंगे वही आप आज फिर आ गए हैं तो भूल में हैं। न तो मैं वही हूं और न आप वही हैं। चौबीस घंटे में गंगा का बहुत पानी बह चुका है।

प्रतिपल सब कुछ नया है। पुराने को परमात्मा बरदाश्त ही नहीं करता है। एक क्षण बरदाश्त नहीं करता। जीवन का अर्थ ही यही है। जीवन का अर्थ है: जो नित-नया होता चला जाता है। लेकिन मनुष्य ने ऐसी कोशिश करने की जरूर हिम्मत की है कि पुराने को बचाने की चेष्टा में भी, उस दिशा में भी उसने काम किया है।

परमात्मा तो पुराने को बचाता ही नहीं, लेकिन आदमी जरूर पुराने को बचाने की कोशिश करता है। और इसलिए आदमी का समाज जिंदा समाज नहीं है, एक मरा हुआ समाज है। और जो देश पुराने को बचाने की जितनी कोशिश करता है वह देश उतना ही मरा हुआ देश होता है। यह हमारा देश मरे हुए देशों में से एक है।

हम बहुत गौरव करते हैं इस बात का कि बेबीलोन न रहा, सीरिया न रहा, मिश्र न रहा, रोम न रहा, लेकिन हम हैं। लेकिन अगर कोई गौर से देखेगा तो पाएगा कि वे इसलिए न रहे कि वे बदल गए, नये हो गए। और हम इसलिए हैं क्योंकि हम बदले नहीं। और पुराने रहने की हमने भरसक चेष्टा की है। अगर हम बदले भी हैं, तो परमात्मा की जोर-जबरदस्ती से। अपनी कोशिश तो यही रही कि हम बदल न जाएं। वही बना रहे जो था।

बैलगाड़ी अगर छूट रही है, तो कोई हमारे कारण नहीं। हम तो छाती से पूरी ताकत लगा कर, सारे महात्मा और सारे सज्जन और सब नेता मिल कर बैलगाड़ी को बचाने की कोशिश करते हैं। लेकिन भगवान नहीं मानता और जेट प्लेन पैदा किए चला जाता है। और हम घसिटते चले जा रहे हैं नये की तरफ। नये की तरफ जाना हमारी जैसे मजबूरी है। सारी दुनिया में उलटा है; सारी दुनिया में पुराने के साथ रहना मजबूरी है, हमारे साथ नये की तरफ जाना मजबूरी है। सारी दुनिया में नये को लाने का आमंत्रण है। हम नये को स्वीकार करते हैं

ऐसे जैसे वह पराजय है। इसीलिए पांच हजार वर्ष पुरानी संस्कृति तीन सौ वर्ष, पचास वर्ष पुरानी संस्कृतियों के साथ हाथ जोड़ कर भीख मांगती है, और हमें कोई शर्म भी नहीं मालूम होती।

पांच हजार वर्ष से तो कम से कम हम हैं, ज्यादा ही वर्षों से हैं, लेकिन ज्ञात इतिहास कम से कम पांच हजार वर्षों का है। पांच हजार वर्षों में हम इस योग्य भी न हो सके कि गेहूं पूरा हो सके, कि मकान पूरे हो सकें, कि कपड़ा पूरा हो सके।

अमरीका की कुल उम्र तीन सौ वर्ष है। तीन सौ वर्ष में अमरीका इस योग्य हो गया कि सारी दुनिया के पेट को भरे। और रूस की उम्र तो केवल पचास वर्ष है। पचास वर्ष में रूस गरीब मुल्कों की कतार से हट कर अमीर मुल्कों की आखिरी कतार में खड़ा हो गया। पचास वर्ष पहले जिसके बच्चे भूखे थे, आज उसके बच्चे चांद-तारों पर जाने की योजनाएं बनाने लगे हैं। पचास सालों में क्या हो गया यह? कोई जादू सीख गए हैं वे? जादू नहीं सीख गए हैं, उन्होंने एक राज सीख लिया कि पुराने से चिपटे रहने वाली कौम धीरे-धीरे मरती है, सड़ती है, गलती है।

नये का निमंत्रण, नये को आमंत्रण, नये को बुलावा, नये की चुनौती। और जितने जल्दी हो सके नये को लाओ, पुराने को विदा करो। इस सीक्रेट को, इस राज को वे सीख गए। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे जीवंत हैं। और हम? हम करीब-करीब मरे-मरे, मुर्दा हो गए हैं।

वे मित्र पूछते हैं कि नया क्या कुछ आ सकता है?

एक कहानी मुझे याद आती है। वह कहानी आपने भी सुनी होगी जरूर। सुना होगा जरूर कि चूहों ने एक दफा बैठक की, और विचार किया कि कैसे बचें बिल्ली से? तो किसी समझदार चूहे ने सलाह दी, और समझदार चूहे इसी तरह की सलाहें देते हैं। सलाहें तो बड़ी अच्छी होती हैं, पूरी नहीं हो सकती हैं। यही समझदार चूहों के साथ तकलीफ होती है।

समझदार चूहे ने कहाः घंटी बांध दो बिल्ली के गले में। सबने ताली पीटी और कहाः बिल्कुल उचित है, लेकिन सवाल यह है कि घंटी कौन बांधे?

समझदार चूहे ने कहाः हम तो थियरी बताते हैं, सिद्धांत बताते हैं। एप्लिकेशन तुम खोजो, व्यवहार तुम खोजो। हमारा काम सिद्धांत बनाना है। हमने सिद्धांत बना दिया, अब तुम खोजो। बात इतनी है कि घंटी बांध दो, खतरा नहीं रहेगा। बिल्ली आएगी, घंटी बजेगी, चूहे सावधान हो जाएंगे।

फिर यह बात चूहों के शास्त्र में लिख ली गई। ऐसा हजारों साल पहले की बात है यह। और हर बार जब भी सवाल उठता है, बिल्ली से कैसे बचें? चूहे कहते हैं, अपनी पुरानी किताब में देखो। पुरानी किताब खोलते हैं, उसमें लिखा है, घंटी बांध दो। चूहे कहते हैं, बात तो बिल्कुल सच है, बापदादों से यही सुनी कि घंटी बांध देना चाहिए। लेकिन घंटी कौन बांधेगा? फिर सवाल वहीं अटक जाता है।

अभी फिर ऐसा हुआ। कुछ दिन पहले ही चूहों ने फिर सभा की। और उन्होंने कहाः अब तो बहुत मुसीबत हो गई, वह बिल्ली बहुत सता रही है। फिर वही पुरानी किताब! तो दो नये लड़कों ने कहाः नये लड़के चूहे होंगे, नये चूहे, कालेज में पढ़ते होंगे। उन्होंने कहाः छोड़ो बकवास पुरानी किताब की, बहुत हो गया, वही बात, वही पुरानी किताब, फिर वही सवाल आ जाएगा। फिर भी उन्होंने कहाः बिना शास्त्र देखे हम नहीं जा सकते। नया कुछ दुनिया में कभी हुआ है? जो भी हुआ है, बापदादे लिख गए हैं। और उससे आगे कहीं कुछ हो सकता है? कोई हमारे बापदादे अज्ञानी थे? इतने ज्ञानी थे कि वे सब बातें जानते थे, सर्वज्ञ थे। उन्होंने लिखा हुआ है कि

घंटी बांधो। फिर शास्त्र खोला गया, फिर बात वहीं अटक गई। शास्त्र खोलने वाले हमेशा वहीं अटक जाते हैं, जहां सदा से अटके रहे हैं; आगे बढ़ते नहीं। फिर वही सवाल, घंटी कौन बांधे?

उन चूहों ने कहाः बकवास बंद करो। हम कल घंटी बांध देंगे। नये लड़के थे। बूढ़े चूहों ने कहाः पागल हो गए हो! बिगड़ गए हो! कभी घंटी बंधी है आज तक, ऐसा कभी हुआ है? कभी सुना है कि चूहों ने कभी घंटी बांधी हो बिल्ली के गले में? ऐसा कभी नहीं हुआ है, न कभी हो सकता है।

उन चूहों ने कहाः बातचीत बंद, कल घंटी बंध जाएगी।

और सुबह बड़ा आश्चर्य हुआ कि बिल्ली के गले में घंटी बंध गई। चूहे, बड़े पुराने, बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहाः बड़ी अजीब बात है, घंटी बंधी कैसे?

उन नये लड़कों ने कहाः इसमें कोई खास बात ही नहीं है। उन दोनों नये चूहों का एक दवा की दुकान में आना-जाना था। वे नींद की गोली उठा लाए और जिस घर में बिल्ली दूध पीती थी, उसमें डाल दी। फिर मामला तो हल हो गया। बिल्ली बेहोश हो गई, घंटी चूहों ने बांध दी।

लेकिन पुराने चूहे सदा यही कहते रहे कि कहीं कुछ नया हुआ है? कहीं घंटी बंधी है? अब घंटी चूहों ने बांध दी। आपके गांव में बांधी या नहीं, मुझे पता नहीं। तरह-तरह के गांव हैं। और राजस्थान के गांव तो एकदम पिछड़े हैं। यहां के चूहों ने शायद ही घंटी बांधी हो। और वही सोचते चले जाते हैं, कहीं नया कुछ होना है? कोई विचार की क्रांति कहीं होनी है?

दुनिया में सदा विचार की क्रांति होती रही है, सिर्फ इस देश को छोड़ कर। हम हीं एक अभागे देश हैं, जहां हम सोचते ही नहीं कि नया हो सकता है। और नये की बात उठे, तो फौरन हमारे परवाद होंगे।

चांद पर तो बस्ती बनेगी, रूस के बच्चे चांद पर बस्ती बनाने की बातें सोचते हैं। अमरीका के बच्चे अंतरिक्ष में यात्राएं करने के सपने देखते हैं। और हमारे बच्चे? हमारे बच्चे रामलीला देखते हैं।

रामलीला देखना कुछ बुरा नहीं है, राम बड़े प्यारे हैं, और कभी-कभी उन्हें देखा जाए तो बहुत सुखद है, लेकिन रामलीला ही देखते रहना खतरनाक है। यह वृत्ति बुरी है। न केवल रामलीला देखते हैं, बल्कि राम-राज्य लाने की बातें भी करते हैं।

कुछ ऐसा हमें भ्रम हो गया है कि पीछे सब अच्छा हो चुका है। यह गलत है बात। पीछे सब अच्छा नहीं हो चुका। पीछे जो भी हुआ है उससे अच्छा सदा आगे हो सकता है, क्योंकि हम पीछे से हमेशा ज्यादा अनुभवी होकर बाहर आते हैं, हमेशा ज्यादा अनुभवी होकर बाहर आते हैं। आखिर समय बीतता है, इतिहास बीतता है, तो हम कुछ सीखते हैं कि हम बिल्कुल... सीखने की हममें क्षमता ही नहीं है।

राम-राज्य फिर से नहीं ले आना है। अब तो हम नये राज्य लाएंगे, जिन पर अगर राम भी उतर आएं, तो चौंक कर देखेंगे, यह क्या हो गया? लेकिन हमें यह ख्याल है कि पीछे सब अच्छा हो चुका। यह बिल्कुल गलत ख्याल है। इस गलत ख्याल की वजह से हम अतीत से और पुराने से बंधे रहते हैं और नये को सोच भी नहीं पाते।

इस देश में हम सबकी यह धारणा है कि स्वर्णयुग हो चुका है। वह जो गोल्डन ए.ज है, हो चुकी है। दूसरे मुल्क सोचते हैं कि गोल्डन ए.ज, स्वर्णयुग आने वाला है, आएगा। इससे फर्क पड़ता है। जो सोचते हैं, आने वाला है, वे लाने की कोशिश करते हैं। जो सोचते हैं, हो चुका, वे आंख बंद करके बैठ जाते हैं। वे कहते हैं, जो हो ही चुका, अब आना तो है नहीं, अब तो रोज-रोज पतन होना है। कलियुग, और कलियुग, और कलियुग आएगा। अंधेरा, अंधेरा, फिर प्रलय।

इस मुल्क में जाएं, तो इस मुल्क में जो भी लोगों को समझाता है कि महाप्रलय आ रही है, वह एकदम गुरु हो जाता है। बहुत लोग मिल जाते हैं कि बिल्कुल ठीक है, सच्ची बात है, सब चीजें बिगड़ती जा रही हैं, सब बिगड़ता जा रहा है, सब खराब होता जा रहा है, महाप्रलय आ रही है, सब बुरे दिन आने वाले हैं। और ये बुरे दिन इसलिए नहीं आ रहे हैं कि आने वाले हैं, ये इसलिए आ रहे हैं कि हम अच्छे दिन बनाने की क्षमता नहीं जुटा पाते हैं। और ये इसलिए आ रहे हैं कि सारे मुल्क का चित्त काहिल, कमजोर और इतना डरा हुआ हो गया है कि वह कहता है जो है उसको ही पकड़े रहो, कहीं वह न खो जाए। अब जो हो रहा है, हो रहा है। नया तो कुछ हो नहीं सकता, पुराने मकान में ही रहे आओ। अगर गिरने का डर लगता है, तो राम-राम जपो। उसी में सब तरफ से लकड़ियां लगा कर इंतजाम कर लो सुरक्षा का, लेकिन छोड़ो मत। कहीं पुराना चला गया और नया न बना, तो क्या होगा? डर इतना ज्यादा है। इस डर के भी कुछ कारण हैं। दो-तीन कारण समझ लेने जरूरी हैं।

पहली तो एक यह बात झूठी प्रचारित की गई है कि पहले सब अच्छा था। यह बात बिल्कुल झूठी है। लेकिन इसके पैदा होने की कुछ वजह है। और बड़ी वजह यह है, जैसे आज से हजार साल बाद, दो हजार साल बाद, न कोई मुझे याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा। लेकिन एक आदमी हमारे बीच हुआ, गांधी, उसका नाम याद रहेगा। दो हजार साल बाद लोग उसे याद करेंगे। और तब वे क्या सोचेंगे? वे सोचेंगे, गांधी कितना अदभुत आदमी था, इसके जमाने के लोग कितने अदभुत रहे होंगे? और जमाने के लोग हम हैं। हम तो भूल जाएंगे, हमारा तो कोई इतिहास में हिसाब नहीं होगा। हमारे लिए तो कोई किताब में लिख कर रख नहीं जाएगा कि हम कैसे आदमी थे। असली आदमी हम हैं, और गांधी सिर्फ अपवाद हैं, एक्सेप्शन हैं। वह कोई नियम नहीं है। वह जो अपवाद हैं, वह तो रह जाएंगे और हम जो असली हैं, खो जाएंगे। और उनके नाम से हम याद किए जाएंगे, गांधी का युग!

लोग कहेंगे, जहां गांधी जैसा अच्छा आदमी हुआ, कैसे बढ़िया लोग भी रहे होंगे! कैसी अहिंसा रही होगी! कैसा प्रेम रहा होगा! कहां का प्रेम और कहां की अहिंसा। ठीक यही भूल हमेशा होती रही है। राम, राम हमको याद रह गए हैं और राम के आस-पास जो असली आदमियों की भीड़ थी, उसका तो कुछ ठिकाना नहीं, कोई हिसाब नहीं। वह भीड़ क्या थी?

राम के आधार पर हम सोचते हैं कि राम के जमाने के लोग अच्छे रहे होंगे। बुद्ध के आधार पर सोचते हैं कि बुद्ध के जमाने के लोग अच्छे रहे होंगे। यह बात गलत है। बुद्ध को आधार बना कर मत सोचिए, क्योंकि मेरा कहना यह है कि अगर बुद्ध और महावीर के जमाने के लोग बहुत अच्छे रहे होते, तो बुद्ध और महावीर की याद भी न रह जाती। याद सिर्फ उनकी रहती है जो अपवाद हैं, याद सबकी नहीं रहती। अगर सोच लें, हिंदुस्तान में गांधी जैसे दस हजार आदमी होते, ज्यादा नहीं, तो मोहनदास करमचंद गांधी का कोई पता रखना आसान होता? खो गए होते कहीं। जहां दस हजार गांधी जैसे अच्छे आदमी हों, वहां कौन एक मोहनदास करमचंद गांधी को याद रखे। वह तो महावीर या बुद्ध बिल्कुल अकेले हैं करोड़ों में, अरबों में, इसलिए याद हैं, नहीं तो भूल जाते।

यानी मेरा कहना यह है कि उनकी याददाश्त बताती है कि वे अकेले और न्यून रहे होंगे। और उनकी याददाश्त यह भी बताती है कि जिन लोगों में वे चमक कर दिखाई पड़े होंगे, वे लोग उनसे उलटे रहे होंगे। नहीं तो चमक कर दिखाई नहीं पड़ सकते।

स्कूल में चले जाएं, छोटा सा प्राइमरी स्कूल का शिक्षक भी जो जानता है, वह भी हम नहीं जानते। वह सफेद दीवाल पर नहीं लिखता है सफेद खड़िया से। लिख तो सकता है, लिख जाएगा, लेकिन पढ़ा नहीं जा

सकता। काले बोर्ड पर लिखता है, सफेद खड़िया से लिखता है। सफेद खड़िया काले बोर्ड पर चमक कर दिखाई पड़ती है। ये राम, बुद्ध, कृष्ण, महावीर, ये सब काले ब्लैकबोर्ड पर समाज के चमक कर दिखाई पड़ रहे हैं, ये कभी नहीं दिखाई पड़ सकते थे।

ये जितने महात्मा हैं, अगर हीन-समाज न हो, तो कभी दिखाई नहीं पड़ सकते; हों तो भी दिखाई नहीं पड़ सकते। महात्मा के पैदा होने के लिए हीन-समाज जरूरी है, नहीं तो महात्मा पैदा नहीं हो सकता। हीन-समाज का ब्लैकबोर्ड चाहिए, तब उस पर महात्मा दिखाई पड़ता है, नहीं तो दिखाई नहीं पड़ेगा। हो पैदा, तो भी नहीं दिखाई पड़ेगा।

इसलिए मैं कहता हूं, जिस दिन महान समाज पैदा होगा, उस दिन महान मनुष्य पैदा होने बंद हो जाएंगे। बंद नहीं हो जाएंगे, दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे। जिस दिन महान मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महात्माओं का युग समाप्त हुआ, फिर उनकी कोई जरूरत नहीं है। होंगे पैदा जरूर, लेकिन उनको खोजा भी नहीं जा सकता।

अगर हम गौर से देखें, महावीर और बुद्ध की शिक्षाएं देखें, कनफ्यूशियस और लाओत्सु की शिक्षाएं देखें, मोहम्मद, मूसा, जरथुस्त्र की शिक्षाएं देखें, तो शिक्षाओं में क्या है?

एक बड़े मजे की बात है, महावीर सुबह से सांझ तक लोगों को समझाते हैंः चोरी मत करो, हिंसा मत करो, दूसरे की औरत मत भगाओ, बेईमानी मत करो। यह किन लोगों को समझा रहे हैं? अच्छे लोगों को? दिमाग खराब था जो अच्छे लोगों को ऐसी बातें सिखा रहे थे? और चौबीस घंटे यही राग है, चाहे महावीर का, चाहे बुद्ध का, यही बात चल रही है--चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, हिंसा मत करो, मारो मत, झूठ मत बोलो। किसको समझा रहे हैं?

दो ही रास्ते हैं। या तो ऐसे आदमी रहे हों जिनको यह समझाना जरूरी है, और एक दिन समझाना नहीं, दिन-रात यही समझाना। और या फिर इनका दिमाग खराब रहा हो कि ये फिकर ही न करते हों कि किससे बात कर रहे हैं।

मैंने सुना है, एक चर्च में एक फकीर को निमंत्रण दिया है बोलने के लिए और कहा कि सत्य पर कुछ बोलें। उस फकीर ने कहाः चर्च में और सत्य पर! क्यों बोलूं? सत्य वगैरह पर तो कारागृह में बोलना चाहिए कैदियों के बीच। यह तो चर्च है, मंदिर है, यहां तो गांव के सब अच्छे लोग इकट्ठे हुए हैं, यहां सत्य पर बोलूंगा तो लोग मुझे पागल कहेंगे। नहीं, मुझे क्षमा करो!

लेकिन चर्च के लोग नहीं माने। उन्होंने कहाः नहीं, आप सत्य पर जरूर हमें समझाइए।

उस फकीर ने कहाः बड़ी अजीब बात है। फिर भी आप कहते हैं, तो मैं एक प्रश्न पूछता हूं। तुम सबने बाइबिल पढ़ी है?

उन सारे लोगों ने कहाः हां, हमने बाइबिल पढ़ी है। हाथ उठा दिए।

उसने पूछा, तुमने बाइबिल में ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है?

उन सबने हाथ उठा दिए, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर।

उसने कहाः तब ठीक है, मुझे सत्य पर बोलना चाहिए। और मैं तुम्हें बता दूं कि ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय बाइबिल में है ही नहीं। और आप सबने पढ़ा है! अब ठीक है, अब मैं समझ गया कि किस तरह के लोग यहां चर्च में इकट्ठे हैं।

फकीर नासमझ होगा। चर्च में हमेशा इसी तरह के लोग इकट्ठे होते हैं। धार्मिक स्थानों में अधार्मिकों के सिवाय कोई इकट्ठा नहीं होता है। तीर्थस्थानों में पापियों के जमघट के सिवाय किसी का जमघट नहीं होता है। प्रार्थना और पूजा सिवाय बेईमानों के और कोई भी नहीं करता है। वह जो हमारा दिमाग है, वह उलटा है। वह जो पाप कर लेता है, वह कहता है, पूजा करो, क्योंकि पूजा करके पाप को मिटाना है। वह जो यहां गड्ढा करता है, वहां ढेर उठाता है कि इंतजाम करना जरूरी है।

उस फकीर ने कहाः ठीक है अब, लेकिन मुझे बड़ी हैरानी है कि एक आदमी ने हाथ क्यों नहीं उठाया? यह सच्चा बोलने वाला चर्च में कहां से आ गया? उसने कहाः मेरे भाई, धन्यवाद तुम्हारा कि तुम यहां आए हो। वह सामने ही बैठा था, बूढ़ा आदमी था। उसने कहाः आपने हाथ क्यों नहीं उठाया?

उस आदमी ने कहा कि माफ करिए, मुझे जरा कम सुनाई पड़ता है, क्या आपने पूछा, उनहत्तरवां अध्याय ल्यूक का? रोज पाठ करता हूं। लेकिन मैं समझ नहीं सका, तो मैंने कहा, बिना समझे हाथ उठाना ठीक नहीं।

दुनिया के जिन महापुरुषों के आधार पर हम उनके जमानों को बहुत बड़ा मानते हैं, वे उन लोगों को क्या समझाते थे? लोग क्या समझते थे? उनकी शिक्षाएं गवाह हैं इस बात की कि लोग बहुत बेहतर नहीं थे। लेकिन यह भ्रम चलता है कि लोग बहुत बेहतर थे। और यह भ्रम न मिट जाए, तो हम नये समाज और नये आदमी को पैदा नहीं कर सकते।

मैं आपसे कहता हूं, नया निरंतर पैदा होता है, अगर हम बाधा न डालें तो नया पैदा होगा ही। लेकिन हम बाधा डालते हैं। हम रुकावट डालते हैं। हम कोशिश करते हैं पुराने को बचाने की। और यह पुराने को बचाने की जो कोशिश है, यह धीरे-धीरे ऐसी रुग्ण, सड़ी हुई व्यवस्था बना देती है कि उसके भीतर जीना भी मुश्किल हो जाता है, मरना भी मुश्किल हो जाता है। ठीक ऐसी हालत इस देश की हो गई है।

नया ज्ञान चाहिए। नये जीवन के नियम चाहिए। रोज नये चाहिए, क्योंकि कोई भी पुराना नियम थोड़े दिन के बाद खतरनाक हो जाता है।

वैसे जैसे कि छोटे बच्चे को हम पायजामा पहनाते हैं, फिर लड़का तो बड़ा होता जाता है, और हम कहते हैं, पायजामा वही पहनो। हम वे लोग हैं जो एक दफा तय कर लिया कर लिया। अब उसकी जान निकलती है, या तो पायजामा बदले और नहीं तो वह बड़ा होता जाता है। और पायजामा बड़ा होता नहीं। कोई नियम बड़ा नहीं होता। क्योंकि नियम तो जड़ हैं और आदमी जिंदा है। आदमी बढ़ता है और नियम जड़ हैं, वे कसे रह जाते हैं। अब वह पायजामा छोटा पड़ गया और आदमी बड़ा होता जा रहा है। अब वह कहता है कि बड़ी मुश्किल में डाल दिए हैं, यह पायजामा हमारी जान लिए ले रहा है।

अब दो ही रास्ते हैं उसके पास, या तो वह नंगा खड़ा हो जाए और या फिर पायजामा बदले। पायजामा बदलने नहीं देते, तो फिर वह नंगा खड़ा होने की कोशिश करता है। और यह हिंदुस्तान के समाज में जो इतना नंगापन, इतना ओछापन, इतनी मीननेस, और इतना काइयांपन पैदा हुआ, उसका कारण है कि पुराने सब नियम छोटे पड़ गए। नया नियम हम बनाते नहीं और पुराना नियम बदलना नहीं चाहते। तो आदमी बिना नियम के खड़े होने की कोशिश करता है। वह कहता है कम से कम जिंदा तो रहने दो। हम जिंदा तो रहेंगे, आपका नियम अपने पास रखो आप। और या फिर यह होता है कि आदमी पाखंडी हो जाता है, हिपोक्रेट हो जाता है। ऊपर से दिखाता है कि नियम बिल्कुल ठीक है, हम बिल्कुल मानते हैं, और भीतर से नियम से उलटा चलता है।

इस देश में हर आदमी दोहरा हो गया है। एक-एक आदमी के भीतर दो-दो आदमी हैं। एक वह आदमी है जो बाहर दिखाने के काम के लिए तैयार रखा जाता है। जब जरूरत हुई, उस आदमी को ओढ़ लिया, निकल पड़े। घर आए, आदमी निकाल कर एक तरफ रखा, असली आदमी काम करने लगा। असली आदमी काम करता है, नकली आदमी ओढ़ने के मतलब आता है। हम सब। इस पूरे देश की व्यवस्था ने ऐसी हालत खराब कर दी है, क्योंकि नियम ऐसे जड़ हो गए हैं कि वे हिलने नहीं देते, और हिलना पड़ेगा।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, नया चिंतन, नये समाज, नई क्रांति, इन सब दिशाओं में सोचने के लिए मन के द्वार खुले रखिए। ऐसा मत सोचिए कि सब पुराना है, इसलिए नये की कोई जरूरत नहीं है। कुछ भी पुराना नहीं है, रोज नये की जरूरत है।

एक मित्र ने पूछा है इसी से संबंधित, इसलिए इसके बाद इसे ले लें।

उन्होंने पूछा है कि क्या एक-एक आदमी को स्वयं ही सत्य की खोज करनी पड़ेगी? क्या जो खोजे गए सत्य हैं वे हमारे किसी काम के नहीं हैं?

यह मामला कुछ थोड़ा सा नाजुक है। नाजुक इसलिए कि सत्य कोई ऐसी चीज ही नहीं है जो कोई और आपको दे दे। सत्य अगर कोई ऐसी चीज होती कि बाजार में एक दुकान खुली होती और वहां सत्य बिकता होता, हालांकि दुकानें खुली हैं और वहां सत्य बिक रहे हैं। हिंदुओं की दुकानें हैं, मुसलमानों की, ईसाइयों की, इन सबकी दुकानें खुली हैं। और कुछ नई-नई दुकानें भी खुली हैं। वे सब दुकानों में वे कहते हैं, सत्य यहां बिकता है।

लेकिन सत्य न बिक सकता है, न किसी दूसरे से मिल सकता है। सत्य को पाने के लिए जो साधना है, उस साधना से बिना गुजरे सत्य का कोई अनुभव नहीं है। उससे गुजर कर ही वह मिलता है।

एक फकीर के पास एक आदमी गया और उस फकीर से उसने कहा कि मैं दुनिया में सबसे सुखी आदमी से मिलना चाहता हूं। मैं बहुत परेशान हो गया हूं। मुझे ऐसा लगता है मुझसे ज्यादा दुखी कोई भी नहीं है। फिर मुझे यह ख्याल आता है, हो सकता है, सभी दुखी हों। मैं उस आदमी को खोजना चाहता हूं जो सबसे ज्यादा सुखी है। उस फकीर ने कहाः तुम जाओ, इस-इस जगह खोजो, ऐसे-ऐसे खोजते हुए उस पहाड़ पर जाना, उस चोटी पर, वहां तुम्हें वह आदमी मिल जाएगा।

वह चोटी बड़ी दूर थी, वह पहाड़ बड़ा दूर था। और जो रास्ता उसने बताया था, वह बड़ा लंबा था। लेकिन वह आदमी खोजना चाहता था। वह खोजने गया। वह न मालूम कितने लोगों से मिला और उनसे उसने पूछा। उन सबने कहा कि हम सुखी हैं, लेकिन हमसे भी ज्यादा सुखी एक आदमी है, तुम वहां जाओ। वह वहां गया। उधर भी यही उत्तर मिला, हम सुखी हैं, हमसे भी ज्यादा सुखी एक आदमी है।

वह बारह वर्ष तक परेशान हो गया। वह यह भूल ही गया कि मेरा भी कोई सुख है और मेरा भी कोई दुख है। वह इसी झंझट में पड़ गया कि कौन सबसे ज्यादा सुखी है? बारह साल बाद वह उस पहाड़ की चोटी पर पहुंचा, जहां वह बूढ़ा आदमी बैठा था, जिसने कहा, हां, मैं सबसे ज्यादा सुखी आदमी हूं। क्या चाहते हो तुम? उस आदमी ने कहाः बात ही खत्म हो गई। मैं यह चाहने निकला था कि सुख कैसे मिले, लेकिन बारह वर्ष तक दूसरों के सुख-दुख को सोचते-सोचते मैं तो यह भूल ही गया कि मेरा भी कोई दुख है। और आज मैं अनुभव करता हूं, जब दुख ही नहीं है, तो सुख का क्या सवाल है?

उस बूढ़े आदमी को उसने गौर से देखा, गौर से देखा तो शक्ल पहचानी हुई मालूम पड़ी। कहा, जरा आप अपनी पगड़ी दूर करिए, आंखें ढंकी हैं, मैं आपको ठीक से देख लूं। वह बूढ़ा हंसने लगा, पगड़ी दूर की, यह वही फकीर था जो बारह साल पहले उसे मिला था। उसने कहाः अरे, तो इतने दिन भटकाने की क्या जरूरत थी? आप उसी दिन कह देते कि मैं ही सबसे ज्यादा सुखी आदमी हूं।

उस फकीर ने कहाः उस दिन तुम्हें समझ में नहीं आता। यह बारह वर्ष की यात्रा जरूरी थी। तभी तुम समझ सकते थे जो मैं कह रहा हूं।

मैं तुमसे पूछता हूं, क्या तुम उस दिन समझ सकते थे?

उस आदमी ने कहाः ठीक कहते हैं आप, उस दिन मैं नहीं समझ सकता था।

जिन्होंने जाना है, उन्होंने कह दिया है, लेकिन आप उसे नहीं समझ सकते, जब तक आप भी एक लंबी यात्रा की खोज से न गुजर जाएं। गुजर जाएंगे, तो समझ जाएंगे। वह गुजरना अनिवार्य तैयारी है, वह प्रिपरेशन है उस चीज को समझने की जो लिखी पड़ी है। लेकिन उस लिखी से कोई मतलब नहीं है। उसके लिखे होने से कोई मतलब नहीं है। जब तक आप इस प्रक्रिया से न गुजर जाएं कि आपका चित्त वहां पहुंच जाए जहां चीजें साफ हो जाती हैं, तब तक आपको कहीं से कुछ दिखाई नहीं पड़ सकता। और मजे की बात यह है कि उस दिन तो आपको ही दिखाई पड़ जाती हैं। शास्त्र के अंदर देखिए या न देखिए, कोई अर्थ नहीं है, आप खुद ही शास्त्र बन जाते हैं।

सत्य कोई बात ऐसी नहीं है कि कोई और आपको दे दे। आपको गुजरना पड़ेगा। गुजरना पड़ेगा। लंबी यात्रा है, खोज है। वह खोज आपको ही रूपांतरित करती है और कुछ नहीं करती। सत्य तो अपनी जगह है। वह अभी भी वहीं है। वह अभी भी आपके पड़ोस में खड़ा है, लेकिन आपकी देखने की पात्रता नहीं है।

वह पात्रता जिस दिन पैदा हो जाएगी, आप पाएंगे बड़ी मुश्किल हो गई, कहां खोजते-फिरते थे, यह सब जगह मौजूद था। जिसे हम खोज रहे थे वह तो यह रहा। हम व्यर्थ ही परेशान हुए। लेकिन व्यर्थ ही कोई कभी परेशान नहीं होता है। वह परेशानी भी तैयारी का अनिवार्य हिस्सा है। इसलिए यह मत सोचिए कि किसी किताब में पढ़ कर हम सीख लेंगे और काम चल जाएगा। किताब में पढ़ कर सिर्फ उत्तर मिलेंगे। प्रश्न का उत्तर तैयार आप कर लेंगे, लेकिन उत्तर बासा, उधार रहेगा, आपका नहीं है। उसकी कोई जड़ आपके भीतर नहीं है। वह ऐसा फूल है जो आप खरीद लाए हैं बाजार से। वह फूल आपके प्राणों से नहीं आया है।

मैंने सुना है, एक गांव में सम्राट आने वाला था। और उस गांव के जो खास-खास लोग थे, उन सबको सम्राट के सामने प्रस्तुत किया जाने को था, सबसे सम्राट मिलेगा। गांव में एक बूढ़ा संन्यासी भी है। गांव के लोगों ने कहाः हम अपने बूढ़े संन्यासी को सबसे पहले खड़ा करेंगे। वह हमारा सबसे ज्यादा आदृत आदमी है। लेकिन राज्य के अधिकारियों ने कहाः संन्यासी कुछ गड़बड़ आदमी है, वह पता नहीं राजा से क्या कह दे, ठीक से व्यवहार न करे, शिष्टाचार न करे, कुछ से कुछ हो जाए, मुसीबत हो जाएगी। तो अगर संन्यासी को खड़ा करना है, तो हम उसे पहले से ट्रेनिंग देंगे। उसे हम तैयार करेंगे कि उसे इस-इस तरह की बात करनी है, तो ही हम ले जा सकते हैं।

गांव के लोगों ने कहाः ठीक है, संन्यासी सीधा आदमी है। आप सिखा सकते हैं।

उन्होंने कहा कि देखो, राजा आएगा, वह तुमसे कुछ पूछेगा। वह पूछेगा, आपकी उम्र कितनी है? तो इस तरह की बातें मत करना कि उम्र यानी क्या, आत्मा तो अमर है, उसकी कोई उम्र नहीं होती। इस तरह की बातें मत करना। नहीं तो राजा बहुत हैरान होगा। तुम तो सीधा बता देना कि मेरी साठ साल की उम्र है।

उसने कहाः जैसी मर्जी। पक्का रहा, साठ साल कह दूंगा और ज्यादा मुझे तो नहीं कुछ करना?

कुछ भी नहीं करना, तुम पक्का रखो कि जब वह पूछे, तुम्हारी उम्र? कहना, साठ साल। वह शायद पूछे कि तुम कितने दिन से साधना कर रहे हो? तो ऐसा मत कहना कि अनंत जन्मों से चल रही है, यह तो कभी से चल रही है, अनादि, अनंत। यह इससे कोई मतलब नहीं है। इस जन्म की बात है। तीस साल से साधना कर रहे हैं, ऐसा कह देना। उसे जो सिखा दिया, उसने कहाः जैसी मर्जी, हम तैयार हो गए हैं।

राजा आया, सारे लोग गए। वह संन्यासी भी गया। बड़ी गड़बड़ हो गई! राजा को पहले पूछना चाहिए था कि आपकी उम्र कितनी है? उसने पूछ लिया कि आप साधना कितने दिन से कर रहे हैं?

उस फकीर ने कहाः बड़ी मुश्किल हो गई। उसने कहाः साठ साल से। क्योंकि उत्तर तो तैयार था।

राजा ने कहाः साठ साल से! आपकी उम्र ऐसे कितनी है?

उसने कहाः तीस साल। उत्तर तो तैयार था। अधिकारी तो घबड़ाए कि हो गई गलती।

और राजा ने कहाः पागल हो! तुम पागल हो कि मैं?

उस फकीर ने कहाः दोनों।

राजा ने कहाः मतलब?

उसने कहाः मतलब यह कि तुम गलत सवाल पूछते, हम गलत जवाब देते हैं। और जवाब हमें सिखाया हुआ है। अगर हमारा हो तो हम ठीक करके भी दे दें। हम मुश्किल में पड़ गए हैं। पागल तुम हो पहले, फिर नंबर दो पागल हम हैं कि हम आए यहां और जवाब हमने सीखा। और तुम गलत सवाल पूछ रहे हो।

हम जितने लोग गीता, कुरान, बाइबिल से सीख कर बैठ जाते हैं। जिंदगी जब सवाल पूछेगी आपके बंधे हुए जवाब होंगे, जो किताब से आए, उनका कोई तालमेल होने वाला नहीं है। कहीं कोई तालमेल नहीं होगा। जिंदगी कुछ पूछेगी, आप कुछ कहोगे। क्योंकि आपके भीतर से जो जवाब नहीं आया, वह कभी सुसंगत नहीं हो सकता। वह हमेशा असंगत होगा, एब्सर्ड होगा।

और जिस देश में किताब पढ़ कर ज्ञानी बहुत हो जाते हैं, उस देश में जवाब तो बहुत चलते हैं, लेकिन जवाब एक नहीं होता। हर आदमी जवाब देगा। हर आदमी को गीता कंठस्थ है, रामायण मालूम है, चौपाइयां याद हैं। हद्द मूढ़ता हो गई। हर आदमी के पास जवाब बंधा हुआ है। सवाल पूछिए, जवाब रेडीमेड, जवाब पहले से तैयार है। रास्ता खोज रहा है जवाब कि कोई सवाल पूछे और जवाब निकले। यह जो जवाब की तैयारी है, शास्त्र सिर्फ इतना ही करवा सकते हैं। खोज तो खुद करनी पड़ेगी। हां, जिस दिन खोज हो जाती है, जिस दिन अपनी प्रतीति होती है, उस दिन सब शास्त्र सत्य हो जाते हैं। शास्त्रों को पढ़ कर कोई सत्य को नहीं जानता, सत्य को जान कर कोई शास्त्रों को पढ़ सकता है।

मैं जो कहता हूं, आपको निजी तौर से गुजरना ही पड़ेगा, तो कुछ अनुभव हो सकता है। और अनुभव ही सत्य है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप जो कह रहे हैं वह आपका अनुभव है कि सत्य है?

शायद उनका ख्याल है कि अनुभव और सत्य दो चीजें हैं। अनुभव यानी सत्य। लेकिन कौन सा अनुभव सत्य है? असत्य अनुभव भी तो होते हैं। एक आदमी रास्ते पर जा रहा है और एक रस्सी पड़ी है और सांप का अनुभव हो जाता है, वह भाग खड़ा होता है। वह लौट कर कहता है, सांप था, मैंने अनुभव किया। लेकिन सांप

तो वहां था नहीं, रस्सी पड़ी थी। असत्य अनुभव भी होते हैं। शायद इसीलिए उन्होंने पूछा कि आप जो कह रहे हैं वह अनुभव है कि सत्य है। असत्य अनुभव भी होते हैं, लेकिन कब तक? और सत्य कौन सा अनुभव और सत्य पर्यायवाची हो जाते हैं। जब तक मैं की प्रतीति चलती है, तब तक अनुभव का कोई भरोसा नहीं कि वह सत्य है कि झूठ है। सच तो यह है कि जब तक भीतर मैं है, तब तक कोई अनुभव सत्य नहीं हो सकता है। मैं सभी अनुभवों को असत्य कर देता है। लेकिन जैसे ही मैं चला गया, मैं नहीं है, सिर्फ अनुभव हुआ। आप ऐसा नहीं कहते कि मैंने अनुभव किया, आप कहते हैं, मैं नहीं था, तब अनुभव हुआ। फिर असत्य नहीं होता, फिर असत्य करने वाली चीज ही चली गई।

जैसे हम एक लकड़ी पानी में डालें, पानी में डालते से ही लकड़ी तिरछी हो जाती है। लकड़ी तिरछी नहीं होती, लेकिन लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ने लगती है। वह जो पानी का मीडियम है, वह लकड़ी को तिरछा कर देता है। लकड़ी तिरछी फिर भी नहीं होती, लकड़ी बाहर निकालिए, लकड़ी सीधी है। फिर पानी में डालिए, लकड़ी फिर तिरछी हो गई। वह पानी का जो माध्यम है, वह लकड़ी को तिरछी करता है। अहंकार का जो माध्यम है, ईगो का जो माध्यम है, वह सत्य को असत्य करता है।

तो जब तक अहंकार के द्वारा कोई देख रहा है जगत को, तब तक उसके अनुभव असत्य के अनुभव होंगे। यानी असत्य के अनुभव का अर्थ हुआः अहंकार के द्वारा देखी गई वस्तु। और सत्य के अनुभव का अर्थ हुआः निर-अहंकार दशा में जाना गया, जहां कोई मैं नहीं है वहां जाना गया।

इसलिए भूल कर भी कभी आप यह मत सोचना कि मैं सत्य को जान लूंगा। मैं कभी सत्य को नहीं जानता है। जब सत्य जाना जाता है तब "मैं" होता ही नहीं। और जब तक "मैं" होता है तब तक सत्य का कोई अनुभव नहीं होता। और हम सब "मैं" से भरे हुए हैं। जीवन भर "मैं" को ही मजबूत करते हैं। और मैं के ही अनुभवों का आधार लेकर सब अनुभव इकट्ठे करते हैं। जब तक मैं का आधार है, तब तक सब अनुभव झूठे होंगे, कोई अनुभव सत्य नहीं हो सकता।

इसलिए अगर ठीक से समझें, तो मैं के द्वारा देखा गया परमात्मा ही माया है। मैं के द्वारा देखा गया परमात्मा ही जगत है। मैं के द्वारा देखा गया ही वह है जो नहीं है। और जिस दिन मैं समाप्त हो जाता है, उस दिन जो देखा जाता है, उस दिन जो प्रतीति होती है, वह प्रतीति ब्रह्म है, सत्य है, कोई और नाम दें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

एक और मित्र ने पूछा हैः क्या है लक्ष्य जीवन का? क्या मुक्ति ही लक्ष्य है? क्या मोक्ष ही लक्ष्य है?

नहीं, जीवन का लक्ष्य न मुक्ति है, न मोक्ष है। जीवन का लक्ष्य तो स्वयं जीवन की पूर्ण अनुभूति है। और जिस दिन जीवन की पूर्ण अनुभूति होती है, उस क्षण मुक्ति हो जाती है, उस क्षण मोक्ष हो जाता है। वह बाई-प्रॉडक्ट है। वह जीवन का लक्ष्य नहीं है। जैसे एक आदमी गेहूं बोता है, तो भूसा पैदा करना उसका लक्ष्य नहीं है। गेहूं बोता है, गेहूं पैदा होते हैं, भूसा साथ में पैदा हो जाता है, भूसा बाई-प्रॉडक्ट है। वह सिर्फ साथ में पैदा हो जाता है।

जीवन की परिपूर्ण अनुभूति जीवन का लक्ष्य है। लेकिन परिपूर्ण अनुभूति पर बंधन गिर जाते हैं और मुक्ति फलित हो जाती है। मुक्ति बाई-प्रॉडक्ट है, मुक्ति भूसे की तरह है।

लेकिन हजारों लोग भूसे को मूल बना रहे हैं और गेहूं को बाई-प्रॉडक्ट बना रहे हैं, तो दिक्कत में पड़ गए हैं। वह जाकर खेत में भूसे को बो देते हैं। न उससे भूसा पैदा होता है, न गेहूं पैदा होते हैं, बल्कि जो भूसा हाथ में था वह भी सड़ जाता है। और तब वे चिढ़ कर कहते हैं कि यह धर्म-वर्म कुछ भी नहीं है, बेकार की मुसीबत है। इससे कुछ होता नहीं है।

हजारों साल से, सैकड़ों साल से मोक्ष को लक्ष्य बनाया, उससे गड़बड़ हो गई है। मोक्ष लक्ष्य नहीं है, जीवन की परिपूर्णता लक्ष्य है। जीवन को उसके पूरे आनंद में, पूरे अर्थों में जानना लक्ष्य है। और जब जीवन अपने पूरे आनंद में नृत्य करता है, तो सारे बंधन गिर जाते हैं। जब जीवन अपने पूरे अर्थों में प्रकट होता है, तो सब बाधाएं गिर जाती हैं। जब जीवन अपने पूरे रूप में संयुक्त होता है समग्र से, तो मुक्त हो जाता है। अधूरा जीवन बंधन है, पूर्ण जीवन मुक्ति है। मुक्ति लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य सदा जीवन है। लक्ष्य सदा जीवन है। अगर मुक्ति को लक्ष्य बनाया, तो बहुत खतरे होते हैं, क्योंकि अलग ही दिशा चली जाती है।

जो आदमी कहता है, मुक्ति जीवन का लक्ष्य है, वह जीवन को छोड़ने लगता है। वह कहता है, जीवन को छोड़ो, हमारा लक्ष्य तो मुक्ति है। तो हम तो जीवन से हटेंगे, हम तो भागेंगे, हम तो पलायन करेंगे, हम जीवन को मानते नहीं। हम तो अपने को गलाएंगे, नष्ट करेंगे। हम तो मरने में मानते हैं। मोक्ष वाला आदमी मरने में मानता है, मोक्ष वाला आदमी सुसाइडल होता है। वह कहता है, हम आत्महत्या करेंगे। कुछ जल्दी करने वाले हिम्मतवर होते हैं, कुछ कमजोर धीरे-धीरे करते हैं। कोई कहता है, एक-एक चीज को छोड़ कर हम मरेंगे। हम ऐसे जीएंगे, जैसे मरा हुआ आदमी जीता है। इसी को हम संन्यासी कहते हैं।

इस संन्यासी ने बहुत नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि इसने जीवन की सब जड़ों को विषाक्त कर दिया है। इसकी जीवन की निंदा ने जीवन के आनंद को छीन लिया है। इसके जीवन के विरोध ने, जो लोग जीवन में खड़े हैं, उनको भी पापी करार दे दिया, उनको भी कंडेम्ड कर दिया। वे भी वहां ऐसे खड़े हैं, जैसे अपराधी हों।

जीवन को जीना एक अपराध हो गया है, हंसना एक अपराध हो गया, खुश होना अपराध हो गया, नाचना अपराध हो गया, सब अपराध हो गया! उदास, लंबे चेहरे मात्र एक होने के सबूत रह गए हैं।

भागो, जिंदगी छोड़ो। और जो आदमी जिंदगी से जितना भाग जाए, सिकुड़ जाए एक कोने में, एक गुफा में, उसको कहो कि यह उतना बड़ा महात्मा है, यह आदमी मुक्ति की तरफ जा रहा है? मुक्ति की तरफ यह नहीं जा रहा है, यह सिर्फ मरने की तरफ जा रहा है। यह सुसाइडल है, यह कब्र खोज रहा है।

मुक्ति की तरफ तो वह जाता है, जो और जीवन की तरफ जाता है। जो कहता है, सारे जीवन का आलिंगन है। जो किरणों के जीवन को पीता है, जो चांद-तारों के जीवन के साथ नाचता है, जो दूसरों की आंखों के जीवन के रस को लेता है, जो फूल-पत्ती सब चारों तरफ जो जीवन है, उसके साथ आह्लादित है, जो उसके साथ रोएं-रोएं को एक कर लेता है, जिसकी श्वास-श्वास सारे जीवन से एक हो जाती है, जो जीवन के साथ उठता है, बैठता है, सोता है, जागता है, नाचता है, गीत गाता है, जो जीवन ही हो जाता है, वैसा व्यक्ति मुक्ति को उपलब्ध होता है, क्योंकि फिर बांधेगा कौन? सारा ही एक हो गया जीवन, तो बांधेगा कौन? और ऐसा व्यक्ति जीवन-मुक्त, ऐसा व्यक्ति जीते-जी मोक्ष बना लेता है।

वह जो भागने वाला मोक्ष है, वह हमेशा मरने के बाद होता है। जिंदा आदमी का कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसके लिए पूरा मरना जरूरी पड़ेगा। और जिंदा आदमी कुछ तो जिंदा होगा, कितना ही मर जाए, कुछ तो जिंदा होगा, श्वास तो लेगा, आंख तो खोलेगा। वह जो कुछ जिंदगी रह गई है, वह भी बाधा है। मरने के बाद

ही मोक्ष हो सकता है। और जो मोक्ष मरने के बाद होता है, वह दो कौड़ी का है। जो मोक्ष जीते-जी जीवन की पूरी प्रफुल्लता में होता हो, वही शाश्वत है, वही अर्थपूर्ण है।

तो मेरी दृष्टि में, अगर परमात्मा ऐसे मरने वाले मोक्ष का पक्षपाती होता, तो जीवन के होने की कोई जरूरत न रही। परमात्मा के विरोध में जीवन चल रहा है। अगर परमात्मा इसका विरोधी है और चाहता है कि सब मुक्त हो जाएं, तो एक बारगी निपटारा करे, झंझट खतम करे। लेकिन परमात्मा तो जीवन का पक्षपाती मालूम पड़ता है। परमात्मा तो, तुम कितना ही जीवन को मिटाओ, नई कोंपलें फोड़ देता है। तुम कितने ही एटम गिराओ, नया जीवन निकाल लेता है। तुम कितनी ही मुश्किल करो, परमात्मा जीवन को पैदा किए ही चला जाता है। परमात्मा तो जीवन का बड़ा प्रेमी है।

लेकिन महात्मा जीवन के बड़े दुश्मन हैं। इसलिए महात्मा अक्सर परमात्मा के दुश्मन होते हैं। और दुनिया महात्माओं के प्रभाव में है, परमात्मा से दुनिया का कोई संबंध ही नहीं है। इसलिए धर्म जो है वह धीरे-धीरे सुसाइडल, लाइफ निगेटिव, जीवन-विरोधी होता गया। और धर्म होना चाहिए लाइफ अफरमेटिव, होना चाहिए जीवन को स्वीकार करने वाला, जीवन के सबको स्वीकार करने वाला। ऐसा धर्म, ऐसे धर्म की दृष्टि फिर मरने के बाद होने वाले मोक्ष पर नहीं होगी। वह कहेगा, अभी और यहां! इसी वक्त क्यों नहीं हो सकती मोक्ष?

मैं जो जोर दे रहा हूं कि जीवन का लक्ष्य जीवन ही है! और ध्यान रहे, जो भी श्रेष्ठतम है जीवन की अनुभूतियां, उनका लक्ष्य वही होते हैं।

जैसे कोई किसी को प्रेम करता हो, पूछें, प्रेम का लक्ष्य क्या है? अगर आदमी बता दे कि प्रेम का लक्ष्य यह है, तो प्रेम दो कौड़ी का हो जाएगा। क्योंकि प्रेम तब साधन बन जाएगा और साध्य कोई और हो जाएगा।

लेकिन प्रेमी जानता है, वह कहेगा, प्रेम का लक्ष्य? नहीं, प्रेम का लक्ष्य कुछ भी नहीं है। प्रेम ही प्रेम का लक्ष्य है। मैं प्रेम करता हूं, बस पर्याप्त है, इससे ज्यादा नहीं।

किसी आदमी से बोलो कि सत्य बोलने का लक्ष्य क्या है? और वह आदमी कहे कि गांव में इज्जत बढ़ाना, रिस्पेक्टिबिलिटी। तो वह आदमी, सत्य बोलने से उसका कोई संबंध ही नहीं बेचारे का। उसका तो गांव में इज्जत बढ़ाने से संबंध है। और गांव अगर चोरों का हो, तो वह झूठ भी बोल सकता है। क्योंकि वहां झूठ बोलने से इज्जत बढ़ती है। सवाल उसका दूसरा ही है। उसे सत्य से कोई मतलब नहीं है। इज्जत से मतलब है।

एक आदमी कहता है, सत्य इसलिए बोलता हूं कि मुझे मर कर स्वर्ग जाना है। अगर उसे पता चल जाए कि सब राजनीतिज्ञ मर कर स्वर्ग में प्रवेश करते चले जा रहे हैं, फिर वह कहेगा, फिर फिजूल की मेहनत करने की जरूरत नहीं, जब राजनीतिज्ञ तक स्वर्गीय हो जाते हैं। जरूर वहां भी रिश्वत चलती होगी। तो हम भी कुछ रिश्वत देकर अंदर निकल जाएंगे। काहे के लिए परेशान होते हैं।

राजनीतिज्ञ तो बिना रिश्वत के स्वर्ग नहीं जा सकता, हालांकि सब मर कर स्वर्गीय हो जाते हैं। असल में मर कर कोई स्वर्ग के सिवाय कहीं जाते ही नहीं। जो भी मरता है उसको हम कहते हैं स्वर्गीय हो गए, फलां-फलां स्वर्गीय हो गए। एक मूर्ति बनाओ, पत्थर लगाओ। और जितनों की मूर्तियां लगती हैं, उनमें से अक्सर अधिक नरक में होंगे। लेकिन नारकीय लिखो तो झगड़ा हो जाए।

वह आदमी देखेगा कि स्वर्ग अगर सब राजनीतिज्ञ तक चले जा रहे हैं, तो फिर क्या दिक्कत है। फिर हम भी चले जाएंगे, कुछ देखेंगे, वहीं कुछ इंतजाम जरूर हो गया होगा अब तक। तो फिर वह आदमी सत्य नहीं

बोलेगा। सत्य बोलने का जो कहेगा कि सत्य बोलना ही सत्य बोलने का लक्ष्य है, आनंद है यह मेरा कि मैं सत्य बोलता हूं, इसके आगे और कुछ सवाल नहीं है। वही आदमी सत्य का प्रेमी है।

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सुंदर है, उसका लक्ष्य वही है, वह किसी दूसरे का साधन नहीं है, वह स्वयं ही साध्य है। और जीवन तो परम साध्य है। वह तो अल्टीमेट एंड है। वह किसी दूसरे का साधन नहीं है। कहीं कोई कहे कि मोक्ष जाने का साधन है जीवन, गलत कहता है। जीवन अपना ही परम लक्ष्य है। हां, जब जीवन पूर्णता को उपलब्ध होता है, तब जो अनुभूति होती है, वह मोक्ष की है। क्योंकि तब कोई बंधन नहीं मालूम पड़ते, कोई रुकावट नहीं मालूम पड़ती, कोई सीमा नहीं मालूम पड़ती, कोई अंत नहीं मालूम पड़ता, कोई मृत्यु नहीं मालूम पड़ती। उस क्षण में जीवन की परिपूर्ण अनुभूति के क्षण में मोक्ष का भी भाव समा जाता है। लेकिन मोक्ष लक्ष्य नहीं है। और मोक्ष को लक्ष्य बना कर जो जाएगा, वह सिर्फ मृत्यु पर पहुंचता है और कहीं नहीं पहुंचता। और जो जीवन को लक्ष्य बना कर चलता है, वह मोक्ष पर पहुंच जाता है। मैं कहता हूं, जीवन का लक्ष्य जीवन ही है।

एक अंतिम बात और।

एक मित्र ने पूछा है कि आपको यदि राष्ट्रपति बनने के लिए कहा जाए तो आप राजी हो जाएंगे?

मजेदार बात पूछी है। पहली तो बात यह समझ लेनी चाहिए, पदों के लिए आतुरता सिर्फ हीन-वृत्ति के लोगों में होती है। इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स, जिनके भीतर हीन-ग्रंथि होती है, वे पदों के लिए लोलुप होते हैं।

जो भी आदमी पद के लिए लोलुप मालूम पड़े, जानना कि भीतर उसे ऐसा लगता है कि मैं बहुत हीन आदमी हूं, किसी कुर्सी पर चढ़ जाऊं तो यह हीनता को मिटा दूं। कुर्सियों पर सिर्फ हीनता से मुक्ति के लिए चढ़ते हैं। इसलिए कुर्सियों पर श्रेष्ठ आदमी मुश्किल से ही जाने को राजी हो सकता है। मुश्किल से ही।

हीनता की ग्रंथि ही पदों की लोलुपता है। और इसीलिए तो पदों पर हीनतम व्यक्ति सारी दुनिया के इकट्ठे हो सके हैं। पदों पर हीनतम व्यक्ति इकट्ठे हुए हैं। और इसीलिए तो दुनिया में सारी चीजें उपद्रव ग्रस्त हो गई हैं। क्योंकि सबसे ज्यादा हीन वृत्तियों से भरे हुए लोग अगर सत्ताओं में पहुंच गए हों, तो दुनिया में सौभाग्य फलित नहीं हो सकता, दुर्भाग्य ही फलित होगा।

दूसरी बात यह समझ लेनी जरूरी है कि किसी अच्छे आदमी के पद पर पहुंच जाने से ही समाज का कोई हित नहीं हो जाता। समाज का हित अच्छे आदमी के कहीं पहुंच जाने से नहीं हो जाता। समाज का हित व्यक्ति पर निर्भर नहीं है। समाज का हित पूरे सामाजिक जीवन-दर्शन पर निर्भर है। हिंदुस्तान यह भूल काफी कर लिया। हिंदुस्तान ने कुछ अच्छे लोगों को ऊपर भेजा है बीस-पच्चीस सालों में। वे जब पहुंचाए गए तो अच्छे लोग थे। जब वे पहुंच गए तो हमें पता चला कि वे बिल्कुल दूसरे व्यक्ति साबित हुए। ऐसा भी नहीं था कि उनमें सभी लोग बुरे थे, कुछ लोग तो बहुत ही अच्छे थे। लेकिन वे अच्छे लोग भी इस बड़े गलत जाल में कुछ भी करने में सफल नहीं हो सके।

समाज का पूरा जीवन-दर्शन बदलना चाहिए। आदमियों के बदलने से कुछ नहीं होता। आदमियों के बदलने से कुछ भी नहीं होता। आदमियों की बदलाहट करीब-करीब ऐसी होती है कि उससे राहत तो मिलती है थोड़ी देर। जैसे कोई आदमी मरघट ले जा रहा है किसी की अरथी को। रास्ते में एक कंधा दुखने लगता है, तो दूसरे कंधे पर रख लिया। राहत मिलती है थोड़ी देर। एक कंधा हलका हो गया। लेकिन अरथी का वजन उतना का उतना है। थोड़ी देर में दूसरा कंधा दुखने लगता है।

आदमी हम बदलते चले जाते हैं। आदमी बदलने से कुछ भी नहीं होता है। थोड़ी देर राहत लगती है कि लगता है नया आदमी आया, कुछ होगा। फिर सब वैसा का वैसा। जाल सबका सब पुराना है। पूरा जाल पुराना है। आदमी इतनी छोटी चीज, उसको बदलो, पूरा जाल इतना बड़ा है, उस आदमी को पीछे रख देता है, वह उसको अपनी चक्की में घुमा लेता है। वह आदमी उस चक्की में घूम जाता है और ढल जाता है।

हिंदुस्तान की जो पूरी की पूरी समाज और राज्य की जो तंत्र-व्यवस्था है, वह जो मशीन है, वह जो चक्की है, वह बदलने की जरूरत है, वह तोड़ने की जरूरत है। आदमियों के बदलने से कुछ नहीं होगा। अभी तो हिंदुस्तान की जैसी आर्थिक, सामाजिक जो तंत्र-व्यवस्था है, उसमें खुद भगवान को राष्ट्रपति बना कर बिठा दो, तो सिवाय बदनामी के उनके और कुछ नहीं होने वाला। कुछ नहीं होने वाला। यह सवाल व्यक्ति का नहीं है। और हमें व्यक्तियों के संबंध में सोचना बंद कर देना चाहिए। और यह आशा छोड़ देनी चाहिए कि सिर्फ अच्छे आदमी को बिठा देने से सब कुछ हो जाएगा।

नहीं, हमें जीवन की पूरी नई दृष्टि को पुरानी दृष्टि की जगह बिठाना होगा। और जिस दिन जीवन की नई दृष्टि बैठ जाए, उस दिन अदना से अदना आदमी भी वहां बैठ कर काम कर लेगा। लेकिन तंत्र पूरा बदलना चाहिए।

जैसे एक बैलगाड़ी चल रही है, तो बैलगाड़ी पर एक गाड़ीवान बैठा है, हम उसको डांटते हैं कि तू बहुत धीरे-धीरे बैलगाड़ी चलाता है, बहुत धीमी चल रही है तुम्हारी बैलगाड़ी। हम एक अच्छे आदमी को लाते हैं, हम उसको ड्राइवर की जगह बिठा देते हैं। क्या होगा? बैलगाड़ी तो बैलगाड़ी है। थोड़ा-बहुत दौड़ाएगा और गड्ढे-वड्ढे में गिरा देगा। और झंझट कर सकता है, कहीं ज्यादा दौड़ाएगा, और अगर बैल छूट गए, मर गए, कुछ हो गया, तो और खड़ी कर देगा।

नहीं, सवाल बैलगाड़ी का नहीं है। अगर गति लानी है, तो बैलगाड़ी की जगह हवाई जहाज चाहिए था। हो सकता है कि जो बैलगाड़ी को चलाने वाला गाड़ीवान था उसे अगर कुर्सी पर बिठा दिया जाए तो वह भी ठीक ढंग से चला लेगा।

ये जो दुनिया के दूसरे मुल्क इतने विकास कर रहे रहे हैं, उसका कारण यह नहीं है कि उनके पास आपसे अच्छे आदमी बैठे हैं, यह सवाल नहीं है। उनकी पूरी तंत्र-व्यवस्था बदल गई है।

हमारी तंत्र-व्यवस्था बहुत पुरानी है, जराजीर्ण है। उसमें किसी को बिठाल दो, वह फंस जाएगा। उससे कुछ होने वाला नहीं है।

इसलिए मेरी कोई उत्सुकता इस तरह की बातों में नहीं है कि कोई किसी पद पर किसी को बिठा दो या किसी को ले जाओ। ये सब बिल्कुल दो कौड़ी की बातें हैं।

मेरी उत्सुकता इसमें है कि इस मुल्क का चित्त कैसे बदले? चित्त बदल जाए फिर तो हम अ ब स किसी से भी काम ले सकते हैं। वह बहुत मूल्य की बात नहीं है।

लेकिन हिंदुस्तान की गलत चित्त-व्यवस्था में यह भी एक कारण है कि हम हमेशा व्यक्तियों की तरफ देखते हैं तंत्र की तरफ नहीं देखते। हजारों साल से यह भूल चल रही है। हम सोचते हैं कि कोई कृष्ण आ जाएंगे, सब ठीक हो जाएगा। कृष्ण आ चुके, तब ठीक नहीं हुआ। अब दुबारा आने से क्या ठीक हो जाएगा। तो गीता हम बैठ कर पढ़ रहे हैं कि जब-जब धर्म की ग्लानि होगी, फलाना होगा, तो भगवान आएंगे। और कई दफे ग्लानि हो चुकी, भगवान आ चुके, और सब वैसा का वैसा चल रहा है।

अब तो छोड़ो झंझट, अब कुछ होगा नहीं आने से। इसलिए वे आते भी नहीं, वे भी समझ गए होंगे कि अब इसमें कोई सार नहीं है बार-बार जाने से।

व्यक्तियों पर निर्भर समाज कभी भी बहुत विकासमान नहीं हो सकता है। क्योंकि व्यक्ति की सामर्थ्य कितनी है? बड़े तंत्र के मुकाबले व्यक्ति एकदम पिट जाता है। सवाल तंत्र के बदलने का है। फिर छोटा सा व्यक्ति भी सार्थक हो जाता है।

हिंदुस्तान में हमने अच्छे व्यक्ति भेजे थे। हिंदुस्तान की आजादी के बाद हमारे पास अच्छे से अच्छे व्यक्ति थे, वे गए, और वे सत्ता के चक्कर में पड़ गए। कोई काम में नहीं आ सके। अब तो उतने अच्छे व्यक्ति भी हमारे पास नहीं है। अब तो जिनको हम भेजेंगे, उनसे कोई आशा नहीं हो सकती। लेकिन फिर भी हमारा ध्यान गलत चीज पर है। हम हमेशा यह पूछते हैं कि अब किसको बनाएं? अब कौन आदमी आएगा? फिर हम आशा लगाते हैं कि शायद यह आदमी कुछ करेगा।

आदमी का सवाल नहीं है। इस देश की जो सामाजिक रचना है, हमारे सोचने का, विचारने का जो ढंग है, हमारी जो फिलॉसफी है, हमारा जो जीवन-दर्शन है, वह गलत है। उस गलत जीवन-दर्शन की वजह से सारी तकलीफ है। इसलिए पूरे जीवन-दर्शन को बदलने में मेरी उत्सुकता है। आदमियों का कोई मतलब नहीं है, अ ब स कोई भी बैठे काम करे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

इस बात को अगर ठीक से समझें, तो ख्याल में आएगा कि रूस में लेनिन या उनके साथी हुकूमत में आए, इनकी वजह से कुछ हो गया, यह मत सोचता। शायद करन्सकी जो लेनिन के पहले हुकूमत में था, कोई कम बुद्धिमान और कम अच्छा आदमी नहीं था, बहुत बढ़िया आदमी था। लेकिन तंत्र-व्यवस्था बदलने का ख्याल नहीं था। लेनिन एक ख्याल लेकर आया कि पूरे समाज का ढांचा बदल देना है। ढांचा बदलने का जो ख्याल था, वह कारगर हो गया। फिर कोई भी आदमी काम कर सकता है, एक बार ढांचा बदलने का ख्याल में आ जाए।

मेरी नजर में भारत को व्यक्तियों के ऊपर से आंख हटा लेनी चाहिए और समाज और समाज की आमूल धारणाएं और बुनियाद, उन पर दृष्टि रखनी चाहिए। और नहीं तो यह बड़े धोखे की बात है। हमेशा व्यक्तियों को बदलते रहेंगे; सोचते रहेंगे, यह गया, यह आ जाए, वह आ जाए। और इससे कुछ होता नहीं, फिर हम उदास होते चले जाते हैं। और फिर हम व्यक्तियों को गाली देते हैं। हम समझते हैं, यह आदमी खराब है, इसने गड़बड़ कर दी; अब वह आदमी खराब है। लेकिन कोई देखता ही नहीं कि यह पूरी की पूरी व्यवस्था, पूरा हमारा ढांचा अत्यंत खतरनाक है। इस खतरनाक ढांचे में ढांचे को ही बदलने की चेतना फैलना चाहिए।

और यह ध्यान रहे कि कोई व्यक्ति पद पर बैठ कर इस मुल्क के चित्त को भी नहीं बदल सकता है। इस मुल्क के चित्त को नीचे से बदलने की जरूरत है, ऊपर से कभी चित्त नहीं बदले जाते। कि कोई आदमी ऊपर बिठाल दो आप और दिल्ली की आकाशवाणी से लोगों को समझाने लगे और चित्त बदल जाए। चित्त नीचे से बदलना पड़ेगा। लोकमानस जहां फैलाव में है, वहां घुसना पड़ेगा, वहां जड़ें काटनी पड़ेंगी, और ध्यान वहां देना पड़ेगा। वहां चित्त बदलने लगे, तो अपने आप हम एक दृष्टि को उपलब्ध होंगे। वह दृष्टि इस देश को बदलने का कारण बन सकती है। इस भाषा में सोचेंगे।

उन्हीं मित्र ने एक बात और पूछी है, उन्होंने पूछा है कि आपने कहा कि गरीबी बड़ी सुखद है, फिर आप गरीब के घर क्यों नहीं ठहरते हैं? आपने कहा कि गरीब का झोपड़ा अमीर के मकान से भी बड़ा है, तो फिर आप अमीर के मकान में क्यों ठहर जाते हैं?

ठीक बात पूछी है उन्होंने। इसमें दो बात समझ लेनी चाहिए। एक तो यह कि जब मैंने कहा कि गरीब की झोपड़ी अमीर के मकान से बड़ी होती है, तो इसका यह मतलब मत समझ लेना कि आप नाप ले जाएंगे तो गरीब की झोपड़ी बड़ी निकलेगी और अमीर का मकान छोटा निकलेगा, यह मत समझ लेना। जो मैंने कहा वह मैंने यह कहा कि जो अमीर का मन है, वह झूठा है, उसमें जगह बहुत कम है। धन इतना भर गया है कि और जगह नहीं रह जाती। जहां धन जितना भर जाता है, वहां प्रेम की जगह कम हो जाती है। मकान तो बड़ा है उसके पास, यह मत समझ लेना कि मकान गरीब के पास बड़ा है।

एक फकीर की मुझे याद आती है। एक फकीर, एक छोटा झोपड़ा है। रात है, वर्षा पड़ रही है। पत्नी और पति दोनों सोए हैं। किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी है। उस फकीर ने अपनी पत्नी से कहाः द्वार खोल! पानी पड़ता है, रात अंधेरी है, कोई मेहमान आ गया। पत्नी ने कहाः लेकिन घर में जगह कहां है!

फकीर ने कहाः जगह बहुत है। अभी हम दो सोते थे, अब तीन बैठेंगे। तीन सो तो नहीं सकते हैं। फकीर का झोपड़ा है। पत्नी ने दरवाजा खोल दिया। मेहमान भीतर आ गया, बैठ कर गपशप करने लगा।

फिर किन्हीं दो आदमियों ने दरवाजे पर दस्तक दी। अब उस फकीर ने उस मित्र को कहा--वह दरवाजे के पास था--कि दरवाजा खोल दो, मालूम होता है कोई आया।

वह कहता, लेकिन जगह कहां है।

फकीर ने कहाः जगह तो काफी है, अभी हम दूर-दूर बैठे हैं, फिर पास-पास बैठेंगे। दरवाजा खोल दो। मजबूरी में दरवाजा खोला, दो आदमी और भीतर आ गए, अब वे पास-पास बैठ गए। और वे गपशप करने लगे। आंच तापने लगे। तभी एक गधे ने आकर सिर मारा दरवाजे पर। फकीर ने कहाः मित्र दरवाजा खोलो, फिर कोई मेहमान आ गया।

उन्होंने कहाः कोई मेहमान नहीं है, गधा है।

उस फकीर ने कहाः हम कोई फर्क नहीं करते। मेहमान है। हमने तुम्हारे लिए इसलिए नहीं खोला कि तुम आदमी हो। मेहमान हो। दरवाजा खोल दो!

उन्होंने कहाः लेकिन वह गधा है।

फकीर ने कहाः यह गधे और आदमी का फर्क; अगर अमीर के घर जब जाओगे तो आदमी भी गधा बन जाएगा। यह गरीब का झोपड़ा है, अमीर आदमी का महल नहीं। वह आ गया, उसको भीतर लेना है। दरवाजा खोलो! दरवाजा खोलना पड़ा। गधा भीतर आ गया।

उन्होंने कहाः करेंगे क्या?

फकीर ने कहाः अभी हम बैठे थे, अब हम खड़े हो जाएंगे। वे खड़े हो गए।

गरीब का झोपड़ा था छोटा, गरीब का मन! लेकिन गरीब का मन इसलिए बड़ा नहीं है कि वह गरीब है। यह ध्यान रखना। गरीब का मन इसलिए बड़ा है कि उसके पास प्रेम है और पैसा नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि पैसा हो तो प्रेम नहीं ही होगा। और इसका यह मतलब भी नहीं है कि मैं इस पक्ष में हूं कि लोग गरीब रह जाएं।

और यह भी ध्यान रहे कि जो मैंने कहा वह इसलिए नहीं कहा कि लोग गरीब रह जाएं, वह इसलिए कहा कि अमीर के मन में भी जगह हो जाए। हमारे नतीजे हम उलटे ले सकते हैं। मैंने जो कहा वह यह नहीं कहा कि गरीब गरीब रह जाए। गरीब का गरीब रहना बहुत दुखद है। गरीब तो अमीर हो, लेकिन अमीर के दिल में

भी गरीब जैसी बड़ी जगह हो जाए। गरीब को अमीर होने से नहीं रोक लेना है। अमीर को भीतरी रूप से गरीब होने से रोकना है। गरीब को बाहर से अमीर होने देना है। अमीर को भीतर से गरीब नहीं होने देना है। दोनों तरफ की अमीरी आनी चाहिए। बाहर की भी और भीतर की भी।

अब वे मेरे मित्र कहते हैं कि आप गरीब के घर क्यों नहीं ठहरते हैं?

मुझे कोई अड़चन नहीं है। मजा तो यह है कि गरीब के पास घर भी कहां है? इस देश के गरीब के पास घर भी कहां है? इस देश की गरीबी तो इतनी है कि घर भी नहीं है। और जिसको आप घर कहते हैं वह घर है? शर्म से डूब मर जाना चाहिए अगर उसको घर कहते हैं आप! वह घर क्या है--चार पत्ते बांध कर, चार खपड़े लटका कर घर कह रहे हैं आप? दस हजार साल से कोई कौम बिल्कुल नपुंसक रही हो, तो इसको घर कह सकते हैं। यह घर नहीं है। यह घर है? घर बिल्कुल नहीं है। और अगर इसको घर मानते हैं तो घर कभी भी नहीं बनेगा, यह ध्यान रखना। यह घर नहीं है, मजबूरी है। सारे मुल्क की बुद्धिहीनता और प्रतिभाहीनता का सबूत है। घर भी नहीं बना सके किसी तरह से।

मेरी बात ठीक से समझ लेना। मैं कोई गरीबी का समादर नहीं करता हूं। और जो भी आदमी गरीबी का समादर करता है, उसे मैं खतरनाक मानता हूं। उसकी बातें अगर मानी जाएं तो दुनिया गरीब बनी रहेगी। मैं गरीबी का समादर नहीं करता हूं। मैं तो यह कह रहा हूं कि गरीब के मन में जो प्रेम है वह अमीर के मन में भी होना चाहिए। और गरीब की जो तकलीफ है वह जानी चाहिए, वहां भी सुविधा होनी चाहिए। यह जो, लेकिन गरीब को समादर देने वाले लोग भी हैं, वे कहते हैं, दरिद्रनारायण। हद्द हो गई पागलपन की! दरिद्र को नारायण कहोगे तो फिर दरिद्रता मिटेगी कैसे? नारायण को मिटाओगे कैसे? नारायण की पूजा करनी पड़ती है, मिटाना थोड़े ही पड़ता।

दरिद्रता तो महामारी है, नारायण नहीं है। इसे तो मिटा देना है। और जो मैंने कहा कि दरिद्रता का एक सुख है उसे भी समझ लेना है। दरिद्रता का सुख भी केवल उन्हें ही मिल सकता है जो अमीरी से गुजरे हैं। गरीब को वह भी नहीं मिलता।

यह अंतिम बात समझ लें, फिर हम विदा होंगे।

दरिद्र होने का भी एक मजा है। लेकिन दरिद्र को यह कभी नहीं मिलता। महावीर को मिला होगा, बुद्ध को मिला होगा। महावीर राजा के बेटे थे। सब जाना है महल, सब जाना है सुख, सब जाना है धन। जान कर सब व्यर्थ हो गया... भिखारी हो गए। महावीर नंगे खड़े हो गए रास्ते पर।

एक और भिखमंगा रास्ते पर नंगा खड़ा होता है, आपने भी सबने देखा होगा, उनका नंगापन कि यह भिखारी कौन? महावीर का नंगापन स्वेच्छा से वरण किया गया है। यह दरिद्रता स्वेच्छा से वरण की गई है। यह दरिद्रता सुख है और स्वयं की स्वेच्छा से वरण की गई है। ऐसा सुख कोई को मिल सकता है।

महावीर की दरिद्रता सुख है और महावीर की दरिद्रता एक सुगंध है, महावीर की दरिद्रता एक मुक्ति है, महावीर की दरिद्रता एक अच्छाई है।

लेकिन एक भिखमंगा रास्ते पर खड़ा है और उससे हम कहें कि तेरे पर तो भगवान की बड़ी कृपा है, देखो महावीर के पास सब था, वह भी आखिर छोड़ कर नंगा होना पड़ा। तुम पर बड़ी कृपा है भगवान की, उन्होंने तुम्हें पहले से ही नंगा बनाया है। तुम मजा करो, तुम इस झंझट से बच गए, जिसमें महावीर को पड़ना पड़ा। लेकिन क्या एक नंगा आदमी महावीर की नग्नता को उपलब्ध हो सकता है? यह नग्नता बुनियादी रूप से अलग चीजें हैं।

एक आदमी भूखा मर रहा है। अकाल में चले जाएं, यहां राजस्थान में अकाल की हालतें हैं, आदमी भूखा मर रहा है। उससे तुम कहो तुझ पर बड़ी कृपा है, कई लोग उपवास करते हैं, तेरा उपवास भगवान करवा रहा है, तू आनंदित हो, तू अनुग्रह मान। वह आदमी कहेगा, क्षमा करें, कैसा उपवास, मुझे दो रोटी चाहिए, मुझे कोई उपवास वगैरह नहीं चाहिए।

जो ज्यादा खा गया है, उसे उपवास में मजा हो सकता है। उपवास में सिर्फ ओवरफेड लोगों को मजा हो सकता है। और इसलिए जो सोसाइटी, जो समाज जितना ओवरफेड होती है, ज्यादा खा गई होती, जैसे जैनियों का समाज हिंदुस्तान में। तो उनमें उपवास का कल्ट चल पड़ता है। जो भी ज्यादा खा जाता है, उसमें उपवास का सिद्धांत चलने लगता है। अभी अमरीका में फैड शुरू हुआ उपवास का। अमरीका में न मालूम कितने प्राकृतिक चिकित्सालय खड़े हो गए हैं, जहां लोगों को उपवास करवाया जा रहा है। और लोग बड़े आनंदित हो रहे हैं उपवास करके। इधर हम भूखे मर रहे हैं, उधर तुम उपवास करके आनंदित हो रहे हो। बात क्या है? बात जरूर कुछ है। वहां शरीर ने ज्यादा इकट्ठा कर लिया है। सरप्लस चर्बी इकट्ठी हो गई शरीर पर, उसको निकाल देने की जरूरत पड़ती है। उसके निकलने से बड़ा आनंद आता है। जैसे कि भूखे आदमी के शरीर पर चर्बी नहीं होती और उसे खाना मिल जाए और चर्बी आ जाए, तो आनंद आता है, ऐसे ज्यादा खा गए आदमी पर चर्बी थोड़ी कम हो जाए, तो उसे आनंद आता है।

गरीब आदमी गरीबी का पूरा सुख कभी नहीं उठा सकता। अमीर आदमी ही गरीबी का पूरा सुख उठा सकता है। गरीबी जो है अमीर आदमी की लास्ट लग्.जरी है, आखिरी।

अब देखिए अमरीका में, बीटल हैं, बीटनिक हैं, हिप्पी हैं, ये सब अमीर लोगों के बेटे हैं। ये करोड़पतियों के बेटे हैं, अरबपतियों के बेटे हैं।

मेरे पास हिप्पी मिलने आए, बनारस में था, वे हिप्पी मुझे मिलने आए। मैंने उनसे पूछा, तुम अरबपतियों के लड़के-लड़कियां हों, तुम बनारस में खड़े होकर दस-दस पैसे भीख मांग रहे हो? उन्होंने कहाः इतना आनंद मालूम होता है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हमको मालूम हो सकता है आनंद? हमको नहीं मालूम हो सकता। वे बोले, इतनी फ्रीडम, इतनी मुक्ति, वृक्ष के नीचे जहां चाहें वहां सो जाते हैं। ऐसा आनंद कभी नहीं जाना।

लेकिन भिखारी होने का आनंद अरबपति के बेटे को मिल सकता है। लेकिन कोई कहे कि जब आखिर, आखिर धन को भी छोड़ कर कोई गरीब हो जाता है, तो हम तो गरीब पहले से हैं। तो मुझे एक कहानी याद आती है।

मैंने सुना है कि एक स्टेशन पर कुछ लोग हरिद्वार की यात्रा को जा रहे हैं। सारे लोग ट्रेन में बैठ रहे हैं, सब चिल्ला रहे हैं, भीतर बैठो, सामान रखो, अंदर आओ, देर मत करो, गाड़ी छूटने को है। और एक आदमी स्टेशन पर खड़ा है, आठ आदमी उसको खींच रहे हैं और वह आदमी यह कहता है, पहले यह बता दो, इस गाड़ी में से हरिद्वार पर पहुंच कर उतरना तो नहीं पड़ेगा? अगर उतरना है तो चढ़ना क्या? जब उतरना ही है तो चढ़ना फिजूल है। हम नहीं चढ़ते। नासमझ हैं जो चढ़ रहे हैं। फिर अभी उतरोगे न थोड़ी देर में? वे मित्र कह रहे हैं, गाड़ी छूटी जा रही है, हम रास्ते में तुमको समझाएंगे। अभी इतनी ऊंची बातें मत करो, पहले अंदर चलो। फिर हम पीछे बीच में बात कर लेंगे। लेकिन वह कहता है, मुझे पक्का बता दो। लेकिन मित्रों ने देखा, गाड़ी छूटने के करीब है, उन्होंने जबरदस्ती उसे अंदर कर लिया।

फिर हरिद्वार आ गया। वह आदमी बैठा रहा आंख बंद किए। अब हरिद्वार पर सब उतरने लगे हैं। अब फिर दूसरी आवाजें चल रही हैं कि उतरो, जल्दी उतरो, सामान नीचे लाओ। और उस आदमी को फिर उसके मित्र घेरे हैं, वे कहते हैं, गाड़ी छूटने को है, नीचे उतरो। वह कहता है, हम नहीं उतरेंगे। जब चढ़ गए तो चढ़ गए, अब क्या उतरना? हम उनमें से नहीं है कि बदल जाएं, हम तो सिद्धांत के अटल हैं, हम चढ़ गए, हम चढ़ गए, अब उतरेंगे नहीं। हम तो तुम्हें देख कर हैरान, तुम दो घंटे में बदल गए। दो घंटे पहले चढ़ना-चढ़ना कर रहे थे, अब उतरना-उतरना करने लगे, बड़े बेईमान हो। वे मित्र कहने लगे, अरे पागल हो गए हो, नीचे उतरो, गाड़ी छूटने को है। वह कहता है कि हम चढ़ते ही नहीं थे, तुमसे पहले ही कहा था। जबरदस्ती उसे नीचे उतारते हैं।

अब वह आदमी ठीक कह रहा है कि गलत कह रहा है? तर्क तो ठीक है। वह कहता है, जब उतरना ही है तो चढ़ना क्या। लेकिन यह भूल जाता है कि चढ़ना और स्टेशन पर था, उतरना और स्टेशन पर है। न चढ़ते तो हरिद्वार न आता।

एक दिन अमीर आदमी को भी गरीबी वरण करनी पड़ती है, लेकिन वह उतरना हरिद्वार पर है। गरीब आदमी अगर अमीरी से न गुजरे, तो गरीबी कभी स्वेच्छा नहीं हो पाती। और जब तक गरीबी स्वेच्छा न हो तब तक सुख नहीं है।

वह जो डायोजनीज, जिसकी कहानी मैं कह कर कहा था कि गरीबी भी एक सुख है। वह साधारण गरीब नहीं था। वह ऐसा गरीब नहीं था कि गरीब था, गरीबी स्वेच्छा से वरण की गई थी, वोलंटरी थी, वह एक आनंद थी। वह गरीब उसका होना मजबूरी नहीं थी। दुनिया में जो मजबूरी से गरीब है, वह बेचारा क्या गरीबी में सुख ले सकता है। लेकिन दुनिया में जो खुशी से गरीब होता है, उसका मजा और है।

इसलिए मैं इस पक्ष में हूं कि समाज धनी से धनी होना चाहिए, ताकि हर आदमी को यह मौका मिल सके कि अगर वह गरीब होना चाहे तो हो जाए। समाज धनी से धनी होना चाहिए। समाज इतना धनी होना चाहिए कि कोई भी आदमी स्वेच्छा से गरीबी का मजा ले सके। कोई भी आदमी फकीर हो सके। लेकिन सब जहां सब फकीर ही हों, वहां कैसे यह मजा हो सकता है।

मेरी बात ठीक से समझ लेना, मैं गरीबी का पक्षपाती नहीं हूं, उस गरीबी का जो चारों तरफ दिखाई पड़ रही है। मैं उसका दुश्मन हूं। वह मिटनी चाहिए। उसे एक मिनट ठहरने देना खतरनाक है। उसे आग लगा देना चाहिए। उसे बचने नहीं देना चाहिए। लेकिन मैं एक और गरीबी का जरूर पक्षपाती हूं, लेकिन वह उनको मिलती है जो स्वेच्छा से उसे वरण करते हैं। लेकिन स्वेच्छा से कोई कब वरण करता है, जब चीजें अनुभव से व्यर्थ हो जाती हैं। धन को जब कोई जान लेता है, धन व्यर्थ हो जाता है। यश को कोई जान लेता है, यश व्यर्थ हो जाता है। जो भी जान लिया जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। उसके पार उठ जाना है। गरीबी से अमीरी और अमीरी से फिर एक और गरीबी है, लेकिन वह गरीबी बात ही और है।

जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे लोग, जो सच में गरीब हैं। बड़ी अजीब बात! धन्य हैं वे लोग, जो सच में गरीब हैं! मतलब इन गरीबों को जीसस सच में गरीब नहीं मानते हैं। ये भीतर से तो अमीर होने की कोशिश में हैं, इसलिए ये गरीब नहीं कहे जा सकते। गरीब आदमी भीतर से अमीर होने की कोशिश में है, उसकी आकांक्षा अमीर होने की है, उसका चित्त रुपये पाने का है, बड़ा मकान करने का है, उसे भी सब वही करना है जो दूसरे कर रहे हैं। नहीं कर पा रहा है, इसलिए पीड़ित है, दुखी है, सच में गरीब नहीं है।

सच में गरीब दुनिया में थोड़े से ही लोग हुए हैं। क्योंकि दुनिया में अमीरी ही बहुत कम है। दुनिया में अमीरी बढ़ जाए, सारा देश समृद्ध हो--बुद्ध और महावीर जैसा। एकाध-दो घराने राजाओं के न हों, सब घराने राजाओं के हो गए हों। तो हजारों, करोड़ों बुद्ध पैदा होंगे, महावीर पैदा होंगे। इस गरीबी में नहीं पैदा हो सकते हैं।

सच में जो गरीब होने का मौका मिलता है, उसका तो मजा और है, लेकिन वह किसको मिलता है। वह उनको मिलता है जो जीवन की सुविधाओं और आवश्यकताओं की आत्यंतिक, उसकी चरम अनुभूति से गुजरते हैं, उन्हें मिलता है।

मैं गरीबी का पक्षपाती नहीं हूं और गरीबी का पक्षपाती हूं। लेकिन गरीबियां दो हैं, एक वह स्टेशन जहां से हम चढ़ते हैं और एक वह स्टेशन जहां हम उतरते हैं। उतरना है कभी एक दिन। उतरने के लिए भी चढ़ जाना जरूरी है। और इसलिए मेरी बात अगर ठीक से समझेंगे, तो न तो मैं इस पक्ष में हूं कि गरीब के झोपड़े रहें, न इस पक्ष में हूं कि गरीबी रहे। लेकिन इस पक्ष में जरूर हूं कि आदमी बाहर से ही अमीर न हो, भीतर से भी अमीर हो जाए। और भीतर की अमीरी एक बात ही और है। भीतर की अमीरी का मतलब हैः एक बड़ा हृदय। एक बड़ा मकान ही नहीं; एक बड़ा हृदय। भीतर की अमीरी का मतलब हैः एक विस्तीर्ण भाव। भीतर की अमीरी का मतलब है कि बाहर का धन ही नहीं, भीतर का भी धन। और भीतर का धन, भीतर का साम्राज्य, वह भीतर की समृद्धि, वह जब तक न मिले, तब तक बाहर की समृद्धि और बाहर की संपत्ति और बाहर का साम्राज्य किसी भी मूल्य का नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं इस पक्ष में हूं कि लोग गरीब रह जाएं, दीन-हीन रह जाएं।

कोई दीन-हीन नहीं रहना चाहिए। क्योंकि एक आदमी भी गरीब है, तो हम सब उसकी गरीबी के लिए जिम्मेवार हैं। और एक आदमी भी दुखी है, तो हम सब उसके दुख के लिए जिम्मेवार हैं। और हम सब अपराधी हैं। लेकिन यह बोध अगर विकसित हो जाए, तो एक नया समाज और एक नये देश का जन्म हो सकता है।

मेरी बातों को इन चार दिनों इतनी शांति और इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।